

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178835

UNIVERSAL
LIBRARY

लवंग

स्व० कुरावाहा 'कान्त'

प्रकाशक
त्रिलोक कुशवाहा
क्रान्त साहित्य सदन,
महुवरिया, मिर्जापुर

●
नवीन संस्करण
चार रुपया
●

मुद्रक
चिनगारी प्रेस, वाराणसी

‘तुरन’ को

बोतल से मदिरा छलक पड़ी। प्याले भर दिये गये। प्यासे होठा ने हलाहल से अपनी तृष्णा शान्त कर ली। मदिरा की मादकता, नेत्रों में बेचैनी बनकर उतर आई। दिल बाग-बाग हो गया। एक क्षण के लिये वे दोनों सब कुछ भूल गये।

शराब का दौर चलता रहा और वे दोनों अपनी सुघ-बुघ खोते चले गये।

नदी के स्वच्छ वनस्थल पर चाँदनी हँस रही थी। वह छोटा-सा बजरा धीरे-धीरे बढ़ रहा था। उभी पर बैठे थे वे दोनों—चाँदनी रात में नौका-विहार कर रहे थे वे। दो बोतलें खाली हो चुकी थीं—तीसरी भी खाली होने के करीब थी।

“किरानी अच्छी चाँदनी रात है !” —गुलशन ने कहा।

“और चाँद क्या कम सुन्दर है !” —जयराम ने गुलशन की ठुड्ठी पकड़कर ऊपर उठाते हुए कहा।

गुलशन के होठों पर बिजली-सी मुसकान चमक उठी—मदिरा भरी आँखों से हलाहल छलक पड़ा। जयराम ने गुलशन को पास घसीटकर उसे अपने मदहोश शरीर से चिपका लिया।

और आकाश पर चमकते हुए चाँद ने दो तृपित अधरों का युद्ध देखा, प्रकम्पित वायु ने चुम्बन की एक मादक ध्वनि सुनी। नदी का वनस्थल शराबी-सा लडखड़ा उठा।

जयराम एक धनी पिता का पुत्र था। बाल्यावस्था में पिता के अत्यधिक प्यार ने उसे उच्छृङ्खल बना दिया था। जवानी के दिनों में

वही उल्लूङ्खलता, शराब की बोतलों और साकी की हलाहल भरी आँखों में जा समाई ।

आजकल जयराज एक ऐसा निशानेबाज था, जिसके पास रुपयों के तीर थे—जिसपर चला दिया, वह घायल हो उठा । जिस बोतल की ओर नजर उठाई—वह उसके पेट में जा पड़ी—जिस औरत की ओर ललचार्ड हुई आँखों में देखा, वह उसकी गोद में आ रही । रुपयों के तीर बड़े कारी होते हैं !

गुलशन एक वेश्या थी—धनी युवकों को फाँसकर, अपने प्रेम का ढोंग दिखलाना और उनके रक्त माँस के साथ उनका धन चूसना—यही उसकी परिभाषा थी । आज तक कितने ही धनिकों को उसने कंगाल बना दिया था—कितने ही युवक दर-दर के भिखारी हो चुके थे ।

गुलशन आज पहले पहल जयराज के पास आई थी । उसने ध्यानपूर्वक इस आकारे धनिक युवक का अवलोकन किया था उसने मामूली शराबियों और आवारों से जयराज को सर्वथा भिन्न पाया था ।

गुलशन के पास मादक सौन्दर्य था । आँखों में मदिरा की छलकन, होठों पर मुस्कान की थिरकन और पुष्ट छातियों पर जवानी का कम्पन—जो भी देखता दिल थाम लेता ।

मगर जयराज पर गुलशन के सौन्दर्य ने विशेष प्रभाव न डाला । वह नित्य की भौति, जड़ पत्थर के पुतले की तरह शराब पीता रहा और गुलशन के अधरों का रसास्वादन करता रहा । उसका भंगिमा से जरा भी अस्थिरता नहीं टपकी, उसके अवयव तनिक भी उल्लसित न हुए ।

“आपका साथ मुझे बहुत पसन्द आया !”—कहा उसने, शब्द जैसी मीठी आवाज में ।

“मुझे भी !”—एक छोटा-सा उत्तर देकर चुप हो रहा जयराज ।

“आज तक...” गुलशन बोली—“आप जैसे दरिया-दिल रहस का साथ नसीब न हुआ था ।”

“तुमको मुझमें अन्य रहसों से कुछ अन्तर दीख पड़ता होगा—है

न !” जयराज कहने लगा—“सुझमें और अन्य लोगों में महान अन्तर है भी !...अन्य लोग फतिंगे हैं, जो वेश्या के पास जलने के लिये जाते हैं और अपना सब कुछ खोकर सचमुच जल जाते हैं; मगर मैं !....मैं सिर्फ मनोरंजन के लिये वेश्या का साथ पसन्द करता हूँ । उन्हें उचित कीमत के अलावा एक पैसा भी ज्यादा नहीं देता । शराब पीकर भी कभी मदहोश नहीं होता । वेश्या को अपने पास रखकर भी मैं उसे पतित नारी से ज्यादा और कुछ नहीं समझता...”

“.....” काँप उठी गुलशन—आँखों की मदहोशी, क्रोध की लालिमा बन गई । मगर वह चुप रही । मछली को फँसाने से पहले चारा दिया जाता है न !

“अब तक मैंने कभी अपने अन्दर प्रेम की शुद्ध-भावना नहीं पाई—सुझे ऐसा लगता है, जैसे मेरे पास आनेवाली सभी औरतें बिघैली नागिनें हों । तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि आज तक मेरे पास नित्य नई-नई छोकरियाँ और नई-नई बोटलें आती रही हैं...मगर मैंने कभी किसी छोकरी में शराफत की बू नहीं देखी—किसी बोटल में शहद जैसी मिठास नहीं पाई...फिर भी छोकरियों का साथ करता हूँ, शराब पीता हूँ—क्यों कि यह एक लत है । इससे बुरी चीज दुनिया में कोई नहीं, सब जानते हुए भी अनजान बन रहा हूँ; क्योंकि किसी तरह जिन्दगी के दिन पूरे करने हैं...”

“आप शादी क्यों नहीं कर लेते !”—उत्सुकता वश पूछा गुलशन ने ।

“शादी कल्लू भी तो किससे !...” जयराज ने कहा—“पिता जी बराबर यही कहा करते हैं कि मैं अपने पसन्द की किसी अमीर लड़की से शादी कर लूँ...मगर अमीरों को तो दिल ही नहीं होता...”

“आप भी अमीर हैं—तो क्या आपको दिल नहीं है....”

गुलशन का सीना, जयराज की छाती के पास आ रहा ।

“दिल ही तो नहीं है—और सब कुछ है गुलशन !”

जयराज के हाथों ने गुलशन के मुलायम शरीर को कस लिया और ज्वित अधर पुनः आपस में जा टकराये ।

“आपका दिल कहीं खो गया है—है न यही बात जयराज बाबू ?”
—गुलशन ने ठुड्ठी पर तर्जनी रखकर आश्चर्य का भाव प्रगट किया ।
“ठीक कहती हो तुम !...मेरा दिल खो गया है और इसीलिए मैं खोया-खोया रहता हूँ ।”

“आपका दिल मैं वापस ला दूँगी, बशर्ते कि आप मुझे फिर अपनी खिदमत करने का मौका इनायत फरमावें...” गुलशन जयराज के सीने से लता की तरह लिपटी रही ।

“मैं बहुत खुश हूँ तुमसे—तुम्हें जरूर बुलाऊँगा—” जयराज ने कहा ।

“मगर आप तो खोये-खोये रहते हैं—शायद मुझे आप बुलाना ही भूल जायँ !...”

“तब तुम खुद आ सकती हो !”—जयराज बोला ।

“शुक्रिया !”—गुलशन ने कहा । अब उसे इस विचित्र आचारे के दिल की थाह मिल गई थी ।

जयराज ने गुलशन की ओर देखा—

और गुलशन ने आखिरी जाम भरा । जयराज के सीने में एक ज्वाला-सी भटकाता हुआ, वह मादक हलाहल उसके पेट में उतर गया ।

चाँदनी रात में, स्वच्छ आकाश पर, सफेद बादल का एक टुकड़ा तैर रहा था । नौका धीरे-धीरे आगे बढ़ी जा रही थी । नदी की छाती पर से दौड़ती हुई हवा, गुलशन और जयराज के हृदयों में गुदगुदी पैदा कर रही थी ।

शराब की मदहोशी और आकृति की निस्तब्धता में मग्न, वे दोनों एक दूसरे के कलेजे से लगे हुए सब कुछ भूल गये थे ।

एक इशारे के साथ नाव किनारे की ओर मुड़ चली ।

किनारे पर आकर जयराज और गुलशन उतर पड़े । वह नाव

जयराम की अपनी नाव थी, जिसे उसके पिता ने अपने लाड़ले पुत्र के मनोरंजनार्थ बनवायी थी ।

नाव से उतर कर दोनों अपनी मोटर पर आ बैठे, जो सड़क के किनारे खड़ी थी । स्वयं जयराम कार ड्राइव करने लगा और गुलशन उससे सटकर बैठी रही ।

“मुझे बहुत भला मालूम हो रहा है आपका साथ”—गुलशन ने कहना प्रारम्भ किया—“जी चाहता है, यूँ ही आपके बगल में बैठी रहूँ, कार चलती रहे और हम अपनी जिन्दगी का सफर पूरा कर दें...”

“बहुत भावुक हो तुम !”—कहकर जयराम ने उसे अपने और पास खींच लिया—“वेश्याओं में स्वच्छ-हृदय की भूतक मैंने कभी नहीं देखी...”

“सरकार ने तवायफों का दिल परखने की कोशिश ही कब की ?” आँखों में जवानी की बेचैनी भरकर बोली वह—“रोज नई-नई तवायफों को बुलाकर, सुबह नाचीज मक्खी की तरह फेंक देते रहे हैं आप... फिर किसी के दिली-जज्बात, आप पर जाहिर किस तरह हों !....आपने किसी तवायफ को नजदीक से देखने की मिहरबानी ही कब की ?”

“.....” जयराम चुप रहा । आज वह और दिनों से ज्यादा पी चुका था ।

“बोलिये मेरे सरकार !....कुछ तो फरमाइये !”—गुलशन ने अपना हाथ जयराम के कंधे पर रख दिया ।

“.....” निस्तब्ध जयराम के आतुर होंठ आगे बढ़े और गुलशन के रक्तान्त अधरों पर जा बैठे—जैसे उसकी बातों का यही उत्तर था ।

“बाँदी को फिर कभी सरकार की कदमबोसी करने की खुशकिस्मती हासिल होगी या नहीं !....” गुलशन ने पूछा ।

“जरूर ! जरूर.....” जयराम बोला—“हो सका तो मैं कल खुद ही तुम्हारे घर आने की कोशिश करूँगा...”

“एक नाचीज बाँदी के गरीबखाने पर आने की, मेरे सरकार तकलीफ क्यों करेंगे !...मैं कल खुद ही दरे-दौलत पर हाजिर हूँगी....”

“इसमें गुस्ताखी की कौन-सी बात है मेरी हूर !...तुम खुशी के साथ जब चाहो, तब मेरे मकान पर आ सकती हो—” जयराज ने कहा ।

“यह कनीज की ऐन खुशनसीबी है !”—कहा गुलशन ने ।

और अपना मुलायम शरीर तोड़-मरोड़ कर अँगड़ाई ली—चाहे जयराज पर बिजली गिराने के लिये हो अथवा शराब की बदहोशी दूर करने के लिये ।

मगर जयराज बेताब हुए बिना न रह सका ।

मोटर में ब्रेक दँ दी क्योंकि गुलशन का घर आ गया था और उसे इसी स्थान पर उतरना पड़ा ।

गुलशन मोटर पर से उतर पड़ी ।

और दोनों, आखिरी बार दूध पानी की तरह आपस में जा गुये । चुम्बनों का आदान-प्रदान हुआ, शिकवा शिकायतों की बौछार हुई और तब गुलशन अपने घर में चली गई । जयराज कार लेकर अपने बँगले की ओर बढ़ा ।

गुलशन ने अपने घर की सीढ़ी पर पहला ही पग रखा था कि एक पुराने प्रेमी से मुठभेड़ हो गई ।

“अब तो मेरी सरकार ने नई चिड़िया फाँस ली है—” वे कहने लगे—“अब हम गरीबों को कौन पूछता है !”

“क्या करें बाबू !...रुपयों के लिये सब कुछ करना पड़ता है—” गुलशन ने एक मधुर कटाक्ष के साथ कहा और उन साहब का हाथ पकड़ कर मुलायमित के साथ दबाया, इस अभिप्राय से कि अपनी परिस्थिति साफ कर दे ।

“तुम उससे रुपया पाने की आशा छोड़ दो मेरी बुलबुल !—” वे कहने लगे—“वह एक नम्बर का आवारा रईस है । गाँठ का पूरा

है, मगर आँख का अन्धा नहीं है। सच, वह पक्का खिलाड़ी है गुलशन !...”

“पक्का खिलाड़ी !”—भौं पर बल डाल कर बोली वह—“मैं भी दिखा दूँगी कि एक तबायफ का जाल कितना मुनहरा और कारी होता है....”

“तुम !....ऐसा कर सकोगी ?”—हँसने लगे वे ।

“हाँ ! हाँ ! देख लेना !...ऐसा कर दूँगी—और उसके सारे जर पर कब्जा करके तुम्हारे साथ शादो कर लूँगी और आराम से जिन्दगी गुजारूँगी....”

“किस सपने की बातें कह रही हो मेरी जान !...ऐसा नहीं होगा, तुम ऐसा नहीं कर सकती....”

“अगर करके दिखा दूँ तो !” गुलशन उत्तेजित स्वर में बोली ।

“तो तुम्हारे और मेरे होठों में जंग छिड़ जायगी.....हाँ...” कहकर उन्होंने गुलशन को अपने पास खींच लिया और जबरदस्ती एक चुम्बन ले डाला । सीढ़ी पर अन्धकार था और सबक मुनसान थी, अतः कोई यह बात नहीं देख सका ।

“शैतान कहीं के....” गुलशन चमक कर बोली—“ऐसी जबरदस्ती करते हो कि नाइक गुस्सा आता है....”

“गुस्सा मत कर बैठना मेरी जान !...नहीं तो फिर वैसी ही हरकत हो जायगी”—कहकर उन्होंने उसके हाथों पर पाँच रुपये का एक नोट रख दिया ।

“यह क्या !...” गुलशन ने पूछा ।

“बेजा हरकत की कीमत—मय सूद—दर सूद !—” और उन्होंने पुनः एक वैसी ही हरकत करके अपना रास्ता लिया ।

गुलशन उनके जाने पर घृणा से बड़बड़ा उठी—“जलील कहीं के !....मुझे जर-खरीद बाँदी समझ रखा है...”

और वह खट-खट कर सीढ़ियाँ चढ़ गई ।

जयराज ने कार गैरज में खड़ी कर दी और अपने ड्राइंगरूम की ओर बढ़ा। अभी वह दरवाजे पर ही था कि उसे चौंक कर रुक जाना पड़ा। उसने आश्चर्य के साथ देखा कि इस आधी रात के समय उसके ड्राइंगरूम में उसके पिता उपस्थित हैं।

रायबहादुर सेठ गंगादास जयराज के पिता थे। जयराज सेठजी की एक मात्र सन्तान था। इसलिये सेठजी उसे बहुत प्यार करते थे। पिता का असीम स्नेह पाकर जयराज पथभ्रष्ट हो चुका था—इसका उत्तर-दायित्व उसके पिता रायबहादुर सेठ गंगादास पर ही था।

सेठजी अपना कारबार स्वयं देखा करते थे। जयराज को अबतक उन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी थी। उसे एक अलग बैंगला तथा मोटरकार, नौकर-चाकर आदि प्रदान करके वे निश्चिन्त से हो गये थे। सोचते थे अभी जयराज अनुभवहीन है—कुछ आनन्द कर ले—फिर तो उसे कारबार की भङ्गटों में सारा जीवन व्यतीत करना ही है।

जयराज दिन रात अपने बैंगले में रहा करता था। कभी कभी सेठजी भी उसके बैंगले पर आकर उसे देख जाया करते थे।

मगर ऐसे समय में वे कभी न आये थे। जयराज यह भली प्रकार जानता था कि उसके पिता बहुत सीधे-साधे हैं—मगर कभी-कभी उनकी गम्भीर मुखाकृति देखकर उसे उनका चरित्र बहुत गहन एवं गूढ़ प्रतीत होता था।

जयराज दबे पाँव कमरे के भीतर आया। सेठजी ने उसकी ओर देखा।

“आ गये तुम !”—कहा उन्होंने—“मैं तीन घण्टे से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ !”

“.....” जयराज चुपचाप खड़ा रहा। वह अपने पिता के आगे के वाक्य सुनना चाहता था।

“कहाँ गये थे जयराज ?”

“यों ही घूमने चला गया था पिताजी !” जयराम ने बात छिपानी चाही ।

“आखिर कहाँ !—”

“यों ही !...”

“क्या मैं उस स्थान का नाम नहीं सुन सकता, जहाँ तुम घूमने गये थे ?—”

उसके पिता का स्वर आवेश से काँप उठा था ।

“बोटिंग करने चला गया था पिताजी !...”

जयराम ने कहा । मगर उसका हृदय तीव्र-वेग से धड़क रहा था—
न जाने क्यों !

“अकेले ही गये थे या और कोई था साथ में ?—”

“अकेले ही....” जयराम ने उत्तर दिया ।

जयराम ने गुलशन का साथ रहना छिपा जाना ही उचित समझा—
क्योंकि वह जानता था, उसके पिता को यदि कहीं यह पता लग जाय
कि वह शराब पी-पीकर वेश्याओं के साथ आवारों की तरह घूमता रहता
है तो वे न जाने क्या-क्या बढ़ावायें ।

“किसी को साथ ले लेना अच्छा रहता है—इस तरह रात में
अकेले कहीं मत जाया करो...”

सेठजी कुर्सी पर से उठ खड़े हुए ।

जयराम ने समझ लिया कि अब वे जाना चाहते हैं ।

“और देखो !...” सेठजी रुक कर बोले—“इधर बहुत दिनों
से तुम कोठी पर भी नहीं आये...”

‘कोठी’ से, सेठजी का तात्पर्य अपने बँगले से था—जो जयराम
के बँगले से काफी दूरी पर था ।

“कल आ जाऊँगा पिताजी !...”

जयराम ने कह दिया मगर प्रारम्भ ही से मनोरंजन में जीवन
व्यतीत करने का आदी हो गया था वह और इसीलिए अपने पिता की

कोठी पर बहुत कम जाता था; क्योंकि वहाँ जाने पर, रोजगारी मामलों में अपना मस्तिष्क लड़ाना उसे व्यर्थ-सा प्रतीत होता था ।

जयराम जानता था कि उसके पिता के पास इतना पर्याप्त धन है कि यदि वह कई जन्म तक, सतर्कता-पूर्वक साकी और शराब पर रुपये छुटाये तो भी वह घटने का नहीं ।

“कल अवश्य आना”—सेठजी ने अन्तिम चेतावनी दी—“अब तुम बहुत घूम-फिर चुके । कुछ अपना व्यापार भी तो देखो—मेरे बाद अकेले तुम हो, जो इन सब मामलों की देख-रेख करोगे । तुम्हारी माँ भी नहीं कि वह तुम्हें मेरे बाद कुछ सिखा-पढ़ा सके ।”

जयराम की माँ को मरे हुए आज सात वर्ष हो चुके थे । जिस समय उसकी माँ की मृत्यु हुई थी, उस समय जयराम पन्द्रह साल का था और नवें दरजे में पढ़ता था ।

पिता के मुख से अपनी माँ का नाम सुनकर जयराम के नेत्रों के समक्ष, सात साल पहले का दृश्य चित्रित हो उठा ।

वह उसी समय स्कूल से आया था । बस्ता रखकर अपने माँ के कमरे में गया, तो देखता क्या है कि वहाँ डाक्टरों का जमघट लगा है । उसके पिता भी उपस्थित थे । सभी के मुँह पर गम्भीर बेचैनी छाई हुई थी ।

जयराम को देखते ही उसके पिता ने लपक कर उसे हृदय से लगा लिया । उनके भीगे नेत्रों से भर-भर आँसू बह चले ।

बालक जयराम कुछ भी न समझ सका । सेठजी उसे लेकर उस पलंग के पास आये, जिसपर कराहती हुई उसकी माँ—सेठानी पड़ी हुई थी । जीवन के लक्षण शेष हो चले थे । चेहरा मृत्यु की सफेदी धारण किये हुए था । साँस धीरे-धीरे चल रही थी ।

अपनी माँ की चिन्तनीय अवस्था देखकर बालक जयराम आश्चर्य-चकित हो उठा । अभी प्रातःकाल जब वह स्कूल जा रहा था तो

उसकी स्नेहमयी माता ने स्वयं अपने पास बिठाकर उसे खाना खिलाया था ।

तो फिर इतनी ही देर में उन्हें क्या हो गया ?—उनपर कौन-सी विपत्ति घहरा उठी, कौन-सा वज्र टूट पड़ा ?

“माँ !...” कहकर जयराम अपनी माँ की छाती पर लुढ़क पड़ा ।

रुग्ण माँ के नेत्र धीरे से खुल गये । शिथिल हाथों ने अपने हृदय के टुकड़े को, अपने रक्त-माँस को, अपने कलेजे से सटा लिया । मर-णासन्न अधरों ने अपने लाल के कपोलों पर शुभाशीर्वाद की अन्तिम छाप अंकित कर दी ।

“मेरी निशानी है यह !” टूटे शब्दों में उन्होंने कहा सेठजी से—
“इसे दुख न हो, ख्याल रखना इसका !...इसकी शादी...शादी... इसके मन के अनुसार...कर देना....”

कहते-कहते सेठानी का जीवन-प्रदीप बुझ गया । युगों से पिंजरे में बन्द पंछी अवसर पाकर उड़ चला ।

सेठजी मृतक शरीर पर पछाड़ खाकर गिर पड़े ।

जयराम ‘माँ-माँ’ कहकर जोरों से रो उठा ।

अकर्मण्य डाक्टर लोग हाथ मलते हुए खड़े रह गये और मृत्यु की भीषण छाया अपना शिकार ले उड़ी ।

एक साधारण दिल की बीमारी ने सेठानी को, सेठजी से और जयराम से अलग कर दिया । बीमारी के लिये दवा है मगर मृत्यु के लिए नहीं ।

सात वर्ष पहले का वह दृश्य जयराम के नेत्रों में चलचित्र की भाँति नृत्य कर उठा । अपनी स्नेहमयी माता की याद ने उसके नेत्रों में अनजाने ही आँसू ला दिये ।

जयराम के नेत्रों में अभ्रविंदु देखकर सामने खड़े हुए सेठजी चौंक पड़े । उन्हें ऐसा लगा, जैसे उनके किसी बात से जयराम को महान् दुःख पहुँचा हो ।

“रात ज्यादा बीत चुकी है। अब तुम आराम करो... मैं चलता हूँ—” कहते हुए घूम पड़े सेठजी और दरवाजे की राह बाहर निकल आये।

सड़क पर सेठजी की अपनी कार खड़ी थी, सेठजी को आते देखकर शोफर ने कार का दरवाजा खोल दिया। सेठजी कार पर जा बैठे। कार तेजी के साथ दौड़ चली।



रूप की उस दुनिया में खूब रंगरेलियाँ होती हैं। शराब की नदी बहती है—रुपयों से भोली छोकरीयों की अस्मृत और जवानी खरीदी जाती है। उस दुनिया में, एक मधुर मुस्कान पर रुपये बरस पड़ते हैं—एक कटाक्ष पर दिल घायल चिड़िया की तरह छुटपटाने लगता है—अधरों के एक मादक-सम्पर्क पर मोतियों की लड़ी शबनम-सी भरने लगती है।

उस दुनिया में दिन की कीमत कुछ नहीं।

मगर रात की कीमत बहुत कुछ है।

उस दुनिया में कितने ही युवक भ्रमर, तितलियों के रूप माधुरी पर मुग्ध होकर अपना सब कुछ लुटा बैठते हैं और भिखारी बनकर पुनः उन्हीं तितलियों के द्वारा पर भीख माँगते हैं।

यह तितलियाँ, जो दिन के शुभ्र-प्रकाश में चुड़ैलों-सी दिखाई पड़ती हैं मगर रात्रि में, कृत्रिम उपादानों की सहायता से अपने को परी जैसी बना लेती हैं, अपने फतिगों के लिए।

वे ऐसी तितलियाँ हैं, जिसके अंग-प्रत्यंग की सुन्दरता रुपयों से तौली जाती है। उनके मुस्कान के लिए, उनके कटाक्ष के लिए, उनके

आगाराघों के लिए, उनके कंठ के लिए, उनके वक्षस्थल के लिए, उनकी कमर के लिए एवं उनके घृणित से घृणित अंगों के लिए—भरपूर मूल्य देना पड़ता है ।

और अन्धे लोग देते भी हैं क्योंकि उनमें सौन्दर्य होता है; इला-ह-ना झुलकता हुआ—उनमें अदा होती है, चंचलता में भरी हुई ।

इसी दुनिया के बीच सबजपरी गुलशन का मकान था ।

रात्रि में दूर-सी दीखनेवाली परी, इस समय प्रातःकाल हो जाने पर कामी कुत्तों द्वारा रातभर निचोड़ी हुई एक तुच्छ-वस्तु की तरह अपने बिस्तरे पर लेटी है ।

गुलशन के तबलची मियाँ ताल खाँ, जब उसके दरवाजे पर आये तो उसे लम्बी ताने सोते देखा ।

मियाँ तालखाँ की उम्र लगभग साठ साल के होगी । सर और दाढ़ी-मूँछ के बाल अधकें हो गये हैं । बदन पर से रवानी और जवानी चिड़िया की तरह उड़ गई है ।

“बीबी !” पुकारा मियाँ तालखाँ ने बिस्तरे के पास आकर ।

“उँ हूँ...उँ हूँ !...” करके गुलशन ने आँखें खोल दी और उठ बैठी ।

“अब तक तुम सोई हुई हो ?—” मियाँ तालखाँ चारपाई पर बैठते हुए बोले ।

“क्या करूँ उस्ताद !....” कहकर गुलशन ने एक जालिम आँगड़ाई ली और अल्हड़ता के साथ उस्ताद की गोदी में छुढ़क पड़ी ।

और उस्ताद तालखाँ ने उस कोमल शरीर पर हाथ फेर-फेरकर यह बता दिया कि वे, इस गये गुजरे बुढ़ापे में भी जवानी के दिनों की सुनहली याद भूले नहीं हैं ।

“वाह-वाह !...” उस्ताद बोला—“इस वक्त तो तुम्हारे आँखों की कुल शराब बाहर छलक चुकी है—अब तो खाली प्यालियाँ हैं, जिनमें शराब का एक कतरा भी नहीं, मदहोशी का एक जरा भी नहीं !”

“सुबह-सुबह तुम्हारी जवान दौड़ चली न उस्ताद !”—पड़े-पड़े गुलशन ने कहा ।

“उठो-उठो !...” उस्ताद ने उसे जबरदस्ती उठाना चाहा—“जरा खिड़की के पास चलकर निकलते हुए आफताब को अपने हुस्न का छलकता हुआ शराब तो पिला दो । बेचारा प्यासा है बहुत दिनों का....”

“तुम बड़े वैसे हो उस्ताद !...”

“हाँ-हाँ !....जरूर वैसे हूँ । तभी तो जब तुम बच्ची थी, तब मैं जवान था और जब तुम जवान हो तो मैं बुढ़ा...”

“बुढ़ापा बड़ी मजेदार चीज होती है उस्ताद !...है न !”

“है तो !”—उस्ताद तालखाँ बोला—“मगर तुम्हारा बुढ़ापा तो खुदा जाने क्या क्रहर वरपा करेगा । देखना फिर, कितने पतिंगे जल मरने को आते हैं...”

“.....”

बुढ़ापे के दिनों की याद आते ही गुलशन काँप उठी ।

कहाँ यह मादक यौवन, मदिराभरी आँखें, तलवार जैसी पुतलियाँ, सेव जैसे कपोल, अंगूरों के-से मिठासयुक्त अघरद्वय, काबुली अनार जैसी दन्तपंक्तियाँ, कोयल जैसा कंठ, उन्मादकारी वत्सस्थल और मधुर-कम्पन से भरी हुई कमर....

और कहाँ जर्जर बुढ़ापा, शुष्क आँखें, सूखे काँटों जैसी पुतलियाँ, छुहारे जैसे कपोल, छाती पर मानो लटकती हुई दो मरी मुगियाँ और झुकी हुई डाली जैसी कमर ।

हाय-हाय ! ऊँह-ऊँह !

“बुढ़ापा का नाम सुनकर बहुत गमगीन हो गई !” उस्ताद तालखाँ ने कहा—“अब तो उठो....जरा आँगन में चलकर मुँह हाथ धो लो और गुलाब के गमले के पास खड़ी होकर जरा कमर तोड़ अंगड़ाइयाँ ले लो ताकि अधखिली गुलाब की कलियाँ खिलखिलाकर तुम्हारे हुस्न की दाद देने लगे....”

“उस्ताद !....” स्वर में कृत्रिम क्रोध लाकर तथा आँखों में हलाहल भरकर बोली गुलशन—“तुम्हारी ज़बान कतरनी हो गई है...जी में आता है कि पकड़ कर बाहर खींच लूँ....”

“जरूर खींच लो ज़बान !...रस्सा कशी का मजा आ जायगा”—
उस्ताद ने कहा ।

दोनों हँस पड़े ।

उस समय सूरज का गोला काफी ऊपर चढ़ आया था और ग्विडकी की राह गुलशन का सौन्दर्य देख रहा था ।

“कल की कुछ वारदात तो तुमने बताई ही नहीं बीबी !—” उस्ताद ताल खॉ ने कहा — “कल तो तुम्हारा पाला एक मक्खीचूस रईस से पड़ गया था—क्या हुआ !...कुछ मिला या नहीं !...”

“सिर्फ पचास रुपये मिले...जयराम था, जानते हो न उसे उस्ताद !”

गुलशन ने उस्ताद ताल खॉ की ओर प्रश्नसूचक-दृष्टि से देखा ।

“भला उस आवाज़ रईस को कौन मर्द का बच्चा नहीं जानता !”—
उस्ताद ने कहा—“शराब पीकर भी होशो-इबास दुरुस्त रखता है... शैतान है वह बीबी, शैतान !...”

“उस शैतान की शैतानी मैं खत्म कर दूँगी उस्ताद !”—गुलशन ने कहा—“अपना पुरा रंग मैं उसपर चढ़ा चुकी हूँ...वह मुझे भूल न सकेगा !...”

“वह अगर भूल भी जाय तो तुम उसे कभी न भूल सकोगी बीबी !....अपने दिल पर काबू रखना । कहीं उसकी दिलफरेब सूरत तुम्हें फिदा न कर ले ।”

“कैसी बातें करते हो उस्ताद !...एक तवायफ का दिल पत्थर का होता है, जो टूट जाता है मगर पिघलता नहीं”—गुलशन ने कहा ।

“तुम तवायफ हो...” उस्ताद बोला—“मगर यह न भूलो कि तुम औरत भी हो....तवायफ तुम चन्द सालों से हो मगर औरत तो

तुम उस वक्त से हो, जब से तुमने इस दुनिया की सूरत पहले-पहल देखी...”

“औरत होने से क्या होता है उस्ताद !—”

“तुम समझती हो कि औरत का दिल पत्थर-सा होता है—मगर यह समझ लो कि औरतें खुद अपनी कमजोरियाँ नहीं समझ पातीं और यही सबब है कि वे अपने मोम जैसे मुलायम दिल को पत्थर-सा कड़ा समझने लगती हैं...”

“उस्ताद ! तुम्हारे कहने का मकसद यह है कि मैं कमजोर हूँ !—”

गुलशन के चेहरे पर आश्चर्य का भाव था ।

“वेशक !”—उस्ताद बोला—“वक्त पड़ने पर तुम फिजल भी सकती हो !”

“जाने भी दो इन बातों को उस्ताद ! देखा जायगा—अब तो चिड़िया पाँस ही ली है । आगे-आगे देखिये होता है क्या !”

कहकर गुलशन उठ खड़ी हुई और नित्य क्रिया आदि आवश्यक कार्यों में लग गई ।

उस्ताद ताल खाँ उसके खाली होने की राह देखता रहा ।

एक घण्टे के बाद, एक धानी रंग की कीमती साड़ी पहने हुए आई वह और बड़े से आईने के सामने खड़ी होकर अपने बाल पर कंधी फेरने लगी । नागिन-सी लट्टें, उसके लहरदार कमर पर लहरा उठीं ।

उस्ताद ताल खाँ निश्चल बैठा रहा, उस परी का सौन्दर्य देखता हुआ ।

“अस्सलाम वालैकुम !” सहसा चिल्ला उठा उस्ताद, जयराज को दरवाजे पर खड़े हुए देखकर—“आइये हज़ूर ! तशरीफ मुबारक !...”

सचमुच जयराज था । धीरे से कमरे के अन्दर आ रहा ।

गुलशन ने घूमकर जयराज की ओर देखा—होठों पर मधुर मुस्कान बिखर गई ।

उस्ताद भी मुस्करा उठा—गुलशन की सफलता देखकर ।

“कोर्निश अर्ज है मेरे राजा !...”

भुक्कर गुलशन ने एक लम्बा सलाम किया ।

जयराज ने लपक कर उसे पकड़ लिया, बोला —“तसलीम मेरी हूर !—इतना भुक्कने की आवश्यकता नहीं...”

“बजा फरमाते हैं !”— उस्ताद ताल खाँ बोला—“कम से कम इन्हें अपनी नाजुक कमर पर तो तरस खाना ही चाहिये, ज्यादा भुक्कने से बल आ जायगा...”

गुलशन अपने बालों पर कंधी फेरने लगी । जयराज उसके एकदम निकट खड़ा हुआ उसका सौन्दर्य पान करने लगा क्योंकि जलपान का समय था न !

उस्ताद ताल खाँ ने ऐसे समय वहाँ से हट जाना ही उचित समझा और कमरे से बाहर जाकर सारंगिये तान खाँ के पास बैठ गया ।

“खैरियत तो है गरीब परवर !”—होठों पर लिपस्टिक फेरते हुए उसने पूछा ।

“ब्रम्हारी बला से !” मुस्कराकर कह दिया जयराज ने ।

उस समय गुलशन के खुले हुए सर पर घटा जैसे बाल लहरा रहे थे । चेहरा यों दमक रहा था, जैसे सघन-घटा के मध्य चन्द्र की छटा ।

और उस समय, जब कि गुलशन ने अपनी नाजुक देह पर बल देकर अगड़ाई ली तो उसके वक्षस्थल का मधुर-कम्पन देखकर जयराज की हृत्तन्त्री कम्पित हो उठी !

वह आगे बढ़ा । गुलशन के मादक नेत्रों के हलाहल भरे कटाक्ष तथा रक्तवर्ण अधरों पर नृत्य कर उठने वाली मदहोशो भरी मुस्कान ने उसे और भी प्रोत्साहन दिया ।

दूसरे ही क्षण वह सौन्दर्य-प्रतिमा जयराज की गोद में थी ।

रातभर के वियोग की बेचैनी से पीड़ित, दो उल्लसित-हृदय एक दूसरे का चुम्बन कर उठे ।

जयराज के पिपासातुर होंठ वासनापूर्ण भंगिमा से गुलशन के अधरों की ओर बढ़े—

मगर गुलशन ने उसके होठों पर अँगुली रखकर उसे रोक दिया ।

“अभी नहीं !...” कहा उसने—“अभी होठों पर की लिपस्टिक गीली है । मेरे राजा के होंठ लाल-लाल हो उठेंगे....”

“सुबह से बिना एक बूँद पिये, तुम्हारे यहाँ चला आया हूँ—” जयराज ने कहा—“अब तो कृपा करके अपने अधरों की मदिरा पिला दो !”

“बहुत बेताब हो रहे हो, मेरे राजा !...शराब चाहो तो पिला दूँ !—”

कहकर गुलशन उठी । आलमारी खोलकर जान डिवस की बोतल निकाली और चाँदी का जाम भरकर जयराज के आगे कर दिया ।

जयराज ने चुपचाप वह आधुनिक-विष पी लिया । गुलशन ने भी जयराज के अनुरोध से थोड़ी-सी पी ।

इसके बाद दोनों चारपाई पर आ बैठे ।

गुलशन ने आज अपने अन्दर एक विचित्र परिवर्तनका बीज अंकुरित होते देखा । अब तक अपने जिस हृदय को वह पथर समझती थी, उसे अपने मोम सा पिघलता हुआ महसूस किया ।

यौवन-मद से परिपूर्ण उसके ललितांग में, अब तक किसी भी पुरुष को देखकर, छूकर, मृदु कम्पन नहीं हुआ था । उसके हृदय में कभी जवानी की लहरें नहीं लहराई थीं ।

अब तक कामलोलुप मनुष्यों को देखकर उसका हृदय घृणा से भर उठता था—

मगर आज जयराज के आलिंगन ने उसमें मदहोश जवानी की तरंगें तरंगित कर दीं । वह अपने में एक विशाल अभाव का अनुभव कर काँप उठी ।

अब तक जिसने पुरुषों की जमात को घृणित समझ रक्खा था, वही एक क्षणिक परिवर्तन से विचलित हो उठी।

जयराम के हृदय में कोई परिवर्तन न हुआ। हाँ! अन्य साधारण वेश्याओं से गुलशन में उसे अधिक आकर्षण का आभास मिला था और यही कारण था कि वह जो कभी भी किसी वेश्या की संपर्क से प्रभावित न हुआ था, आज इस प्रकार गुलशन के मकान पर आया था।

“बहुत तकलीफ हुई आपको यहाँ आने में....” गुलशन ने कहा।

उसका फूल-सा शरीर जयराम की गोद में था।

“मनुष्य को कोई कष्ट होता है, कोई तकलीफ होती है—तभी तो वह डाक्टर के पास आता है”—कहा जयराम ने, मुग्ध-दृष्टि से गुलशन के होठों की ओर देखते हुए।

शायद वह यह जानना चाहता था कि उन मादक-अधरों पर लगी हुई लिपस्टिक की लालिमा सूखी या नहीं।

“तो मैं डाक्टर हूँ—मसीहा हूँ!”—गुलशन ने पूछा।

“जिसके पास दवा होती है, वही तो डाक्टर होता है!—”

“तो मेरे पास कौन-सी ऐसी दवा है मेरे हज़ूर!...”

गुलशन के मुस्कान से मदिरा छलछला उठी।

“मेरे तृपित अधरों के लिए तुम्हारे पास चुम्बन की दवा है...मेरे दग्ध-हृदय के लिये तुम्हारे पास ठंडा मरहम है....समझीं!...”

जयराम के हाथों का बन्धन, गुलशन के कोमल शरीर पर दृढ़ हो उठा।

“बातें बनाना खूब जानते हो मेरे राजा!...तुम पर सब कुछ निछावर कर देने का जी चाहता है...”

“सब कुछ?” पूछा जयराम ने—“अपनी भोली-जवानी भी?”

“हाँ!...”

“अपनी हसरतें भी?”

“जी हाँ...”

“अपने अरमान भी !”

“वेशक ! ...”

“रूप्यों का भूखे, अपने हृदय का कपाट भी !”

जयराज के मुख पर घृणा के भाव आ गये थे।

“कैसी बातें करते हैं आप !”—कहा उसने, प्रार्थना भरे स्वर में।

“चुप रहो...” तीखे स्वर में जयराज बोला—“आज कई साल में मैं तुम्हारी दुनिया की सैर कर रहा हूँ ! मुझे कच्चा खिलाड़ी मत समझना मैं जानता हूँ कि इन्हीं कपट भरे वाक्यों से तुम लोग भोले युवकों का यौवन और धन लूट लेती हो !...मेरे सामने वह वेश्या अच्छी है, जो अपने कपटपूर्ण हृदय का भेद न छिपाकर, लोगों से काफ़ी रुपये ऐंठती हैं। मगर वह वेश्या—वह वेश्या, जो अपने हृदय के हलाहल पर व्यर्थ आवरण डालकर, सात्विक प्रेम का नाटक रचता है और मूर्ख युवकों पर अपने जहरीले शब्दों की मोहनी डालकर, उनका धन और यौवन लूटकर, उन्हें भिखारी बना देती है...ऐसी वेश्या को मैं घृणा की दृष्टि से देखता हूँ...”

“.....”

एक शब्द भी न बोल सकी गुलशन।

“कल तुम्हारे व्यवहार ने मुझे आकर्षित किया था...” जयराज कहता गया—“मगर आज वह आकर्षण, तुम्हारी कपटपूर्ण बातों से, नष्ट हो गया...मैं यह पसन्द कर सकता हूँ कि तुम अपनी जवानी का मूल्य सौ-पचास रुपये अधिक माँगो मगर यह नहीं चाहता कि तुम सच्चे-प्रेम का स्वांग रचकर मुझे धोखे में डालो...”

“मैं जानता हूँ, वेश्या प्रेम नहीं करती, वह केवल कपट करती है !”

“क्या किसी भी तवायफ को दिल नहीं होता !”

बड़ी कोशिश से पूछा गुलशन ने।

“दिल !...” बोला जयराज—“वेश्याओं को दिल हो तो आज

यह जगमगाती हुई हुरन की दुनिया लुप्त हो जाय और संसार में वेश्याओं का नाम ही न रह जाय..."

उठकर खड़ा हो गया जयराम—

“तुम भी उन्हीं वेश्याओं में से हो, जो अपनी जवानी का सौदा चाँदी के टुकड़ों से करती हैं...तुम्हें रुपया चाहिये....अपना पेट भरने के लिये रुपया चाहिये तुम्हें, पहनने के लिये रुपया चाहिये...तुम्हारे साथ सोने के लिये रुपया चाहिये..."

एक क्षण रुका जयराम ।

“तुम्हारे शरीर के अंग-प्रत्यंग के लिये रुपया चाहिए....रुपयों की बाँदी ! ले रुपये !..."

जयराम के हाथ जेब में गये—

दूसरे ही क्षण दम-दस क कई नोट गुलशन के सामने हवा में उड़ते दृष्टिगोचर हुए । गुलशन चित्रलिखित-सी बैठी रही ।

व्यग्र जयराम कमरे से बाहर हो गया ।

यद्यपि जयराम शराब पीकर कभी अपनी सुधबुध नहीं खोता था—परन्तु रात में और पुनः प्रातःकाल अत्यधिक मदिरा-पान करने के कारण, उसका मस्तिष्क विकृत हो गया था और उसने इस समय जो बातें कहीं थीं, वे उसके अन्तस्तल की प्रेरणा नहीं थीं—वरन् शराब की मददहोशी थी, जो वाक्यों द्वारा बाहर निकल रही थी ।

यही कारण था जयराम के एकाएक उत्तेजित हो उठने का ।

परन्तु गुलशन यह सब न समझ सकी । उसने जयराम के वाक्यों को अपने अपमान का प्रतिरूप समझा ।

नारी सब कुछ सहन कर सकती है परन्तु अपना अपमान वह कभी नहीं सह सकती—सो भी एक वेश्या !

जिसकी रूप-शिखा पर कितने ही मनुष्य-क्रीट भस्म होने को प्रस्तुत रहते हैं ।

गुलशन के हृदय में प्रकट होती हुई परिवर्तन की भावना दूर भाग

गई, उसका अन्तस्तल अपमानभरे वाक्यों से लुब्ध हो उठा । उठे हुए वक्ता का कम्पन बढ़ गया ।

“उस्ताद !...”

उसने तीव्र स्वर में पुकारा ।

उस्ताद ताल खाँ झटपट दौड़ा हुआ आया ।

“क्या है बीबी !...है क्या ?”

“उसने मेरे साथ गुस्ताखी की है !”—गुलशन ने कहा । उस्ताद ने देखा, गुलशन की उठती-बैठती छातियों को और अनुमान लगा लिया कि अवश्य ही जयराज और गुलशन में कुछ बातें हुई हैं ।

“गुस्ताखी तो हर शख्स तुम्हारे साथ कर सकता है—” उस्ताद ने कहा—“तुम अपने पेशे को न भूल जाओ...”

“मेरा यह मतलब नहीं”—गुलशन बोली—“जयराज ने मेरी बेइज्जती की है ।”

“महज अलफाजों से या हरकतों से भी ?”

“अलफाजों से !”—कहा गुलशन ने—“मैं उससे बदला लेना चाहती हूँ उस्ताद ! उसने मेरी सख्त तौहीन की है !...”

“तो यों कहो कि तौहीन की है । बेइज्जती का लफज जवान पर न लाओ...तवायफों की इज्जत होती ही कहाँ है !...”

“उस्ताद ! जरा संजीदगी से बातें करो...मेरे दिल पर साँप लोट रहा है...”

“लोटने दो बिचारे को...वह भी तो तुम्हारे हुस्न का थोड़ा-सा मजा ले ले...” कहकर उस्ताद ताल खाँ हो-हो-हा कर हँस पड़ा ।

“कुछ तरीक़ीब बताओ उस्ताद !...”

“कैसी तरीक़ीब ?”—पूछा उस्ताद ने, बालक जैसा अनजान बनकर ।

“बदला लेने की तरीक़ीब !”—

“बदला !”—हँस पड़ा उस्ताद ताल खाँ—“तवायफ को किसी से बदला लेने का खयाल खवाब में भी न करना चाहिये ।”

“हँसी न करो उस्ताद !”

तुम्हारा बदला सिर्फ यही हो सकता है कि तुम उसे मिलाये रहो और मौका पाकर उस नाचीज परवाने को अपनी शमएसूरत से जलाकर खाक कर दो...”

उस्ताद ने तरकीब बतलाई ।

“ऐसा हां होगा—” गुलशन ने कहा ।

उसके मुखपर दृढ़ संकल्प के चिह्न अंकित हो उठे—

उसकी सूरत और भी देदीप्यमान हो उठी—मगर उस सौन्दर्य-प्रतिमा के अन्तर्गत में एक दाढ़क अग्नि, एक अहम्-भावना की ज्वाला अन्तर्हित थी ।

सूरत पर मिठास—

और दिल में जहर !

यही है एक वेश्या की परिभाषा ।



शहरी वातावरण से दूर, कंजरों की एक छोटी-सी बस्ती थी । शहर वहाँ से ४ मील दूर था ।

ये कंजर खानाबदोश होते हैं—अक्सर अपने स्त्री-पुत्र, गदहे तथा अन्य पालतू जानवर लिये हुए घूमा करते हैं । कभी यहाँ तो कभी वहाँ ।

मगर अमवा गाँव के कंजर खानाबदोश नहीं थे। वे वहाँ अपने भोंपड़े बनाकर बस गये थे। कई पुस्त से ऐसा चला आ रहा था।

यद्यपि आधुनिक सभ्यता का प्रसार उनमें न हो सका था, फिर भी वे अपने गाली-गलौज में ही प्रसन्न रहा करते थे।

कुछ कंजर तो शहर जाकर मजदूरी किया करते थे मगर उनमें से अधिकांश ऐसे थे, जिन्होंने एक जोड़े बन्दर अथवा कोई बड़ा रीछ पाल रखा था। प्रातःकाल होते ही अपनी डुगडुगी हाथ में लेकर, दूसरे हाथ से बन्दरों और रीछ की रस्सी पकड़कर वे शहर चले आते थे और गली-गली घूमते हुए तमाशा दिखाकर पेट भरने के लिए पर्याप्त पैसे एकत्र कर लेते थे।

उनको स्त्रियाँ भी सर पर 'वायस्कोप' का बक्सा रखकर शहर आ जाती थीं और चंचल बालकों को एक पैमे में वायस्कोप का तमाशा दिखाती थीं।

उनके मुख से निकलते हुए वाक्य—“देख रे भैया देख !...नू देख रे भैया देख—” तथा उनकी अँगुली में पड़े हुए लोहे के छल्ले का वायस्कोप के बक्सा के साथ टकटकाना सुनकर बालक हर्ष से नाच उठते थे।

गाँव के छोर को छूती हुई एक पतली-सी नदी बहती थी, जो ग्रीष्म ऋतु में सूख जाया करती थी मगर जाड़े और बरसात में उसमें काफी पानी रहता था।

सुबह-शाम हसीन कंजर बालाओं की मधुर हास्यध्वनि से नदी का पाना छनछन कर तड़प उठता था।

जिस समय अपनी कमर पर खाली घड़ा रखे हुए वे नदी तट पर आतीं तो सौन्दर्य का एक जमघट-सा लग जाता।

इस समय दिन की मुनहरी रेखायें प्रतीच्याकाश पर लुप्त हो चली हैं। सन्ध्या का अन्धकार जैसे समग्र संसार पर व्याप्त होना चाहता है।

दो कंजर बालायें, जमीन पर खाली घड़ा रखे हुए, नदी के किनारे बैठकर बातें करने में तल्लीन हैं ।

दोनों समवयस्क हैं । जवानों के हाथों ने जैसे लडकपन की अलहडता धो डाली है । यौवन-कलिका मुकुलित हो रही है । आँखों में यौवन-जनित उकसाहट का सागर उमड़ पड़ा है वक्षस्थल पर मानों वृद्धों के कोमल पत्तियों का मधुर कम्पन व्याप्त हो चला है । हृदय के किसी कोने में एक सुमधुर अभाव का आभास मिलने लगा है ।

“लवंग !”

एक ने दूसरा को पुकारा ।

दूसरी की हिरन जैसी आँखें, भोलेपन से पहली की ओर उठ गई, जैश उससे पूछ रही हों, संकत द्वारा—“क्या है ?...”

“तुम आजकल बहुत गम्भार रहने लगी हो लवंग !...” पहली ने कहा ।

“तुम बराबर मुझे छेड़ा करती हो...आज जरूर भैया से कह दूँगी...”

“क्या कह दोगी ?...”

“कह दूँगी कि...” लवंग बोली—“...कि केसर मुझसे छेड़खानी करती है...”

“केसर कोई मर्द नहीं, जो तुमसे छेड़खानो करे...मैं भी औरत हूँ, तुम्हारी ही तरह”—केसर ने कहा ।

“औरत हो तभी तो पंचम भैया के साथ...”

वाक्य पूरा होने के पहले ही केसर ने हथेली से लवंग का मुँह दाब लिया ।

नदी की लहरें वेग से किनारे की ओर आई और लवंग तथा केसर पर मधुर छींटे देती हुई, उनके मर्मस्थानों में गुदगुदी भर गई !

“दूसरों की बहुत खोट देखती हो”—केसर ने लवंग को अपनी दोनों हथेलियों के बीच करके कहा—“अपनी क्यों नहीं कहती !”

“अपनी क्या कहूँ ?”—लवंग तुनक कर बोली—“क्या किया है मैंने ?”

“बताऊँ क्या किया है तुमने ?”

“बताओ...”

“आज कई दिन से बीबी बहुत बेचैन-सी दीख पड़ती हैं, इसका कारण क्या है ? यही न कि अब लवंग बीबी की जवानी की मदिरा छलक उठी है । दिल में एक मधुर जलन पैदा हो गई है । यह द्वार जैसी बाहें, किसी पुरुष के गले में पड़ जाने को बेताब हैं । दिल का पंछी पर फड़फड़ा कर उड़ जाना चाहता है... है न यही बात लवंग !...” केसर ने कहा ।

लवंग के कपोल लज्जा से लाल हो उठे । बड़ी-बड़ी आँखें जमीन की छाती पर न जाने क्या खोजने लगीं ?

“क्यों ?” केसर ने लवंग की ठुड्डी पकड़ कर ऊपर उठाई—“दिल का सॉप पकड़ लिया न मैंने ?... अब शरमा क्यों रही हो ? बता दो न अपना भेद !...”

“भेद कुछ नहीं है केसर ! ..” लवंग ने कहा ।

“तब क्या है !....”

केसर ने उत्सुकतापूर्ण स्वर में पूछा ।

“परसों एक दृश्य देखा मैंने, उस दृश्य ने न जाने क्यों, मुझे बेचैन कर रखा है !...”

लवंग ने सर नीचा किये हुए कहा ।

“कैसा दृश्य था वह ?... मैं भी तो सुनूँ !...” केसर बोली ।

“परसों रात में जब तुम यहाँ से चली गई तो मैंने इस नदी के बीच से जाता हुआ एक छोटा-सा बजरा देखा...” लवंग ने कहा ।

“क्या था उस बजरे पर ?”

“उस बजरे पर दो व्यक्ति थे । उनमें से एक तो कोई नौजवान

रईस था, और दूसरी थी एक कम उम्र की छोकरी, जो देखने में वेश्या मालूम हो रही थी—”

“वेश्या !...”

केसर को आश्चर्य हुआ ।

“हाँ !...” लवंग ने कहा—“शायद वेश्या ही थी वह । उस नौजवान की गोद में लेटी थी । चुम्बनों की बौछार हो रही थी । वह छोकरी उस नौजवान की छाती से इस तरह लिपटी हुई थी, जैसे तुम्हारी छाती से भीगी घोती चिपकी हुई है...”

“तुमने यह सब अपनी आँखों से देखा !—”

“हाँ ! चाँदनी रात थी । सब कुछ बहुत साफ दिखाई पड़ रहा था”—लवंग बोली—“वह दृश्य देखकर किस युवती का मन स्थिर रह सकता है ।”

“इसे तो सुनकर ही हमारे दिल में बेचैनी सी छा गई—देखने की कौन कहे !”—केसर ने कहा ।

“तुम्हारी बेचैनी दूर करने के लिये पंचम भैया तो हैं ही...मैं उन्हें तुम्हारे पास भेज दूँगी आज...” लवंग ने मुस्करा कर कहा ।

“तुम्हारे भैया से मैं खुल्लमखुल्ला मिल भी तो नहीं सकती—कैसे बेचैनी घटेगी लवंग ! वह तो और बढ़ जाती है...”

उसी समय दूर से किसी क्षीण-कंठ के पुकारने की आवाज आई—

“लवंगिया !...ओ री लवंगिया !....”

उसका नाम था लवंगलता परन्तु अब बिगड़ते-बिगड़ते लवंगिया हो गया था । बड़े-बूढ़े उसे इसी नाम से पुकारते थे ।

“माँ बुला रही हैं”—लवंग ने कहा—“अब चलना चाहिये—बड़ी देर हो गई ।”

“चलो, चला जाय !”—केशर बोली ।

दोनों ने अपने खाली घड़े उठा लिये और उनमें पानी भरकर अपने घर चल दीं ।

केशर का घर गाँव के दूसरे छोर पर था। वह कंजरी के चौधरी की बेटी थी।

लवंग पानी से भरा हुआ घड़ा लेकर, अपने भोपड़े के दरवाजे पर आ खड़ी हुई। एक बुढ़िया दरवाजे पर खड़ी थी।

वहाँ लवंग की माँ थी।

“कहाँ थी इतनी देर से रे?” बुढ़िया ने पूछा—“कब से पुकार रही हूँ....”

“केसर मिल गई थी, जरा बातें कर रही थी माँ!”

लवंग ने धीरे से उत्तर दे दिया।

“बातें कर रही थी !...” व्यंग्मात्मक स्वर में बुढ़िया ने कहा—“केसर से बात करने में तुझे कुछ ध्यान ही नहीं रहता...क्यों, है न!”

लवंग सर नीचा किए हुए हँस रही थी क्योंकि वह जानती थी कि उसकी माँ का वह क्रोध कृत्रिम एवं क्षणिक है।

“पचास दफा कह दिया कि...” बुढ़िया कह रही थी—“कह दिया कि केसर जब तेरी भाभी बनकर यहाँ आ जायगी तो उससे जी भरकर बातें कर लिया करना...मगर यह छोकरी जो है कि मानती ही नहीं...”

“पंचम भैया अभी नहीं आये क्या माँ !”

पंचम लवंग का सगा भाइ था।

“वह भी तेरी तरह बेकहा हो गया है। कह दिया कि बेटा ! कोई धन्धा-मजूरी करके पेट पाल और इस रीछ-पीछ का भगड़ा छोड़ दे। मेरे सामने तो वह हाँ मैं हाँ मिला दिया करेगा, मगर सबेरा होते ही फिर उसी रीछ का पगहा पकड़ कर डुगडुगी डुगडुग करता हुआ निकल पड़ेगा। इस रीछ ने उसपर जादू कर दिया है रे....जादू...”

बुढ़िया बड़बड़ाने लगी। लवंग घड़ा लिये चुपचाप खड़ी रही।

“लेजा घड़ा भीतर रख दे और जल्दी से खाना बना ले। पंचम आयेगा तो खायेगा क्या, तेरा सर !...”

लवंग घड़ा लेकर भोपड़ी के दरवाजे की ओर बढ़ी ।

“और सुन !...”

बुढ़िया ने रोका ।

लवंग को रुकना पड़ा ।

“क्या है माँ !”—पूछा उसने ।

“गगरी में से थोड़ा-सा पिसान लाकर जम्बू की नाँद में डाल दे ।
बिचारा दिन भर का थका-माँदा नाच कर आता होगा...” बुढ़िया ने कहा ।

जम्बू से बुढ़िया का अभिप्राय, पंचम के रीछ से था ।

लवंग ने भोपड़े के अन्दर जाकर पत्थर की पटिया पर घड़ा रख दिया और तब भौंकी में से थोड़ा-सा आटा लेकर बाहर आई ।

जम्बू की नाँद में आटा डालकर उसने हाथ-मुँह और पैर धोया, तत्पश्चात् चूल्हे के पास बैठकर बाजरे का आटा गूँथने लगी ।

बुढ़िया भोपड़े के बाहर एक पीढ़े पर बैठी हुई बड़बड़ाती रही ।

थोड़ी देर बाद वह उठी और भोपड़े के भीतर आई । कोने में खड़ी हुई अपनी छड़ी ले ली और दरवाजे की ओर बढ़ी ।

“कहाँ जा रही हो माँ !...” लवंग ने पूछा ।

“जाऊँ जरा उसे देख आऊँ !”—बुढ़िया बोली—“इतनी रात बीत गई, अब तक नहीं आया...”

लाठी टेगती हुई बुढ़िया पगडंडी पर से आगे बढ़ी । बुढ़ापे का शरीर था, आँखों की ज्योति मन्द पड़ गई थी—फिर भी पुत्र का प्रेम प्रबल होता है । पुत्र-प्रेम की ही प्रेरणा से बुढ़िया चली जा रही थी ।

“कहाँ जा रही हो काकी !”—रास्ते में एक बालक पूछ बैठा ।

“तेरे ससुराल जा रही हूँ रे !”—बिगड़ पड़ी बुढ़िया ।

“बिगड़ी मत काकी !”—लड़के ने कहा—“मैं तो इसलिये पूछ रहा था कि तुम्हें आँखों से कम दिखाई पड़ता है—दूसरे आज इधर कोई भूत आ गया है....”

“भूत !...”

चौककर खड़ी हो गई वह ।

“हाँ काकी, भूत आ गया है ! आज चौधरी के घर से अभी सुनता आ रहा हूँ”—लड़के ने कहा ।

“शरारत मत कर, ठीक-ठीक बता”—बुढ़िया ने धमकी देकर उससे सच बात जाननी चाही ।

“ठीक कहता हूँ काकी ! तुम्हारे सर को कसम !—”

“क्यों रे ! तेरे सर की कसम !”—बुढ़िया ने कहा ।

“जब तुम मानती ही नहीं काकी, तब जाओ—मैं नहीं रोकता....”

उस समय सन्ध्या का अन्धकार व्याप्त हो चला था ।

बुढ़िया ने कहा—“मैं क्या करूँ रे ! पंचम अभी तक आया नहीं—बड़ा नादान छोकरा है । उसे अपना खयाल तो है ही नहीं, अपनी माँ का भी खयाल नहीं करता वह ।”

“पंचम भैया तो इतनी देर कभी नहीं करते ये काकी !—”

“हाँ रे ! मगर आज तो उसने देर कर दी न !—” बुढ़िया ने कहा ।

उसी समय, पतली पगडंडी पर से आते हुए किसी आदमी की छाया उस लड़के ने देखी ।

“काकी ! पंचम भैया आ गये—” वह चिन्ता उठा ।

“आ गया....” बुढ़िया ने कहा—“कहाँ है वह ?”

“वह आ रहे हैं...” लड़के ने कहा ।

थोड़ी देर में बाईस साल का एक कंजर युवक उनके सामने आकर खड़ा हो गया । उसके दाहिने हाथ में एक डुगडुगी थी और बायें हाथ से वह एक भयानक रीछ की डोर पकड़े हुए था । उसके बदन पर गरीबी के वस्त्र थे मगर शरीर हट्टा-कट्टा था । मुख की गढ़न सुन्दर थी ।

यही था पंचम ।

लवंग का सगा भाई और केशर का प्रेमी ।

“माँ ! तुम यहाँ क्यों खड़ी हो !—” पंचम ने पूछा ।

“यहाँ न खड़ी रहूँ तो क्या अपने सर पर खड़ी रहूँ !—”

बुढ़िया बिगड़ पड़ी—“इतनी देर कर दी, अब पूछता है—माँ यहाँ क्यों खड़ी हो !....आज रात में तेरी डुगडुगी ले जाकर मैं नदी की धारा में फेंक दूँगी, तब तू मानेगा...और सुन ! इस रीछ को ले जा, बीच जङ्गल में छोड़ आ, बिचारे का गला बाँध रखा है....”

“अभी उस दिन तो इसे लेकर जङ्गल में छोड़ने गया था—” पंचम ने कहा—“वहाँ पहुँच कर मैंने इसे छोड़ दिया, इसके गर्दन से अपनी रस्सी भी निकाल ली मगर यह मेरे पास ही बैठा रहा । जब मैं उठकर चलने लगा, तब यह भी पीछे-पीछे यहाँ तक चला आया । मैं क्या करूँ माँ....”

“यह तुझे बहुत चाहता है न !...इसलिये तुझे छोड़कर कहीं नहीं जाता—” व्यंगात्मक स्वर में कहा बुढ़िया ने ।

“ठीक कहती हो माँ !—” पंचम बोला—“लड़कपन से ही यह मेरे साथ रहा है, अब यह कहीं नहीं जा सकता....”

“अच्छा तो फिर इसे खूँटे से बाँधकर खिला और आप कहीं नौकरी कर ले...”

बुढ़िया पर नौकरी की धुन सवार थी ।

“जब रीछ लेकर बाजार जाता हूँ तो बराबर नौकरी की खोज में रहता हूँ माँ ! जिस दिन कोई नौकरी मिल जायगी, मैं यह मदारी का घन्घा छोड़ दूँगा—समझी !...” पंचम ने कहा ।

“अच्छा, जल्दी घर चल । लवंग लिट्टी पकाकर बैठी होगी, टुकुर-टुकुर रास्ता ताकती हुई । उसपर कुछ भी तरस नहीं आता तुझे !...रोज इतनी देर कर देता है...”

आगे आगे बुढ़िया लाठी टेगती हुई चली और उसके पीछे-पीछे रीछ की डोरी पकड़े हुए पंचम ।

भोपडी पर आकर पंचम ने जम्बू को खूँटे से बाँध दिया। जम्बू मजे से नौद में रखा हुआ आटा खाने लगा।

पंचम हाथ-मुँह धोकर रसोई पर आ बैठा...लवंग ने एक पत्तल पर उसके सामने बाजरे की लिट्टी और चटनी परोस दी। पञ्चम खाने लगा।

“भूत...” खाते-खाते पंचम बोला—“चौधरी के यहाँ तो सैकड़ों भूत आते हैं माँ !”

“सैकड़ों भूत—?”

आश्चर्य से चीख उठी बुढ़िया।

“हाँ हाँ !...” पंचम ने कहा—“चौधरी का घर भूतों का जम-घट है।”

“तब तो बेचारी केसर डर जाती होगी—” बुढ़िया बोली—“देख पंचम ! तू जल्दी से कहीं नौकरी कर ले और केसर को दुलहिन बनाकर घर ला। मैंने एक दिन चौधरी से पूछा भी था। वे राजी हैं—केसर का ब्याह तेरे साथ करने को तैयार है...बेचारी केसर डर जाती होगी—सैकड़ों भूत ! बाप रे बाप !...”

बुढ़िया भयभीत हो उठी थी।

पंचम खाते-खाते हँस रहा था।

“चौधरी की चौपाल में रोज शाम को थके-कंजर एकत्रित होते हैं माँ ! दुनिया भर के लुच्चे लफंगे वहाँ जुटते हैं। चौधरी के घर कच्ची शराब उतरती है न !...इसीलिये...” पंचम बोला।

“वही भूत हैं क्या ?” लवंग ने पूछा।

“और नहीं तो क्या ?—” पंचम बोला—“बोतल भर कच्ची शराब पीकर वे आपस में गाली-गलौज करते और चौधरी की चौपाल में बैठे हुए ताश और गोटी खेलते हैं...सच्चे भूत जैसे लगते हैं वे माँ !”

“ऐसी बात है !—” बुढ़िया ने कहा।

“रात के दो बजे तक चौधरी की चौपाल भूतों का अड्डा बनी रहती है—”

पंचम अब तक खा चुका था। बाहर आकर हाथ-मुँह धोया और फटे कुरते की जेब से एक बीड़ी निकाल कर सुलगाई। दो एक बार फक्क-फक्क धुआँ निकाला।

जम्बू के पास आकर पंचम ने उसकी पीठ थपथपाई।

“आटा खा चुके बेटा !...”

बीड़ी का कश लेता हुआ पंचम पगडंडी की ओर बढ़ा।

“कहाँ जा रहा है ?—” माँ ने पूछा।

“भूतों के अड्डे पर !...”

पंचम ने कहा और चौधरी को चौपाल की ओर बढ़ चला।



चौधरी की चौपाल में भूतों का अड्डा जमा हुआ था। खूब शोरगुल हो रहा था। शराब के नशे में बुत्त कंजर, उस समय सचमुच भूतों से दिखाई पड़ रहे थे। गाली-गलौज का बाजार गर्म था।

चौधरी एक ऊँची मचिया पर बैठा हुआ उन कंजरोँ का तमाशा देख रहा था। उसके आगे शराब की कई बोतलें रखी हुई थीं और वह कंजरोँ की आवश्यकता के अनुसार पैसे लेकर उनके हाथ शराब बेचता था।

वह चौधरी के घर की उतारी हुई कच्ची शराब थी—महुए का ठरा।

चौपाल में कंजरोँ के कई गरोह थे। कुछ तो एक कोने में बैठे हुए ताश खेल रहे थे और रह-रहकर बीच में चिल्ला उठते थे—“यह लो पान का दहला—”

कुछ, दूसरे कोने में गोटियाँ खेल रहे थे—कुछ सूजा-पाटी खेलने में निमग्न थे—कुछ योंही निठल्ले बैठे हुए गप्पे हाँक रहे थे और कुछ—कोई भद्दा गाना गाकर अपनी असम्यता प्रकट कर रहे थे।

चौपाल में, कड़ू के तेल का एक दिया अपना मद्धिम प्रकाश फैला रहा था।

दूर अँधेरे में खड़े-खड़े पंचम ने उड़ती नजर से यह सब देखा और तब धीरे-धीरे दबे पाँव चौपाल के दरवाजे की ओर बढ़ा।

सब की नजर बचाकर वह दरवाजे के अन्दर चला गया। भीतर चारपाई पर बैठी हुई केसर अपनी नागिनों से खेल रही थी।

सच !—उसके लम्बे-लम्बे नितम्ब-चुम्बी बाल नागिनों जैसे लग रहे थे।

एक कोने में, कई कनस्टरो में भरा हुआ ठर्रा रक्खा था। कुछ टूटे-फूटे बर्तन पास ही पड़े थे।

दबे पाँव आगे बढ़कर पंचम ने केसर को आँखें मीच लीं। चौंक पड़ी केसर मगर पंचम को देखकर मुस्करा पड़ी।

“बड़े चोर हो तुम !”

केसर ने आँखों में कटाक्ष भरकर कहा।

“बड़ी डाकू हो तुम !—”

पंचम उसके बगल में चारपाई पर बैठकर बोला।

“डाकू कहते हो मुझे...क्यों ? आखिर क्यों ?”—केसर ने पूछा।

“डाकू ही तो हो तुम !...”

“बताओ भी तो कैसे !...”

“तुमने चन्द्रमा की खूबसूरती लूटकर अपने चेहरे पर लगा ली है, गुलाब की लाली लेकर अपने गालों पर मल ली है, शहद की मिठास छीनकर अपने होठों पर रख ली है...”

पंचम कहता जा रहा था कि केसर ने लपक कर अपने दोनों हाथों से उसका मुँह बन्द कर लिया।

दोनों के शरीर एकदम निकट आ गये। गर्म साँसों ने मदिरा की मादकता भर दी दोनों के हृदयों में।

“केसर...”

पंचम के स्वर में प्रेम का माधुर्य भरा था।

“तुम बड़े वैसे हो जी!”—केसर ने कहा—“मैं तुमसे नहीं बोलती...”

केसर के नेत्रों में अकृतिम सौन्दर्य छलक उठा था।

उसी समय चौपाल में बाहर कोई चिल्ला उठा—“साले कहता हूँ कि मेरा ईंट का इक्का है...ला पैसे...नहीं तो समझ ले....”

दूसरी आवाज आई—“चौधरी!....तीन पाव दे दो—लो पैसे”—चौधरी से कोई कंजर शराब माँग रहा था।

अन्दर बैठ हुए केसर और पंचम, बाहर मचे हुए हो-हल्ले का खयाल न कर प्रेमालाप में तल्लीन थे।

“पियोगे!....” केसर ने पूछा।

“पिलाओ!...” पंचम ने कहा।

केसर उठी। आले पर रखी हुई बोतल उठा लाई और पंचम के हाथ में दे दी। पंचम ने बोतल का ‘कार्क’ खोलकर उसका मुँह अपने मुँह से लगा लिया और एक ही साँस में आधी बोतल पी गया।

“बस करो”—केसर ने कहा।

पंचम ने बोतल उसे लौटा दी। केसर ने बोतल में पानी डालकर पुनः उसे भर दिया और यथास्थान रख आई।

दरवाजे पर कुछ खटका हुआ और पंचम चट से चारपाई के नीचे जा छिपा। केसर वैसी ही चारपाई पर बैठी रही।

चौधरी अन्दर आया और से उसने केसर की ओर देखा।

“अभी तू किससे बातें कर रही थी बेटी!—” पूछा चौधरी ने।

“अपने मन से दादा!...”

केसर ने कह दिया।

“अपने मन से ?—” हँस पड़ा चौधरी—“अपने मन से भी कोई बातें करता है !...सो जा ! ज्यादा देर तक जागना ठीक नहीं ।”

“कैसे सो जाऊँ ! इस चिल्लाहट से नींद भी डरकर दूर भाग जाती है—” केसर ने कहा ।

“हो-हो-हो-हो !...” हँसा चौधरी—“इसी चिल्लाहट से तो अपना पेट चलाता हूँ बेटी ! तेरे ही लिये तो सब कर रहा हूँ ताकि शादी के बाद तू खुश रह सके...और हाँ अब सोचता हूँ तेरा शादी हो जाय तो अच्छा है । आज सुबह पंचम की माँ आई थी—तुझे मॉग रही थी । मैंने सोचकर जवाब देने को कहा...”

“.....” केसर के हृदय में प्रसन्नता हिलोरे ले रही थी ।

“पंचम छोकरा भी अच्छा है—” कहा चौधरी ने—“तुझे भालू का नाच खूब दिखायेगा—क्यों केसर !”

“चुप रहो दादा ! तुम क्या करन आये थे अन्दर ?”—

केसर चाहती थी कि चौधरी जल्द से जल्द चला जाय ।

“तीन बातें लेने आया था—” चौधरी ने कहा ।

“बोतलें लेकर जाओ दादा ! मैं सोऊँगी....”

चौधरी ने बोतलें ले लीं और बाहर चला गया । केसर ने उठकर दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया और चारपाई पर आ बैठी ।

हँसता हुआ पञ्चम चारपाई के नीचे से निकला ।

अपने मन से बातें कर रही थीं...क्यों ?...” पञ्चम ने कहा—
“मैं तुम्हारा मन हूँ क्या ?”

“और क्या हो ?—”

लजाकर कह दिया केसर ने ।

पंचम ने हाथ पकड़ कर उसे लपेट लिया ।

केसर की हथेली दिये पर जा पड़ी । दिया झुक से झुक गया और सूचीमेव अन्धकार छा गया उस स्थान पर ।

रोशनी गर्मी का प्रतीक है ।

और अन्धकार शीतलता का ।

उस अन्धकार ने, दो तप्त हृदयों पर शीतलता की वर्षा कर दी ।
जलते हुए दो दिल धुल-मिलकर उस अन्धकार की कालिमा में लुप्त
हो गये ।

बाहर अब तब मदमस्त कंजों की चिल्लाहट मुनाई पड़ रही थी ।

चौधरी अब भी मन्त्रिया पर बैठा हुआ कच्ची शराब बेच रहा था ।



नदी के वदस्थल पर लेटती हुई बालसूर्य की सुनहली किरणें—
धीमे धीमे बहता हुआ प्रातः-शमीरण—चहकती हुई छोटी चिड़ियाँ—
नदी के किनारे भल्लियों की ताक में, एक टाँग खड़ा हुआ बकुला—
गाँव के प्रातः काल का यही दृश्य है ।

चार बजे प्रातःकाल से ही लवंग की माँ की नोंद खुल गई थी और
वह अब तक, दूटा चारपाई पर बैठी हुई, कथरी ओढ़े राम-राम जप
रही थी । बीच-बीच में खों-खों करके खॉम भी लेती थी ।

“यह देखो, इस लड़की को—सड़ी बुढ़िया-सो पड़ी हुई है खाट
पर—” लवंग को अब तक सोता हुआ देखकर बुढ़िया बड़बड़ाने
लगी थी ।

पंचम रात को बहुत देर से लौटा था और चुपचाप जाकर चारपाई
पर लेट गया था, ताकि बुढ़िया को खबर न हो सके ।

खूब तडके ही पंचम उठ जाता था । आज भी उठकर वह नदी
की ओर निपटने चला गया था ।

“अरी उठती है या कान में भोंपू बजेगा तब उठेगी ?—” बुढ़िया
ने चिल्लाकर पुकारा—“लवंगिया ! ओरी लवंगिया !....”

“उठती हूँ माँ !...”

कसमसा कर उठती हुई लवंग बोली ।

“उठती है मेरा सर !...पचास बार चिल्लाती हूँ फिर भी खाट की पाटी सँघती रहती है....”

लवंग ने उठकर भोंपड़ी में भाड़ू दिया, पुनः रात के बचे हुए पानी से बर्तन माँजकर साफ किया ।

तत्पश्चात् जम्बू की नाँद में पानी डालकर उसे पिलाया ।

घड़ा खाली हो चुका था—नदी से पानी लाना आवश्यक था ।

“पानी नहीं है माँ !...नदी से जाकर ले आऊँ !—” पृष्ठा उसने अपनी माँ से ।

“जा...मगर जल्दी आना—” बुढ़िया ने कहा—“जल्दी से अपना काम निपटा कर, बाजार चली जाना और तमाशा दिखाकर दो-चार पैसे वसूल कर लाना । बेचारा पञ्चम कहाँ तक फट-फटायेगा !...”

कमर पर खाली घड़ा रखकर वह नदी तट की ओर चल दी । उस समय पेड़ों की चोटियों पर सुनहला दृश्य नृत्य कर रहा था ।

नदी तट पर पहुँचकर लवंग ने देखा, पञ्चम और केसर वहाँ उपस्थित हैं । उन दोनों के अतिरिक्त वहाँ कोई न था । नदी तट जन-शून्य था ।

लवंग को देखकर पंचम सकुचा-सा गया और जल्दी से भोंपड़ी की ओर चल पड़ा । लवंग ने केसर के घड़े के पास अपना घड़ा रख दिया और केसर के पास चट्टान पर आ बैठी ।

“बहुत सुस्त हैं हमारी भौजी !—” लवंग ने व्यंग्य किया ।

“तुम बड़ी शैतान होती जा रही हो लवंग !—”

केसर ने तुनक कर कहा ।

“हमारा घर का घर शैतान है—” लवंग ने कहा—“पंचम भैया को देखो !...हमारी मासूम भौजी को परेशान कर रक्खा है...”

“तुम्हारी बातों से कोई पार नहीं पा सकता—” केसर ने कहा—
 “आखें तलवार हैं तो जबान कतरनी...”

केसर ने एक चिल्लू पानी उठाकर लवंग के मुँह पर पेंक दिया ।

फिर क्या था, लवंग केसर का हाथ पकड़ कर पानी में घसीट ले चली । दोनों पानी में तैरती हुई आपस में जल क्रीडा करने लगीं ।

“सुना है कल तुम्हारे यहाँ भूत आये थे !” लवंग ने पूछा ।

“कौन कह रहा था तुमसे !”

“मौं कह रही थी...”

“हाँ ! सिर्फ एक भूत मेरे यहाँ था—” केसर ने कहा ।

“तुम डरी नहीं !...”

“डरती क्यों !....मैं तो उसे रोज देखती हूँ । वह हमारे पास रोज आता है...”

“कौन है वह !—”

लवंग ने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

“तुम्हारे भैया !....”

कह, ठठाकर हँस पड़ी केसर ।

लवंग ने पानी में आगे बढ़कर केसर को कमर पकड़ ली । बड़ी देर तक दोनों में गूँथमगूँथी होती रही ।

अन्त में दोनों पानी से बाहर निकलीं और अपने-अपने घड़े भर कर, गीली घोती पहने हुए ही वहाँ से चल दीं ।

उस समय उन दोनों को भोगी धोतियाँ उनके पुष्ट शरीर से चिपकी हुई थीं; जिससे उनका सौन्दर्य और भी खिलखिला उठा था ।

पानी लेकर जब लवंग भोपड़े पर पहुँची तो पंचम अपना रीछु लेकर शहर जा चुका था और बुढ़िया बाहर धूप में अपना सर खोलकर बैठी हुई थी ।

लवंग ने पानी का घड़ा भोपड़े में रख दिया और एक सूखी धोतो

“अपने मन से !—” हँस पड़ा चौधरी—“अपने मन से भी कोई बातें करता है !...सो जा ! ज्यादा देर तक जागना ठीक नहीं ।”

“कैसे सो जाऊँ ! इस चिल्लाहट से नींद भी डरकर दूर भाग जाती है—” केसर ने कहा ।

“हो-हो-हो-हो !...” हँसा चौधरी—“इसी चिल्लाहट से तो अपना पेट चलाता हूँ बेटी ! तेरे ही लिये तो सब कर रहा हूँ ताकि शादी के बाद तू खुरा रह सके...और हाँ अब सोचता हूँ तेरी शादी हो जाय तो अच्छा है । आज सुबह पंचम की माँ आई थी—तुम्हें माँग रही थी । मैंने सोचकर जवाब देने को कहा...”

“.....” केसर के हृदय में प्रसन्नता हिलोरे ले रही थी ।

“पंचम छोकरा भी अच्छा है—” कहा चौधरी ने—“तुम्हें भावू का नाच खूब दिखायेगा—क्यों केसर !”

“चुप रहो दादा ! तुम क्या करन आये थे अन्दर ?”—

केसर चाहती थी कि चौधरी जल्द से जल्द चला जाय ।

“तीन बातें लेने आया था—” चौधरी ने कहा ।

“बोतलें लेकर जाओ दादा ! मैं खोऊँगी....”

चौधरी ने बोतलें ले लीं और बाहर चला गया । केसर ने उठकर दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया और चारपाई पर आ बैठी ।

हँसता हुआ पञ्चम चारपाई के नीचे से निकला ।

अपने मन से बातें कर रही थीं...क्यों ?...” पञ्चम ने कहा—
“मैं तुम्हारा मन हूँ क्या ?”

“और क्या हो !—”

लजाकर कह दिया केसर ने ।

पंचम ने हाथ पकड़ कर उसे लपेट लिया ।

केसर की हथेली दिये पर जा पड़ी । दिया झुक से झुक गया और सूचीभेद्य अन्धकार छा गया उस स्थान पर ।

रोशनी गर्मी का प्रतीक है ।

लवंग ने हाथ की घण्टी बक्स पर रख दी। दाहिना हाथ तस्वीर घुमाने वाली पेंच पर रक्खा और बायें हाथ की अँगुली में पड़ा हुआ लोहे का छुल्ला, टकटक् करके मुमधुर गति से बक्स परबोलने लगा।

साथ ही लवंग के मुख से मधुर स्वर निकल पड़े, जैसे कीयल कूक रही हो—

“देख रे भैया देख !...नू देख ले भैया, देख...देख, तमाशा देख...जी भर कर देख ले भैया देख, देख !...”

लवंग का दाहिना हाथ तस्वीरों वाला पेंच घुमाता जा रहा था और बालकों के नेत्रों के सामने से एक के बाद नित्र धीरे-धीरे खिसकते जा रहे थे।

लवंग की मुमधुर आवाज अब तक जारी थी—

“देख ले भैया, देख ! ताज बीबी का रौजा देख...दिल्ली की बिल्ली देख, नंगी तमोलिन देख, कृष्ण का झूला देख....चलती रेलगाड़ी देख...देख ले भैया देख !...”

तमाशा हो गया। अब दूसरे बालकों ने जैसे दे-देकर शीशों से आँख लगाई। लवंग का क्रम पूर्ववत् जारी हो गया।

इसी प्रकार लगभग दो घण्टे तक लवंग उसी हवेली के सामने तमाशा दिखाती रही। न तो देखनेवाले बालकों का ताँता टूटा और न तो लवंग का क्रम बन्द हुआ।

“शहरी गुण्टों का एक गिरोह, सराब में मदहोश, उधर से आ निकला तीन-चार गुण्डे थे। सभी ने पैर लडखड़ा रहे थे।

लवंग के चारों ओर आकर खड़े हो गये। घूरने लगे उसे। लवंग का हृदय धक-से हो उठा।

“हम तमाशा देखेंगे...” एक ने लडखड़ाती जवान में कहा।

“हम भी देखेंगे...” दूसरे ने कहा।

“दिखल्लाओ मेरी तितली !...” तीसरे ने नशे की भोंक में कहा। और चारो गुण्डों ने शीशों से अपनी आँखें लगा दीं।

“पैसे दे दीजिये बाबू !...” लवंग ने दबी जवान से कहा ।

“पैसे !....” एक ने कहा—“दिखाओ मेरी बुलबुल—बाद को पैसे ले लेना । हम कोई गुण्डे-बदमाश नहीं हैं...”

लाचार लवंग को तमाशा दिखाना पड़ा । उसका क्रम यथावत् जारी हो गया । मुख से कोयल कूक उठी ।

एक गुण्डा, जो लवंग के बगल में ही था, सबसे ज्यादा मदहोश हो रहा था । वह तमाशा देखने के बजाय लवंग को आँखों में देख रहा था ।

“गजब का हुस्न है यार हकीम !” उसने अपने एक साथी को सम्बोधित कर कहा और...

और उसके शैतान हाथ, शरारत भरे ढंग से लवंग के वस्त्र पर दौड़ गये ।

“लवंग चौंक कर खड़ी हो गई । गाल क्रोध एवं लज्जा से रक्तवर्ण हो उठे । वह बोली—“आप लोग जाइये...”

“जाने को कहतो हो !”—एक गुण्डा उसकी ओर दो पग आगे बढ़कर बोला—“पैसा तो पहले ही ले लिला, अब बगैर तमाशा दिखाये ही कह रही हो जाने को...”

“भला इसी में है कि हमें पूरा तमाशा दिखाओ....” दूसरे ने कहा ।

तीसरा, जिसने लवंग के साथ शैतानों की थी, बोला—“यों नहीं...इसे घसीटते हुए अपने घर ले चलो और मजे से तमाशा देखा जाय...”

वह मदमस्त गुण्डा लवंग की ओर बढ़ा और लवंग का हाथ पकड़ कर खींचने लगा । बिचारी लवंग भय से चीख उठी ।

उसे उस समय पंचम की याद आई । यदि पंचम उस समय वहाँ होता तो किसकी मजाल थी कि लवंग की ओर कृदृष्टि डालता । वह बलिष्ठ युवक अकेला ही इन चार-चार गुण्डों के लिये पर्याप्त था—

और साथ में उसका रीछ जग्गू—वह तो खून खञ्जर मचा देता, पंचम का इसारा पाकर ।

परन्तु लवंग का दुर्भाग्य कि पंचम वहाँ न था ।

पञ्चम और लवंग, दोनों भाई-बहन, एक दूसरे को बहुत चाहते थे । पंचम के हृदय में लवंग के लिये असीम स्नेह तथा ममता थी । जिस दिन वह लवंग को जरा भी अस्वस्थ देखता तो उसकी सेवा सुश्रूषा में तुरन्त लग जाता और अपने खाने-पीने का भी खयाल न करता ।

लवंग भी पंचम को आदर की दृष्टि से देखती थी । उसके भैया को कोई कष्ट न हो, इस बात का उसे सदैव ध्यान रहा करता था ।

परन्तु इस संकट के समय कहाँ था पंचम !

कहाँ था उसका भैया !

वह गुण्डा लवंग को घसीट ले गला । लवंग चीखती रही, चीखती रही ।

उसी समय एक चमचमाती हुई कार आकर उस हवेली के सामने रुक गई और उस पर से, मूल्यवान कपड़े पहने हुए एक सुन्दर युवक उतरा ।

वह जयराल था, शहर भर के गुण्डों-बदमाशों एवं शराबियों का सरताज । इस समय वह गुलशन से लड़-भगड़ कर आ रहा था ।

जयराल को देखते ही, उस गुण्डे ने लवंग का हाथ छोड़ दिया और तब गुण्डे जयराल को लम्बा सलाम कर वहाँ से जाने लगे ।

“ठहरो !....” क्रोध से पुकारा जयराल ने ।

और चारो गुण्डों के पैर जैसे जमीन से चिपक गये । बिना एक पग भी आगे बढ़े हुए वे यथास्थान खड़े रहे ।

“मेरे बँगले के सामने कैसा उत्पात मचा रखा था तुम लोगों ने !”—जयराल गरज कर बोला—“और तुम...रहीम के बच्चे ! इस छोकरी की कलाई क्यों उमेठ रहा था !...”

जयराज दो पग आगे बढ़ा। उसकी हथेली हवा में उड़कर रहीम नामक गुण्डे के गाल पर जा बैठी।

“चले जाओ बेईमान कहीं के !...”

जयराज गरज कर बोला। वह आज सचमुच क्रोधित था। गुलशन के यहाँ, शराब की मदहोशी ने, उसे अनायास ही क्रोध ला दिया था, जो अब तक उतरा न था।

किस गुण्डे में इतनी शक्ति थी कि वह गुण्डों के सरताज आवारे रईस, जयराज का मुकाबला करता। वे चुपचाप सर झुका कर चल दिये।

“ओह तुम !”

आवेश के साथ चार पग आगे बढ़कर लवंग के सामने आ खड़ा हुआ जयराज।

“तुम इतना सौन्दर्य लेकर किम साहस पर शहर आई हो—शहर में शरीफ गुण्डे रहा करते हैं—तुम्हारा बचना किसी दिन मुश्किल हो जायगा....”

“क्या करूँ सरकार ! पेट के लिये...”

“पेट तुम्हारा भाड़ में जाय...” जयराज सरोष बोला—“पेट का खयाल है तो इज्जत का खयाल छोड़ दो ! तब देखो, तुमपर रुपयों का कौन कहे, सोने की वर्षा होने लगेगी...अगर पेट के साथ-साथ इज्जत का भी खयाल है तो मर जाओ, जहन्नुम में जाओ...”

“.....” कड़े वाक्य सुनकर लवंग का गला भर आया था।

“दुनिया भर के गरीब, पृथ्वी पर अकारण बोक बने हुए है, मर जाना चाहिये उन्हें...जाओ !...” तड़प उठा जयराज।

“.....” लवंग के नेत्रों से कई बूँद आँसू, जयराज के सामने जमीन पर टपक पड़े।

लवंग ने बक्स उठाकर सर पर रखला और हाथ में घण्टी लेकर धीरे-धीरे चल पड़ी।

चलती बार एक दफा उसने जयराज की ओर घूमकर अपने अश्रु-प्लावित नेत्रों से देखा ।

उन नेत्रों से अगाध करुणा भाँक रही थी । जयराज का शराब के नशे में आया हुआ अभिमान, स्वयं उसे धिक्कार उठा ।

वह सर नीचा किये हुए बैंगले में घुसा ।

बैंगले में वह अकेला ही रहता था । यों नौकर-चाकर बहुत थे । पत्नी न थी क्योंकि अभी तक वह अविवाहित था ।

कमर में आकर भ्रम से वह कोच पर बैठ गया । नौकर लखना ने आगे बढ़कर उसके पाँवों से जूते निकाले, उसकी टोपी खूँटी पर टाँगी और कोट बदल पर से उतार कर हैंगर से लटका दिया ।

जयराज चित्रलिखित-सा कोच पर बैठा रहा । उसे लग रहा था, जैसे उसने आज कोई बहुत बड़ा अन्यायपूर्ण कार्य किया हो, जैसे उसने उस लड़की पर अनायास ही क्रोध दिखाकर अपराध किया हो, जैसे उस लड़की के नेत्र खंजर बनकर उसके हृदय में प्रविष्ट हो गये हों, जैसे उन जवान आँखों के आँसू जयराज के अन्तस्थल में प्रवेश कर, उसका कोना-कोना द्रवित कर रहे हों ।

जयराज के नेत्रों के सामने एक क्षण के लिए लवंग की भोली प्रतिमा नृत्य कर उठी ।

उस प्रतिमा का अकृतिम सौंदर्य देखकर जयराज मुग्ध हो उठा— मगर प्रतिमा के नयन कोटरों में आँसू !...टप-टप जैसे चू पड़े हों जयराज के सामने, जैसे जयराज के हृदय का रक्त, उन अश्रुविन्दुओं के रूप में सूखी जमीन पर लोट रहा हो ।

जयराज के बदन में एक हलकी कँपकँपी दौड़ गई ।

शराब की मदहोशी धीरे-धीरे चेतनता में परिवर्तित होती जा रही थी । जयराज ने अपने सूने हृदय में एक भयानक परिवर्तन का अंकुर उगते देखा ।

दया !

जी हाँ ! आज उसके कठोर हृदय में एक दुखिया गरीब की आँखों में आँसू की बूँदें देखकर, दया लहरा उठी थी ।

आज तक जयराज के हृदय में मदिरा की मादकता एवं हुस्नपरस्ती के अतिरिक्त, दया एवं सद्भावना के लिये तनिक भी स्थान न था ।

मगर आज !

आज उसका दिल दरिया बनकर बह चला था । हृदय के किसी अज्ञात कोने में मधुर एवं अव्यक्त पीड़ा-सी लहराने लगी थी ।

जयराज सोचने लगा—

उसे क्या अधिकार था, एक गरीब छोकरी को जली-कटी सुनाने का !—उसे क्या अधिकार था ईश्वरीय नियम के विरुद्ध अमीरों की तरफदारी करने और गरीबों को अभिशाप देने का !

अमीर और गरीब—

दुनिया के दो गिरोह—दो श्रेणियाँ ।

अमीर हैं, जो फूलों की सेज पर सोते हैं और गरीब हैं, जो काँटों पर रात्रि व्यतीत करते हैं ।

अमीरों और गरीबों में उतना ही सम्बन्ध है, जैसे फूल और काँटे में ।

“लखना !...” पुकारा जयराज ने ।

“जी सरकार !...” लखना पास ही खड़ा था, बोला ।

“उसे दौड़कर बुला ला...”

“किसे सरकार !...”

“उसी को !”—जयराज उतावली के साथ बोला—“उसी तमाशावाली छोकरी को....दौड़ता जा...”

मालिक का संकेत पाकर लखना दौड़ चला सड़क पर ।

सड़क पर से जाती हुई लवंग का हृदय जैसे रुदन स्वर बनकर फूट पड़ना चाहता था। आँखें आँसू के बोझ से छलछला आई थीं। पैर जैसे पहाड़ हो रहे थे।

आज एक युवक ने उसकी गरीबी पर कटाक्ष किया था—उसके सौंदर्य पर कीचड़ उछाला था—परन्तु वह उस युवक से अप्रसन्न न थी। यह उसके भाग्य का दोष था, नियति का चक्र था।

जयराम की बातों ने लवंग के हृदय में करुणा प्रवाहित कर दी थी। वह अपने गरीबी के अभिशाप और अपने सौंदर्य की कटुता के विषय में विचार करती जा रही थी।

जयराम पर उसे क्रोध न था। यद्यपि उसको बातें उत्तेजक तथा क्रोध की भंगिमा धारण किये हुए थीं परन्तु न जाने क्यों लवंग को विश्वास था कि जयराम ने जो भी कटु वाक्य कहे हैं, वे उसके शुद्ध अन्तस्थल से निकले हुए नहीं हैं, वरन् वे क्षणिक आवेश द्वारा उत्पन्न हैं।

जयराम के मुख पर सावधानतापूर्ण असावधानी का भाव लवंग ने देखा था और वह समझ गई थी कि इस युवक के जवान पर जो कुछ है, वह इसके हृदय में नहीं है।

इसके जवान और हृदय भिन्न-भिन्न हैं।

इसकी जवान पर कटुता आ सकती है, परन्तु इसका हृदय पानी जैसा तरल एवं स्वच्छ है।

न जाने कैसी एक श्रद्धा-सी उत्पन्न हो गई थी लवंग के हृदय में जयराम के प्रति। वह इन्हीं सब बातों में डूबती-उतराती चली जा रही थी।

एक रात और थी।

जयराम की आकृति लवंग को कुछ-कुछ परिचित-सी लगती थी। वह समझ कर भी, नहीं समझ पा रही थी कि इसे कहाँ देखा है !

लवंग के नेत्रों के समक्ष पिल्लले कई दिनों के दृश्य नृत्य करने लगे— शायद वह इस बात को अपने ध्यान में लाने का प्रयत्न कर रही थी कि उसने जयराज की आकृति कहाँ और किस प्रकार देखी है !

अन्त में उसे याद हो आया । उसके नेत्रों के समक्ष एक दृश्य जाज्वल्यमान हो उठा । वह खो-सी गई ।

वह चाँदनी रात—

नदी के पानी में पैर लटका कर बैठी हुई लवंग—नदी के वक्ष पर धीरे-धीरे सरकती हुई एक नाव—उस नाव पर बैठा हुआ एक युवक और एक वेश्या—दोनों का प्रगाढ़ आलिंगन—चुम्बनों का आदान प्रदान—

चाँदनी रात में लवंग ने सब कुछ भली प्रकार देखा था । नाव का सम्पर्क करके आती हुई मधुर हवा, नदी की छाती पर दौड़ती हुई लवंग के पास तक चली आई थी और उसने उसके अन्तस्थल में जैसे गुदगुदी सी भर दी थी—

जैसे उसके हृदय में एक मदहोशी की सृष्टि कर दी थी—

जैसे उसके अन्तराल में सोई हुई एक मधुर पीड़ा को उकसा दिया था—

जैसे उसके बदन पर जवानी का एक मधुर कम्पन लहरा उठा था ।

उस दिन पहले-पहल लवंग को अपने शरीर पर गदराई हुई युवावस्था का ज्ञान हुआ था । उसके वक्ष में एक मधुर टीस दौड़ गई थी ।

आज भी वह घटना याद आते ही लवंग का यौवनमत्त-शरीर सिहर उठा । पैर बोझिल हो उठे ।

“तमाशावाली !....ओ तमाशावाली...”

पीछे से लखना चिल्लाता हुआ आ रहा था ।

रुक गई लवंग । लखना पास आ गया ।

“क्या है !—” पूछा लवंग ने ।

“चल !....हमारे सरकार तेरा तमाशा देखेंगे...जल्दी चल !....”

लखना को क्या मालूम था कि वास्तविक बात क्या है ? वह तो समझता था कि सरकार ने तमाशावाली को जो इतनी शीघ्रतापूर्वक बुलाया है, वह केवल तमाशा देखने की आकांक्षा से ही ।

“कौन हैं तुम्हारे सरकार ?....”

“वह जो हवेली दिखाई पड़ रही है, उसी के मालिक—” लखना ने उँगली के इशारे से जयराज का बँगला दिखा दिया ।

लवंग समझ गई, जो उसे बुला रहा था ।

उसने कुछ देर तक न जाने क्या सोचा, पुनः बिना कुछ बोले हुए लखना के साथ घूमकर चल दी ।

इस समय लवंग की मानसिक स्थिति अस्त-व्यस्त थी ।

इसके सरकार ने उसे क्यों बुलाया है ? क्या और कुछ जली-कटो सुनाने के लिये ।

अथवा दो चार मर्मभेदों बातें कहकर उसे पुनः रुताने के लिये ?

परन्तु वह रोये ही क्यों ? क्या इसीलिये कि वह गरीब है—क्या इसीलिये कि उसके पास पैसा नहीं है, धन नहीं है, अन्न नहीं है ?

वह अमीर है, उसके पास धन है—वह उसे सैकड़ों कटु वाक्य कह सकता है और वह अपनी निर्धनता की छाया में खड़ी-खड़ी सब कुछ सहन कर सकती है—सब कुछ बरदाश्त कर सकती है ।

फिर वह रोये क्यों ?



जयराज मानसिक अशान्ति से घबड़ा उठा । उसका हृदय एक प्रकार की तीव्र घृणा से भर गया । कदाचित् मदिरा की मदहोशी कम

हो जाने के कारण ऐसी बात हो—मगर एक क्षण के लिये जयराज बेचैन जरूर हो उठा ।

कोच पर से उठकर आलमारी के पास आया । जेब से कुंजी निकाल कर उसका ताला खोला और जान डिवार्स की एक बोतल और चाँदी का एक प्याला निकाला ।

मेज के पास कुर्सी पर आकर वह बैठ गया । शिथिल हाथों से बोतल का कार्क खोला उसने और प्याला भर कर गट्ट-गट्ट चढ़ा गया ।

सिर्फ दो पेंग पीकर वह रुक गया ।

क्योंकि उसी समय दरवाजे की राह, लखना के साथ लवंग ने वहाँ प्रवेश किया । लवंग के सरपर तमाशेवाला बक्स था, जिसे धीरे से उतारकर उसने जमीन पर रख दिया । जयराज ने गवेषणात्मक दृष्टि से लवंग को सर से पाँव तक देखा । लवंग की रूप-रेखा जयराज को बहुत भली लगी । उसकी आँखों में कष्ट का भाव देखकर जयराज ने सोचा कि उसके कटु-वाक्यों से वह अत्यधिक व्यथित हुई है ।

लवंग सर नीचा किये हुए खड़ी थी । बदन सिकोड़ रक्खा था, ताकि घबड़ाहट के कारण उसकी छातियों का उठना-वैठना वह देख न सके ।

जयराज अत्यधिक गम्भीर था—वह मेज के सहारे बैठा हुआ कुछ सोच रहा था ।

“सरकार ने मुझे बुलाया है !...”

बहुत प्रयत्न करने पर लवंग के मुख से ये शब्द निकल सके ।

“हाँ...तुम जाओ !”—जयराज ने कहा ।

उसके वाक्य का आखिरी भाग, लखना को सम्बोधित कर कहा गया था, जो अब तक खड़ा हुआ जयराज की आज्ञा का इन्तजार कर रहा था ।

जयराज की आज्ञा पाकर, वह दरवाजे से निकल कर बाहर चला गया ।

“बैठ जाओ !....” नम्र स्वर में जयराज ने लवंग से कहा ।

“सरकार ! तमाशा देखकर मुझे जल्द छुट्टी दे दीजिये...गरीब हूँ एक जगह रुकने से तो पेट भरेगा नहीं....”

और लवंग बैठ गई, कालीन बिछे हुए फर्श पर ।

परन्तु उसका हृदय जोरों से धड़क रहा था । आज उसे शहरी गुण्डों का जो कटु अनुभव हुआ था, उसे देखकर वह किसी भी शहरी मनुष्य का विश्वास न कर सकती थी—उसपर जयराज भी कोई सौम्य व्यक्ति नहीं दृष्टिगोचर हो रहा था । उसकी बातें उखड़ी-पुखड़ी-सी हो रही थीं—सामने मेज पर शराब की बोतल खुली हुई थी—

और लवंग उसे स्वयं अपने नेत्रों द्वारा मदिरापान करते देख चुकी थी ।

तो फिर उसका हृदय क्यों न धड़कता ?

“तो तुम बहुत गरीब हो !....” जयराज ने पूछा ।

“जी सरकार !”—लवंग ने उतावली के साथ कहा—“मुझे जाने दीजिये, मेरी माँ घबड़ातो होगी....”

लवंग को जयराज का रंग-ढंग बुरा दिखाई पड़ रहा था । यह सत्य भी था—लवंग के हृदय की आशंका निर्मूल न थी । जयराज के पास धन था और उसे बुरे मार्ग पर ले जाने वाले साथी भी थे तथा कठिन कार्यों को पूरा करने के लिये साधन-प्रसाधन भी थे ।

“तुम्हारी माँ भी है !—” पूछा जयराज ने ।

“जी सरकार !...मुझे जाने दीजिये—” प्रार्थना भरे स्वर में कहा लवंग ने और जाने के लिये उठकर खड़ी हो गई ।

“बैठो !....” गरज पड़ा जयराज ।

मदिरा का नशा कम होने पर जयराज के हृदय में लवंग के लिए जो सहानुभूति उत्पन्न हुई थी, वह दो-तीन पेग चढ़ा लेने पर लुप्त हो गई ।

“.....” काँपती हुई लवंग पुनः बैठ गई जमीन पर । अपनी बेबसी पर उसके नेत्रों में आँसू छलछला आये ।

“रोओ मत !...” स्वर में यथाशक्ति नम्रता भरकर कहा जयराम ने—“मैं तुम्हें जरा भी कष्ट न दूँगा...”

“.....” परन्तु लवंग को जैसे विश्वास नहीं हो रहा था ।

जयराम ने बोतल का कार्क खोलकर एक प्याला पुनः भरा । मदिरा गले के नीचे उतरते ही नेत्र और भी रक्तिम हो उठे ।

दूसरा प्याला भरकर, वह प्याला हाथ में लिये हुए कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ और लडखडाते पैरों से लवंग की ओर बढ़ा ।

लवंग की आशंका तीव्र हो उठी । पास में कोई उसका सहायक न था । नौकर को भी इस शराबी ने चले जाने की आज्ञा दे दी थी ।

लवंग के हृदय की धड़कन बढ़ गई । वह उठकर खड़ी हो गई और भयभीत हरिणी की भाँति कई पग पीछे हट गई ।

जयराम बढ़ा आ रहा था ।

“अपना तमाशा ठीक करो....मैं देखूँगा—” जयराम ने कहा ।

लवंग का डर फिर भी दूर न हुआ । तमाशा देखते समय ही एक गुण्डे ने उसके साथ भयानक शरारत की थी—कहीं यह भी तो वैसा ही कुछ नहीं करेगा ?

“जल्दी करो...” जयराम ने, आवाज में गम्भीरता और नम्रता लाकर कहा ।

लाचार लवंग डरती हुई आगे बढ़ी । बक्स को तिपाई पर खड़ा किया, और एक शीशे का ढक्कन खोल दिया ।

जयराम ने प्याला मेज पर रख, उस शीशे से आँख लगा दी ।

लवंग अपने दाढ़िने हाथ से पेंच घुमाने लगी । बायें हाथ की तर्जनी का छुल्ला ठकूठकू बक्स पर बजने लगा, साथ ही लवंग के मुख से भयभीत आवाज निकली —“देख ले बाबू, देख...”

लवंग तमाशा दिखाती जा रही थी और जयराम की ओर से सशंक

भी थी, मगर जयराज चुपचाप तमाशा देखता रहा। अपने किसी भी व्यवहार से उसने शैतानी प्रकट न की।

बच्चों की तरह मनोयोग से तमाशा देख रहा था जयराज।

लवंग कह रही थी—

“दख ले बाबू देख, नंगी तमोलिन देख...”

अनायास ही जयराज का बायाँ हाथ ठक्-ठक् करते हुए लवंग के बायें हाथ पर जा पड़ा, मगर उसके नेत्र उस शीशे में ही लगे रहे।

जयराज के हाथ का स्पर्श होते ही चौंक पड़ी लवंग। उसका सारा बदन सिहर उठा, जैसे उसकी नर्सी में विद्युत-धारा प्रवाहित हो उठी हो, जैसे किसी ने एक गिलास मदिरा उसके गले से नीचे उतार दी हो।

चौंककर भी, सिहर उठने पर भी, उसने अपना हाथ न हटाया। क्रम पूर्ववत् जारी रहा—केवल ठक् ठक् शब्द बन्द हो गया।

लवंग के हृदय की घड़कन उस मानवी-हाथ के सम्पर्क से और भी बढ़ गई थी, उसके अन्तराल में मादकता की सृष्टि हो रही थी।

जयराज का हाथ लवंग के हाथ पर पड़ा रहा। किसी ने कुछ निषेध न किया। जैसे दोनों को, एक दूसरे का सम्पर्क बहुत भला मादूम हो रहा हो।

तमाशे के चित्र खतम हो गये थे—लवंग भूली-भूली-सी खड़ी रही। जयराज से यह भी न कहा कि तमाशा समाप्त हो गया है।

जयराज भी शीशे से आँखें लगाये रहा।

कई मिनट व्यतीत हो गये।

“तमाशा दिखाओ—” जयराज ने कहा।

“अब खतम हो गया सरकार !...”

लवंग ने सहसा चौंककर कहा।

“खतम हो गया, इतनी जल्दी !...” जयराज ने लवंग के नेत्रों में देखते हुए कहा।

लवंग के नेत्र नीचे झुक गये।

“बहुत अच्छा है तुम्हारा तमाशा”—जयराम बोला—“बहुत पसन्द आया...”

“बड़ी कृपा है आपकी सरकार !...” लवंग ने पहली बार उसकी ओर देखकर कहा ।

न जाने क्यों लवंग के हृदय की सारी आशंका, जयराम के स्पर्श से ही दूर भाग गई थी ।

“तुम्हें देर होगी—ग्रब तुम जा सकती हो”—कहकर जयराम ने लवंग के हाथों पर पाँच रुपये रख दिये ।

“मुझे सिर्फ एक पैसा चाहिये सरकार !...ये रुपये लेकर क्या करूँगी मैं !....” लवंग ने जयराम को रुपये लौटाते हुए कहा ।

जयराम ने रुपयों समेत लवंग का हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर दबा दिया । लवंग के कपोल लज्जा से आरक्त हो उठे । वह कुछ बोली नहीं ।

जयराम ने उसका हाथ तुरन्त छोड़ दिया ।

“ले लो—तुम्हें काम देंगे ये रुपये—तुम गरीब हो न !”—कहा उसने ।

“हम गरीबी ही भली है सरकार !”—लवंग ने कहा—“एक पैसे के बदले इतने रुपये लेते-लेते तो हम बहुत जल्द अमीर बन जायेंगे—”

लवंग की बातें वास्तविक थीं ।

छल-कपट द्वारा, एक पैसे के बदले इतने रुपये लेते-लेते ही तो लोग अमीर बन जाते हैं और एक पैसा लेनेवाला गरीब का गरीब ही रह जाता है ।

जयराम ने भली प्रकार ये बातें समझीं ।

“ले लो इन रुपयों को”—बोला जयराम—“मेरी ओर से रख लो...” लवंग ने जयराम की ओर देखा ।

उसके सामने एक सुन्दर शराबी युवक खड़ा था—जिसके पास धन था मगर उस धन का उचित उपयोग करने की सलाह देने वाला कोई

साथी न था। उसकी आँखों में याचना थी परन्तु उस याचना को अंगीकार कर, कोई अपना जीवन उसके लिये देने को तैयार न था।

लवंग ने विचार किया कि इस आवारे रईस-युवक के लिये एक जीवन-साथी की अत्यन्त आवश्यकता है, जो इसके तन-मन पर अपना प्रभाव डाल कर इसके अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्थित बना दे, जो इसके आचरण में हस्तक्षेप कर, इसे मदिरा से घृणा करना तथा धन का सदुपयोग करना सिखा दे, जो इसके मार्ग में अपनी अमूल्य यौवन-निधि बिछाकर वेश्याओं के घर का मार्ग बन्द कर दे।

काश ! लवंग यह सब कर सकती !

कर सकती तो वह अपना जीवन-यौवन सब कुछ अर्पण कर इस युवक को सन्मार्ग पर लगाती और दुनिया देखती कि कल का आवारा जयराज, आज एक शुद्ध अन्तःकरण वाला युवक है, जिसके हृदय में पीड़ितों के लिए दया है, जिसकी तिजोरी में धनहीनों के लिए धन है, जिसकी आँखों में दलितों के लिए आँसू हैं।

मगर अमीरी और गरीबी का बन्धन !

यही तो अभिशाप है उसके लिए—

वह गरीब है—पद-दलित है।

“फिर कभी तुम्हें किसी चीज की जरूरत हो तो, तुरन्त आ जाना....” जयराज ने कहा—“मेरे पास कोई जनानी धोती नहीं है, नहीं तो तुम्हें दे देता...”

“बहुत दिया आपने सरकार !...”

कहकर लवंग ने वे पाँचों रुपये अपनी कुर्ती की जेब में डाल लिये।

“तुम रोज यहाँ आकर एक बार मुझे तमाशा दिखा जाया करो—तुम्हारा तमाशा मुझे बहुत पसन्द है—” जयराज ने कहा।

“दूसरे दिन मैं एक पैसे से अधिक अपने तमाशे के लिए न लूँगी

सरकार !—” लवंग ने कहा । जयराज के हृदय में असीम दया का उसे आभास मिला था ।

“अच्छा मत लेना मगर आना जरूर !...”

“...” चुपचाप लवंग ने अपना बक्स उठाकर सर पर रक्खा और जाने लगी ।

“सुनो !...”

“...” रुक गई वह, घूमकर जयराज की ओर देखा । अनायास ही उसके होठों पर मुस्कराहट व्याप्त हो गई ।

“तुम्हारी धोती पीछे बहुत फट गई है—” जयराज बोला—“मेरा नौकर तुम्हारे साथ जा रहा है—वह तुम्हें धोती खरीद देगा...”

“मैं धोती नहीं चाहती सरकार ! आपकी दया ही बहुत है...” लवंग ने कहा, मगर जयराज न माना । उसने पुकारा—“लखन ! ओर ले खना...”

“आया सरकार !...” कहता हुआ लखना दौड़ा आया ।

“देख, किसी दूकान से अच्छी-सी धोती इस लिए खरीद देना...ले रुपये...”

जयराज ने लखना के हाथ पर दस का नोट रख दिया ।

“तुमने अपना नाम तो बताया ही नहीं...” जयराज ने पूछा ।

“सरकार, मेरा नाम लवंग है...” सकुचाती हुई बोली वह ।

“अच्छा नाम है...” जयराज ने कहा—“देखो लवंग ! मैं इस शहर में कुछ बदनाम हूँ । लोग मेरा नाम सुनकर जमीन पर थूक देते हैं । लोगों की इस अवहेलना से ही मेरे जीवन का एक अभाव अब तक पूर्ण न हो सका....”

जयराज के जीवन में क्या अभाव था, यह लवंग जान गई थी ।

“मगर तुम इस पर ध्यान न देना—रोज चली आया करना...” घूमकर जयराज कोच पर जा बैठा ।

लवङ्ग और लखना कमरे से बाहर चले गये ।
 और तब जयराम उठा— मेज के पास कुर्सी पर आकर बैठ गया ।
 बोटल की मदिरा प्याले में भरी और होठों से लगा लिया ।
 दुनिया उसके सामने रंगीन-परी बनकर नाच उठी ।



दुनिया में अगर कोई घृणित से घृणित वस्तु है तो वह है मदिरा ।
 मनुष्य के मस्तिष्क को सदैव डॉवाडोल रखनेवाली यह चीज है । इसको
 पीकर किसी भले विषय का चिन्तन हो ही नहीं सकता ।

जयराम काफी पीता था । पी पीकर अन्धाधुन्ध रुपये छुटाता था,
 शरबती आँखोंवाली वेश्याओं के पीछे ।

जयराम के पास धन की कमी न थी, पिता की दी हुई स्वतन्त्रता
 थी और शराब पीकर मदहोश बना हुआ विकृत मस्तिष्क भी था—बस !
 फिर क्या था ?

लवंग के चले जाने पर जयराम मेज के पास बैठा हुआ कुछ विचारों
 में तल्लीन था । एक क्षण के लिए लवंग के सौन्दर्य ने, लवंग
 की सीधी-सीधी कोयल जैसी आवाज ने, लवंग के नेत्रों में बरबस
 छाये हुए अश्रुकों ने, जयराम को एक दूसरी ही दुनियाँ में पहुँचा
 दिया था ।

उस दुनियाँ में शराब की मादकता न थी—

उस दुनियाँ में वेश्याओं के हलाहलयुक्त सौन्दर्य द्वारा उत्पादित,
 हृदय में उद्वेलित मंथन न था ।

उस दुनियाँ में सुधारस-सी शीतलता थी, प्राकृतिक सौन्दर्य की-सी हृदय में एक अपूर्व शान्ति थी ।

मगर वह अधिक देर तक उस विषय पर न सोच सका । मदिरा की तीव्रता ने उसके मस्तिष्क को पुनः उस ओर मोड़ दिया, जो बहुधा शराबियों का क्रीडास्थल होता है ।

अर्थात् वेश्यालय !

जयराम के सामने उस रूप की दुनियाँ का चित्र झलमलाने लगा— गुलशन के मादक सौन्दर्य की छाया, स्वर्ग की अप्सरा बनकर उसके सामने नृत्य कर उठी ।

जयराम का हृदय एक मादक-संगीत को झंकार से भर उठा ।

गुलशन !

उफ ! क्षणिक आवेश में आकर उसने गुलशन के साथ कैसा अन्याय कर डाला ।

उसने कहा ही क्या था ?

कुछ भी तो नहीं—उसने केवल वही कहा था, जो बहुधा अन्य वेश्यायें युवकों पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए कहा करती हैं—
“मेरे राजा ! तुम पर सब कुछ निछावर कर देने को जी चाहता है...”

और आज से सैकड़ों बार पहले भी जयराम यह वाक्य भिन्न-भिन्न वेश्याओं द्वारा दुहराये जाते सुन चुका था ।

उस समय तो वह तनिक भी क्रुद्ध, तनिक भी अव्यवस्थित न हुआ था ।

फिर गुलशन ने जब वही बात दुहराई तो अनायास वह क्रोधित क्यों हो उठा ! क्यों उस निर्दोषी को जली-कटी सुना डाली ?

उसका अपराध ही क्या था ? कितना था ?

सोचते-सोचते जयराम का मस्तिष्क भग्न हुआ । वह कुर्सी पर से उठकर कमरे में टहलने लगा—इधर-से उधर, उधर से इधर !

“मैं अन्दर आ सकता हूँ हज़ूर !...” आवाज आई ।

जयराज ने चौंक कर सर उठाया—देखा दरवाजे के बाहर नम्रता-पूर्वक सर झुकाये ताल खाँ खड़ा है ।

“आओ ताल खाँ !....चले आओ !...” कहता हुआ जयराज मेज के पास पुनः कुर्ची पर जा बैठा ।

“हूजूर की तबियत खराब है क्या !....” पृच्छा उस्ताद ने ।

“ठीक है—बिल्कुल ठीक !—” जयराज बोला ।

लम्बी चौड़ी भूमिका बाँधकर उस्ताद ताल खाँ उससे जो बात कहना चाहता था, अथवा जो कुछ कहने आया था—वह जयराज भली-भाँति जानता था ।

“क्या कनीज गुलशन ने कोई गुस्ताखी की हजूर !...”

उस्ताद कुछ-कुछ रास्ते पर आया ।

“नहीं !...” छोटा-सा उत्तर दे दिया जयराज ने ।

“फिर उस नाचीज बोंदी पर आप क्यों खफा होकर चले आये हजूर !—” उस्ताद ताल खाँ कहने लगा—“अगर उसने आप के लिये कुछ बदअलफाज इस्तेमाल किये थे तो आप मुझसे कहते; मैं उस गुस्ताख लोकरी की अक्ल ठिकाने लगा देता...मैंने उसी दिन आप से कह दिया था हजूर कि गुलशन पैदाइशी तवायफ नहीं है । वह किसी भले घर की बच्ची है । किसी शैतान ने किसी मासूम लोकरी की अस्मत् लूट ली थी और उसका अज्जाम खूबसूरत-सी बच्ची की शकल में इस दुनिया में आया था । इसे सड़क पर पड़ी देखकर मैंने यही अन्दाज लगाया था हजूर !....”

“.....” चुपचाप सुन रहा था जयराज !

“मैंने लटकपन से ही इसकी परवशिश की है, अपनी बच्ची समझकर तो नहीं—यह समझकर कि आज जो यह यतीम बच्ची किस्मत के थपेड़े खाकर सड़क पर पड़ी है, वह किसी दिन अपनी खूबसूरती से, अपने नाजो अन्दाज से, अपने हुस्न से दुनिया में बिजली गिरा देगी, कहर बरपा कर देगी...आज सालों से दबी हुई मेरी तमन्ना बर आई

है। रूप के पतिंगे गुलशन पर मर-मरकर जीते और जी-जीकर मर रहे हैं। शहर में कौन ऐसा है, जो उसके लिये न तडप रहा हो...मगर हजूर की बात दूसरी है। हजूर औरों की तरह कच्चे गिलाडी नहीं हैं। हजूर ने पहले सोना परखा है, तब उसका दाम दिया है—हजूर ने पहले जवानी आँकी है, तब उसे खरीदा है...आप हुस्न की दुनिया के पक्के खरीददार हैं हजूर! गुलशन आपके पैरों में जूती बनकर रहने लायक है—ठुकराने लायक नहीं है वह...”

“मैं उसे गले का हार बनाकर पहनूँगा ताल खाँ!...” बोला जयराम - “आज सुबह कुछ नशा अधिक था, इसलिये गुलशन पर बिना किसी कारण के ही बिगड़ पड़ा था...सचमुच नशा बहुत ज्यादा हो गया था...”

“नशा!...नशा ज्यादा हो गया था...” हँस पड़ा उस्ताद—
“हजूर मुझसे दिल्लगी करते हैं...”

“दिल्लगी करने को तुम्हारी उम्र नहीं रही ताल खाँ! मैं ठीक कह रहा हूँ...”

“नामुमकिन...” उस्ताद ताल खाँ ने कहा—“अब तक हजूर को नशे पर सवार होते देखा है, यह कभी नहीं देखा कि नशा हजूर पर सवार हो जाय!...आज कई साल से हजूर को जानता हूँ—शराब की सैकड़ों बोतलें मेरे सामने पी हैं—मगर मजाल क्या कि दो-चार चूल्ह पीने पर आँखों में सर आ जाय। फौलाद का जिस्म है आपका हजूर!...”

दो क्षण रुका उस्ताद ताल खाँ, पुनः बोला—

“मगर खैर!...आज यह सुनना था और सुन भी लिया कि हजूर पर नशा सवार होता है...मगर गुलशन का इसमें क्या कसूर था हजूर!...”

“कुछ नहीं!...कुछ नहीं ताल खाँ!...” जयराम बोला—
“अनायास ही उसपर बिगड़ पड़ा था...”

‘‘खुदा जाने हज़ूर जब से आप आये हैं, गुलशन रंजोगम मे मुर्दा-मी हो गई है ! चेहरे पर का हुस्न काफ़ूर की तरह सुफेद हो गया है—लाल-लाल होठ अलकतरे की तरह काले पड़ गये हैं—छिपकली की दुम जैसा नरम जिस्म, काँप रहा है—हज़ूर उसकी गुस्ताखी माफ़ कर उसे अपने पैरों की धूल बख़्शें...’’

‘‘...’’ जयराज हँस पड़ा !

उस्ताद ताल खों बात-बात करने में प्रवीण था और बात-बात में मजाक वा पुट दे दिया करता था ।

‘‘मैं आज किस समय गुलशन के पास आकर माफी माँग लूँगा...’’ जयराज ने कहा ।

‘‘वह खुद माफी माँगने के लिये हज़ूर के दरे-दौलत पर दौड़ी आई है—’’

‘‘कौन है वह !...’’ जयराज ने पूछा ।

‘‘बाहर दरवाजे के पास खड़ी है हज़ूर !...’’ उस्ताद ने कहा ।

‘‘बुलाओ—उसे अन्दर बुलाओ ताल खों !...’’

जयराज उठकर खड़ा हो गया ।

उस्ताद ताल खों के बुलान के पहले ही गुलशन दरवाजे की राह दौड़ी आई और जयराज के पैरों पर गिर पड़ी ।

‘‘मुझे माफ़ करो मेरा राजा !...’’ कहा उसने ।

जयराज ने उसे हाथ का सहारा देकर उठा लिया । गुलशन भय-भीत हिरणी की भाँति उसके कनेजे से सिमटा रही, जैसे वे दोनों युग-युग के बाद मिल रहे हों ।

उस्ताद ताल खों कमरे से बाहर हो गया ।

भोले-भोले जयराज को ठगने के लिये सुनहला-बाल तैयार हो गया....

(लोग कहते हैं कि वेश्या के हृदय में जहर होता है। वेश्या रुपये के लिये अपने हाव-भाव से सात्विक-प्रेम का स्वाँग रच सकती है और काम पड़ने पर वही वेश्या, चन्द रूप्यों के लिये अपने प्रेमी का गला टीप सकती है।)

गुलशन ने जयराज पर अपने मादक-सौन्दर्य का सुनहला हाथ फैलाना चाहा था मगर वह चालाक पंछी, पर फटफटा कर उड़ आया था।

गुलशन के आत्मसम्मान को कड़ी चोट पहुँची थी। स्त्री जब गहरी चोट खाकर प्रतिशोध लेने पर तुल जाती है तो उसका रूप भयंकर हो उठता है—सो स्त्री भी कौन है !—एक वेश्या ! जिसके पैरों पर मत-वाले पुरुष रात-दिन नाक रगड़ते हैं, जिसके सामने कामी कुत्ते हाथ पसारे खड़े रहते हैं, जिसके रूप पर नाचीज पतिंगे अपनी छोटी-सी जान बलिदान करने को प्रस्तुत रहते हैं।

तो एक वेश्या की प्रतिशोधाग्नि कितनी भयंकर होगी !

प्रतिशोध की ज्वाला शान्त करने के लिये एक वेश्या के पास शारीरिक-शक्ति अथवा भाले-बरछी तलवार इत्यादि नहीं होते—उसके पास होती है जबान, शहद से भी मीठी—हरकतें, शराब से भी मादक-हृदय, जहर से भी तीव्र !

छल-कपट की आँख-मिचौनी ही वेश्याओं के तीव्र शस्त्र होते हैं ।)

गुलशन ने अपने शिकार जयराज को इन्हीं शस्त्रों द्वारा परास्त करने की सोच रखा था।

अपनी बातों में और आकर्षण भरकर, आँखों में छलकती शराब भरकर, सौंदर्य और आकर्षण भरकर, वह चाहती थी जयराज को अपने पर मुग्ध कर लेना।

आकर्षण ही संसार में एक ऐसी वस्तु है, जिसके सामने मनुष्य हारा है।

वेश्याओं के पास तीव्र आकर्षण होता है, कदाचित्त इसीलिए मनुष्य वेश्याओं का दास बन जाता है।

जयराज पर भी गुलशन ने यही जादू चलाना चाहा था।

“बड़े जल्दी रूठ जाते हो मेरे सरकार !....” नजरों में जादू भरकर कहा गुलशन ने।

“माफ करना मेरी तितली !... मेरा दिमाग उस समय वश में न था”—जयराज बोला।

“ऐसी भी क्या नाराजगी कि कोई रोते-रोते मर जाय और किसी को जैसे परवाह ही नहीं...” उदासी चेहरे पर लाकर कहा उसने।

जयराज के हृदय की सद्भावना विलुप्त हो चुकी थी। लवंग को सूरत नेत्र-पटल पर से दूर हट गई थी। इस समय तो गुलशन की मादक-मूर्ति उसके समक्ष थी।

जयराज को और भी विस्मृत कर देने के लिये गुलशन ने प्याला भरकर अपने हाथ में ले लिया। जयराज के होठ इस प्रकार उल्लसित हो उठे, जैसे वे युगों से प्यासे हो।

फिर तो दो पेंग पीते ही जयराज सब कुछ भूल गया—उस समय केवल गुलशन और अपने अस्तित्व को ही जान सका वह।

गुलशन उसके गोद में पड़ी थी।

जयराज के लिये उस समय, उन दोनों के अतिरिक्त, सारा संसार शून्य था।

“तुम्हें खोकर फिर से पाया है मेरे सनम ! अब तुम कहीं जा नहीं सकते—” गुलशन ने कहा और जयराज को अपने होठों का ‘शरबत’ पिला दिया।

“किसी वस्तु को खोकर, फिर से पाने में बड़ा आनन्द आता है गुलशन ! है न !...” जयराज ने कहा।

“बजा फरमाने हैं मेरे सरकार !...” गुलशन बोली—“कनीज की गुस्ताखी भाफ हो तो एक बात अर्ज करूँ ?...”

“शौक से कहो मेरी रानी !...क्यों क्या कहना चाहती हो ?”

“सर की टोपी बनाकर नहीं तो पाँव की जूती बनाकर तो आव रख ही सकते हैं —”

“तुम्हें सर-आँखों पर रखूँगा गुलशन !....”

“कनीज की इतनी इज्जत आफजाई न रहे मेरे सरकार !” गुलशन बोली—“पेट का खयाल है, नहीं तो मैं खुद, बोर्दा बनकर सरकार के दरे-दौलत पर पड़ी रहूँ...यही तमन्ना है—खुदा देखें, कब पूरा करता है ?”

“अब तुम्हें किसी का मुँह ताकना न पड़ेगा गुलशन !...आज से तुम मेरी हो.. मेरी अपनी गुलशन !...”

“खुदा आपकी इज्जत दौलत में तरक्की दे मेंग राजा !” प्रसन्नता पूर्वक बोली गुलशन—“ओह ! आज मैं कितनी खुश हूँ ! खुदा जाने पागल हो जाऊँगी मैं..”

“घबड़ाओ नहीं तितली, मैं हूँ पास में...”

जयराज ने कहा । काल्पित प्रेम का स्वांग रचने वाली एक वेश्या और विकृति-मस्तिष्क वाले एक शराबी रईस के बदन, लता की तरह एक दूसरे से चिमट गये । उनके समस्त वासना का कृत्रिम सौन्दर्य झलझला उठा !

दोनों पागल-से हो उठे ।



दरवाजे पर थपकी पड़ी और दोनों एक दूसरे को छोड़कर अलग हो गये । जयराज उठकर दरवाजे के पास आया और धीरे-से उसे खोला । बाहर जयराज का नौकर लखना खड़ा था ।

“क्या है लखना !....” पूछा जयराम ने ।

“सरकार !...बड़े सरकार आ रहे हैं...” लखना ने कहा ।

“पिताजी !...पिताजी आ रहे हैं ?—” अस्त-व्यस्त स्वर में बोल उठा जयराम । पिताजी का आसमन में आना सुनकर जयराम घबड़ा उठा था ।

यह समय तो उनके आफिस में रहने का था ।

“हाँ !....” लखना बोला—“अभी-अभी मोटर से उतरे हैं । तेजी के साथ इधर ही को आ रहे हैं...”

“गुलशन !...” जयराम ने गुलशन से कुछ कहना चाहा ।

“कनीज के लिये क्या इरशाद है ?”

“तुम थिखे दगाजे से घर चलो जाओ ! पिताजी आ रहे हैं । तुम्हारा उनके सामने पड़ना अभी ठीक नहीं....” जयराम बोला ।

“जो काम !...” गुलशन ने कहा ।

“और तुम्हारा यहाँ आना जाना ठीक नहीं, मैं स्वयं अवसर मिलने पर तुम्हारे यहाँ आ जाया करूँगा—”

“बेदतर है...” गुलशन बोली ।

जयराम ने कमरे के पीछे का दरवाजा खोल दिया । लखना के साथ गुलशन उसी दरवाजे की राह बाहर हो गई ।

जयराम ने कमरे की मेज पर की बोतल और प्याला उठाकर झटपट आलमारी में बन्द कर दिया और अपनी अव्यवस्थित भंगिमा ठीक कर ली ।

उसी समय रायबहादुर सेठ गंगा दास ने वहाँ प्रवेश किया । एक नजर ध्यानपूर्वक कमर में चारों ओर देख लेने के पश्चात् वे कुर्सी पर आकर बैठ गये ।

“बहुत बदबू है तुम्हारे कमर में...क्या कहीं सिगरेट छिड़क रखी है”—कहा उन्होंने । जयराम चौंक पड़ा । किस मुँह से वह बताता कि वह शराब की बदबू है ।

“अपनी बातें तो तुम भूल ही गये !—” सेठ जी बोले—“आज प्रातःकाल तुम कोठी पर आने वाले थे न !...क्यों नहीं आये !...”

“क्या बताऊँ पिताजी ! एक जरूरी काम में लग गया था...”

जयराम ने हिचकिचाते हुए उत्तर दिया ।

“बहुत जरूरी काम था न वह !...” व्यंगपूर्वक मुस्कराये सेठ जी—“तभी तो तुम्हें अभी तक नहाने-धोने का भी अवकाश न मिला...सर के बाल देखो—इस तरह खड़े हैं, जैसे उनपर महीनों से तेल और पानी न पड़ा हो...”

“अभी तो मैंने कल स्नान किया था पिताजी !...”

“खैर !...” थोड़ा-सा रुककर बोले सेठ जी—“अभी-अभी तुम किससे बातें कर रहे थे...”

जयराम का बदन आशंका से सिहर उठा ।

“बातें !...बातें तो किसी से नहीं कर रहा था पिताजी !... तो यहाँ अकेला ही बैठा हुआ हूँ...”

“तुम मुझसे इतने दूर-दूर क्यों रहने की कोशिश करते हो ?” सेठ जी बोले—“जल्दी से स्नान करके मेरे साथ चलने को तैयार हो जाओ...”

चुपचाप जयराम गुसलखाने में घुस गया और आध घण्टे के अन्दर ही स्नान से निवृत्त हो गया ।

लखना चाय की ट्रे मेज पर रख गया । जयराम ने दो प्याली चाय बनाई । पिता-पुत्र चाय पीने लगे ।

“जयराम !...”

चाय पीते-पीते सेठजी ने पुकारा ।

“जी !...” जयराम धीमे स्वर में बोला । अपने पिता का चरित्र उसे बहुत गम्भीर लगता था ।

“मनुष्य में चरित्र की सबलता अवश्य होनी चाहिये...”

“जी !...”

“चरित्रवान मनुष्य ही अपनी प्रतिष्ठा तथा धन का उचित उपयोग करके उसे श्रुत्युत्तर बनाये रख सकता है...”

“जी !...” जयराज शंकित हो उठा था ।

“शराब एक ऐसी वस्तु है, जो मनुष्य को चरित्रभ्रष्ट कर देती है....”

“जी !....”

“और वेश्या वह शय है, जिसके पीछे मनुष्य पागल-सा घूमता है और एक दिन वास्तव में पागल बन जाता है...”

“जी हाँ !...”

“यह बात मैंने तुमसे इसलिये कह दी है कि आगे चलकर मेरे तमाम कारोबार तथा व्यापार का भार तुमपर पड़ेगा और अगर तुम चरित्रवान न हुए तो मेरी प्रतिष्ठा और सम्पत्ति, जिसे मैंने रक्त को पानी करके उपार्जन किया है, धूल में मिला दोगे...”

“.....” जयराज कुछ न बोला । सर नीचा कर लिया उसने ।

थोड़ी ही देर में चाय समाप्त हो गई । सेठ गंगादास उठ खड़े हुए और हवेली के बाहर की ओर चल पड़े । जयराज उनके पीछे चला ।

सड़क पर सेठ जी की चमचमाती हुई फोर्ड-कार खड़ी थी । दोनों उसपर जा बैठे । शोफर ने कार स्टार्ट कर दी ।

दस मिनट के बाद, कार एक विशालकाय श्रद्धालिका के सामने रुकी । उस बिल्डिंग पर एक बड़ा-सा साइनबोर्ड लगा था—

राय बहादुर सेठ गङ्गादास एण्ड सन्स—बैङ्कर्स

यही सेठ जी की कोठी थी । सेठ जी शहर के करोड़पतियों में से थे ।

दोनों आदमी कार से उतर कर कोठी में चले गये ।

अस्तप्राय सूर्य की रक्तिम-किरणें अब भी पृथ्वी पर कहीं-कहीं नृत्य कर रही थीं। कंजर बालायें दिन भर शहर में तमाशे दिखा-दिखाकर, सन्ध्या का आगमन जान, कजली गाती हुई घर लौट रही थी।

कंजर-बालाओं की एक टोली पगडंडी पर से चली आ रही थी, बायस्कोप का बक्स सर पर रखे हुए। लवंग भी उसी टोली में थी। उसके बगल में एक जोड़ी बढ़िया जनानी धोती दबी हुई थी।

“आज तो लवंग बीबी के भाग्य खुल गये—” एक ने कहा—
“एक जोड़ी धोता कहीं से माँग लाई है....”

“कहाँ से पा गई ये धोतियाँ री लवंग!”—दूसरी ने लवंग से पूछा।

“अरी बहन !...” पड़ली ने कहा—“मिल गया होगा कोई शहरी गुण्डा....”

सब ठठा कर हँस पड़ीं।

“तुम सब मुझसे मजाक करती हो... कह दूँगी पंचम भैया से !”—
लवंग ने खिसियाने ढंग से कहा।

“अरे वाह रे, पंचम भैया की लाड़ली बहन !... पंचम भैया से क्यों कहोगी ?... कह देना उस शहरी गुण्डे से—भला न ?... हमें भी दो-चार धोतियाँ मिल जाँयगी...” तीसरी ने कहा।

“अरी बहन !”—चौथी कहने लगी—“ये शहरी गुण्डे रे घाँघ होते हैं, घाँघ ! चिड़िया को चारा देना ये खूब जानते हैं...”

लवंग सोचने लगी—

तो क्या उसे भी चिड़िया की तरह फँसाने के लिये शिकारी जयराम यह चारा दिया है ?

नहीं !—ऐसा नहीं हो सकता। जयराम के हृदय में सद्भावना

दबी है—केवल उसे उभाड़ने के लिये किसी सच्चे-हितैषी की प्रेरणा चाहिये ।

रास्ते भर लवंग की सहेलियाँ बोली-ठिठोली बोलती चली आई ।

स्त्रियों में, दूसरों की उन्नति देखकर प्रगाढ़ ईर्ष्या की भावना होती हैं जो !

मगर लवंग चुप रही ! न जाने किन-किन विचारों में तल्लीन रही वह ।

“इनके पञ्चम भैया की भी गहरी छुन रही है आजकल”—एक ने कहा । उनकी बात-चीत का सिलसिला अभी तक जारी था ।

“कैसी रे कल्लो १...” एक ने अनजान बनकर पूछा—“क्या बात कह रही है तू !...”

“बात क्या झूठ कह रही हूँ !” पहली ने कहा—“चौधरी की लाड़ली केसर है न जो—उसी मे...”

“अरे चुप ! चौधरी काका सुनेंगे तो खोपड़ी गंजी कर देंगे...”

“अरे, वे क्या करेंगे ! वे तो खुद चाहते हैं कि केसर की शादी पंचम ने हो जाय—उन्हें दोनों की जोड़ी बहुत पसन्द है न !...”

“केसर ने भी देखा, जवान पट्ठा—बस-जवानी की रस्सी पकड़ा दी पंचम के हाथों में...यह न सोचा कि शादी होने तक इन्तजार तो कर लें....”

“केसर तो है बेवकूफ !...उसपर अच्छे-अच्छे मरने वाले तैयार हो जाते...बस, एक दिन तमाशे का बक्स सर पर रखकर शहर जाने की जरूरत थी....”

“फिर तो कितने ही शहरी मनचले खुले हाथों आवभगत करते...”

“बहन !...” एक जो अब तक चुप थी, बोली—“लवंग ने वास्तव में चतुराई का काम किया है । सोचा, इन कंजड़ों के पास रखा ही क्या है—चल कर किसी शहरी रईस की चहेती बने, ताकि ऐसी-ऐसी दो-चार धोतियाँ और पूए-कचौड़ियाँ तो मिलती रहें ...”

“वाह बहन, वाह !...बहुत ठीक कहा तुमने...”

सब ठठाकर हँस पड़ीं ।

लवंग का कलेजा मुँह को आ रहा था । व्यंगभरी बातों को सुनते-सुनते वह रोनी-रोनी-सी हो रही थी । उफ ! किस सायत में जयराम का और उसका साक्षात् हुआ ?

मगर उसने धोतियाँ ली ही क्यों ?—यह तो उसका ही अपराध है !

जयराम ने उसे धोतियाँ दीं—उसकी निर्धनता का उपहास करने के लिये ।

इसीलिये न कि वह गरीब है, पास में पैसा नहीं है, खाने को दाना नहीं है, पहनने को वस्त्र नहीं है—

इसीलिये रईस जयराम ने, अपने धन के घमण्ड में आकर उसपर अपने अहसान का बोझ लादने के लिये, उसे धोतियाँ दीं—

उसी प्रकार, जिस प्रकार कुत्ते के सामने सूखी रोटी का एक टुकड़ा फेंक दिया जाय ।

तो क्या उसका जीवन एक कुत्ते का-सा जीवन है !

क्या अमीरों के टुकड़े खाकर ही उसका जीवन व्यतीत होता है—
(क्या गरीबों का अस्तित्व संसार में कुछ नहीं ?

कुछ नहीं—गरीबों का अस्तित्व संसार में कुछ नहीं । अमीरों का ही अस्तित्व संसार में सब कुछ है ।

अमीर हँसते हैं तो उस हँसी के पीछे उनके धन का घमण्ड अन्तर्हित रहता है ।

गरीब हँसते हैं तो उनकी हँसी के पीछे दैन्य की विकलता अन्तर्हित रहती है ।)

लवंग के नेत्रों में आँसू भरभरा आये थे—उन कंजर-बालाओं के कटुवाक्य सुनकर । यदि ज़ियाँ कान की कच्ची न होती तो संसार से कलह का नाम ही उठ गया होता ।

“लो भाई !...” गढ़े हुए मुरदे को एक ने उखाड़ ही दिया—
 “ईश्वर जिसे दे, उसे ही सही । हम क्यों डाढ़ करें !...ईश्वर खुश
 रखे इन देनेवालों को, जो कम से कम सुरत हँसीन बारीकियों को देख-
 कर खुद दान तो कर दिया करते हैं...”

“पंचम भी कितना लंठ है कि केसर के पीछे पागल है...” दूसरी
 ने कहा—“उसे भी चाहिये कि किसी शहरो छोकरी से नेह लगा ले—
 ताकि कम से कम उसे भी दो-चार चोजें पहनने ओढ़ने की मिल जाय—
 भला बिचारी केसर के पास क्या रखा है !...हाँ ! कभी-कभी चौघरी
 काका को बोटलों में से चोरी-चोरी दो-चार चुल्हू उसे भी पिला देती
 होगी और फिर पानी भरकर बोटलों की कमी पूरी कर देती होगी....मगर
 इतने से क्या होता है !...”

“ईश्वर कभी सबके दिन फेरेंगा...घबड़ाओ मत तुम लोग”—एक
 ने अपनी बुद्धिमानी प्रदर्शित करते हुए कहा ।

गाँव का छोर आ गया था । छोर पर ही लवंग का भोपड़ा था ।

“लो, लवङ्ग बीबी का मकान तो आ गया—अभी हम लोगो को
 उस छोर तक चलना है....” एक ने व्यंग किया ।

लवङ्ग अपने भोपड़े की ओर मुड़ गई ।



लवंग की माँ भोपड़े के बाहर, दरवाजे के पास, एक टुट्टे खटोले
 पर बैठी हुई अपना सर खुजला रही थी और लट में से जूँ खोज
 खोजकर उन्हें नाखून पर मार रही थी ।

उसी समय लवंग आ पहुँची, सर पर तमाशे का वक्स रखे और

बगल में धोतियाँ दाबे, चेहरे पर गम्भीरता थी और नेत्रों से जैसे आँसू टपक पड़ना चाहते थे ।

बुढ़िया ने लवंग की ओर देखा, फिर तमाशे के बक्स की ओर और फिर बगल में दबी हुई धोतियों की ओर । लवंग के पास नहीं धोतियाँ देखकर बुढ़िया आश्चर्यचकित-सी रह गई ।

वह लाठी ठेगती हुई उठ खड़ी हुई और डगमगाते पैरों से लवंग के पास आई । काँपते हाथों से धोतियों को छुआ । जैसे उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था ।

लवंग बिना बोले हुए भोंपड़े के अन्दर घुस आई । सर पर का बक्स कोने में रख दिया, धोतियाँ उसपर पटक दीं और टूटी खाट पर धम्म से आकर गिर पड़ी । नेत्रों में छिपे हुए अविरल अश्रुकण अवा-धगति से प्रवाहित हो चले ।

बुढ़िया को लवंग की गम्भीरता कुछ सन्देह जनक लगी । वह लाठी ठेगता हुई अन्दर आई । अन्दर लवंग को रोते हुए देखकर आश्चर्यचकित-सी रह गई ।

“क्या हुआ तुझे लवंग !...क्या हुआ है !...”

लवंग के पास बैठकर बुढ़िया उसे सान्त्वना देने लगी ।

सान्त्वना का सहारा पाकर हृदय की पीड़ा और भी तीव्रतर हो उठती । नेत्रों से अश्रुबिन्दु भरने की तरह भरने लगते हैं ।

लवंग जोरों से रोने लगी । बुढ़िया ने बहुत प्रयत्न करके उसे चुप कराया ।

“मुझसे बता—क्या हुआ है तुझे बिठिया !...आज तो तुझे खुश होना चाहिये कि तूने इतने पैसे पैदा किये कि अपने लिए दो धोतियाँ भी खरीद लीं । तुझे धोतियों की जरूरत भी थी—देख अपनी धोती, चिथड़े-चिथड़े उड़ गई है...” बुढ़िया ने कहा ।

“ये धोतियाँ मैंने नहीं खरीदी हैं माँ !...” लवंग ने कहा ।

“तब कहाँ से पा गई इन्हें !...”

“एक रईस को तमाशा दिखाया था माँ !...उसी ने मेरी गरीबी पर तरस खाकर ये धोतियाँ मुझे खरीद दीं...”

“रईस ! रईस ने ये धोतियाँ...तुझे खरीद दी हैं !”

बुढ़िया कुछ सोचने लगी। एक अमीर की सहृदयता की कथा सुनकर उसे कम आश्चर्य नहीं हुआ।

“मगर ये कल्लो, जगनी, अमवा, छत्रिया, तिल्लो, नन्हकी किलो की बढ़ती नहीं देख सकती माँ !...रास्ते में मिल गई थी—खूब व्यंग की बौछारें मेरे ऊपर कीं...” लवंग ने कहा।

“और इसीलिए तू रो रही है !...”

“.....”

“अरी पगली ! इन छोकरीयों की अक्ल ही कितनी—तू उनका खयाल मत कर। अगर कोई हमारी गरीबी पर तरस खाकर हमें दस-बीस रुपये दे देता है, तो उनकी आँखें क्यों फूटती हैं !...जा तू अपना काम कर। जल्दी से सब काम निपटा कर नदी पर चली जाना और हाथ मुँह धोकर नई धोती पहन लेना—भला !...”

“अच्छा !...” माँ की सान्त्वनामयी वाणी से लवंग के हृदय का आवेग कुछ कम हुआ—“माँ ! एक बात कहूँ....”

“कहती क्यों नहीं री !...आज बहुत पहेली-सी बुझा रही है !...”

“इसमें की एक धोती केसर को दे दूँ मैं !...”

“हाँ भाई ! केसर को क्यों नहीं दोगी—तेरी भौजी है न !....” बुढ़िया ने कहा।

“अच्छा, तो तू ही एक ले ले माँ !...दो धोतियाँ लेकर क्या करूँगी मैं !...दे दूँ एक तुमको !...”

“नहीं री नहीं !...ले जा एक अपनी भौजी को दे देना....देखें, कब केसर दुलहिन बनकर इस घर में आती है !...”

बुढ़िया पुनः खटोले पर जा बैठी।

लवंग भाड़ू हाथ में उठाकर भोंपड़ी बुहारने लगी। बुहार कर

जम्मू की नाद साफ किया और तब कन्धे पर दोनों धोतियाँ तथा कमर पर घड़ा रखकर नदी की ओर चल दी ।

उस समय सूर्य भगवान् अस्त हो चुके थे । पश्चिमाकाश से रक्त-रञ्जित प्रदोष भाँक रहा था ।



नदी की धारायें बलखाती हुई बह रही थीं । उस पार दूर तक सूखी रेत फैली हुई थी, जो देखने वालों के हृदयों में अपनी ही जैसी शुष्कता भर देती थी । प्रलय के भयानक दुष्कृत्य का इतिहास उस बालु-कामयी भूमि के कण-कण में व्याप्त था । केसर नदी के किनारे उमड़े हुए एक पत्थर पर बैठी हुई लवंग की प्रतीक्षा कर रही थी । छूछा घड़ा बगल में ढुलका हुआ था । केसर किसी गहरे विचार में निमग्न दिखाई पड़ रही थी ।

“अरे वाह ! यहाँ तुम बैठी हो....”

पीछे से आवाज आई । यह किसी पुरुष का स्वर था ।

और केसर ने चौककर पीछे की ओर देखा । नदी का उतार धीरे-धीरे लॉघता हुआ एक कंजर युवक आता दृष्टिगोचर हुआ ।

वह युवक केसर के पास आकर उसी पत्थर पर बैठ गया—केसर दूर सरक कर जा बैठी । ऐसा प्रतीत होता था कि उस युवक का आना केसर की बिल्कुल पसन्द न हो । केवल यही नहीं—उसे देखकर केसर के मुखपर अव्यक्त घृणा के भाव अंकित हो उठे थे—मगर उस युवक का इस ओर जैसे ध्यान ही न था ।

“घर गया, तो चौधरी काका ने बताया कि तुम नदी की ओर गई हो”—युवक ने कहा ।

“देखो घन्ना !” केसर बोली—मुझे परेशान करना ठीक नहीं...”

“मगर मैं तुम्हें परेशान ही कब करता हूँ !....” युवक ने पूछा ।

“परेशान नहीं करते तो क्या करने आते हो, मेरी...!”

“इसीलिये तो आता हूँ केसर !...” युवक कुछ आगे सरक कर केसर के पास आ गया । केसर का हाथ पकड़ना चाहा उसने, मगर केसर ने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया । युवक कहता गया—
“तुम्हारी पूजा करने के लिए ही तो आता हूँ मैं !...तुम नाहक परेशान होती हो....”

“अभी आज दोपहर को तुमने मुझे कितना परेशान किया था...”

“दोपहर को...” हँसकर बोला घन्ना—“दोपहर को तो मैंने तुमसे अपने दिल की कहानी कही थी । अपने दर्द का हाल बयान किया था । अपने प्यार की दुनिया तुम्हारे पैरों के पास रख दी थी...”

“क्या वह जो तुम घण्टों बड़बड़ाते रहे थे, तुम्हारे दिल की कहानी थी ? तुम्हारे दर्द का हाल था ? तुम्हारे प्यार की दुनिया थी... आश्चर्य...!”

तुड़्दी पर अँगुली रखकर केसर ने आश्चर्य का भाव जताया । उस आकर्षक-भंगिमा में केसर का सौन्दर्य देदीप्यमान हो उठा ।

“केसर ! मैं सच कहता हूँ, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ...”

“आदमी तो पत्थर की मूर्ति तक से प्यार कर सकता है फिर मैं तो सजीव हूँ । मगर तुम्हारे प्यार के पौधे में फल न लग सकेगा घन्ना ! शायद वह यों ही तड़प कर पानी बिना सूख जाय और तुम्हारे प्यार की दुनिया बीरान हो जाय...” केसर ने कहा ।

“यह नहीं हो सकता केसर !...मैं ऐसा नहीं होने दूँगा...”

घन्ना के स्वर में दृढ़ता टपक रही थी ।

“ऐसा ही होगा घन्ना !...जरूर होगा !...” केसर उत्तेजित स्वर में बोली ।

“केसर ! मैं जानता हूँ कि तू किसके बल पर, किसके घमण्ड पर,

मुझसे चोंच लडा रही है”—धन्ना क्रोधित स्वर में बोला—“यह समझ ले कि अभी धन्ना के शरीर में जवानी का गरम खून लहरा रहा है। वह जीते जी किसी दूसरे को तुझपर हाथ बढ़ाने नहीं देख सकेगा...खून हो जायगा, खून !...”

“पञ्चम को कम समझते हो क्या !...” केसर बोली—“खैरियत इसी में है कि चुनचाप यहाँ से चले जाओ...”

“जाता हूँ केसर ! मगर याद रखना, तुम होगी तो मेरी ही, नहीं तो किसी का नहीं...”

धन्ना पत्थर पर से उठकर खड़ा हो गया और तेजी के साथ पग-ढण्डी की ओर बढ़ा। उसके मुख पर विश्वासघातकता के पूरे चिह्न परिलक्षित हो रहे थे।

कंजरी का गारा गरोह धन्ना को जानता था—यह भी जानता था कि यह वह सॉप डे, जिसके डेंस लेने की कोई दवा नहीं—यह वह जहर है, जिसके पी लेने पर जीवन का कुछ भी आशा नहीं।

सभी डरते थे धन्ना से मगर पञ्चम और धन्ना से खूब पटती थी। धन्ना शहर में ही किसी जगह मजदूरी करता था।

धन्ना पगढण्डी पर से चला जा रहा था कि किसी ने पीछे से पुकारा—

“धन्ना ! ओ रे धन्ना !...खड़ा रह...”

धन्ना ने पीछे मुड़कर देखा—पंचम शहर से आ रहा था, हाथ में रीछ की डोरी पकड़े हुए। दूसरे हाथ में डुगडुगी थी।

धन्ना रुक कर खड़ा हो गया। पंचम पास आ गया।

“राम-राम पंचम भैया !....”

“राम-राम ! राम-राम !...कहाँ से आ रहा है रे धन्ना !...” पंचम ने पूछा।

“ऐसे ही घूम रहा हूँ भैया ! तुम आज शहर से जल्दी चले आये !...”

“हाँ ! काम भर को पैसे मिल गये थे—सोचा, ज्यादा पैसे जुटाकर श्रीमिर तो बनना नहीं है—इसीलिए लौट आया...”

“ठीक है भैया ! हम लोगों की गुजर तो दो-तीन आने में हो जाती है । ज्यादा लेकर करना ही क्या है !...”

“तू आज काम पर नहीं गया क्या ?”—पंचम ने पूछा ।

“गया तो था पंचम भैया मगर काम नहीं लगा, तो बारह बजे ही चला आया था—श्रव इधर-उधर टहलकर पैर पंसुल कर रहा हूँ...”

“चल, किधर चल रहा है !...”

“चलो, तुम्हारे हाँ धर चलूँ—काकी को देखे बहुत दिन हो गये हैं”—घन्ना ने कहा । दोनों पगडण्डी से आगे बढ़ने लगे ।

“पंचम भैया !...” कुछ हिचकिचाते हुए बोला घन्ना ।

“क्या है रे !...”

“एक बात कहूँ—बुरा तो नहीं मानोगे न !...”

“नहीं रे ! तू निडर होकर कह...”

“नन्हड़ी कह रही थी पंचम भैया की आज खवंग को किसी बाबू ने एक जोडा धोती खरीद दी है...”

“खरीद दी होगी...” उपेक्षित भाव से बोला पंचम—“आज भी दुनिया में दयावानों की कमी नहीं...”

तीर निशाने पर न बैठता हुआ देखकर घन्ना चुप हो रहा । दोनों साथ-साथ चलते रहे ।

सूर्य अस्त हो गया था । सन्ध्या का हलका धुँधलका चारो ओर छा रहा था ।



केसर के हृदय-पट पर धन्ना की बातों ने बहुत उथल-पुथल मचा दी। वह अन्यमनस्क होकर नदी किनारे बैठी रही। न जाने कब तक इसी प्रकार बैठी रहती, यदि उसी समय, धोतियाँ बगल में दाबे और घड़ा कमर पर रखे हुए लवंग वहाँ न आ गई होती।

“आज तो बहुत उदास दिखाई देती हो !”—आते ही लवंग ने पूछा।

केसर की दृष्टि लवंग की धोतियों पर पड़ी।

“आज बड़ी अच्छी धोतियाँ लाई हो”—केसर ने मुस्करा कर कहा—“मालूम पड़ता है कि आज वे नाव वाले बाबू तुम्हें मिल गये थे, जो इसी नदी के बीच से उस दिन नाव पर जा रहे थे और जिनका विहार देखकर तुम्हारे बदन में जवानी लहरा उठी थी....”

केसर ने यद्यपि व्यंगपूर्वक ही वह बात कही थी मगर बात वास्तविक थी।

“हाँ, केसर ! वही बाबू एकाएक मिल गये थे—अनायास ही....” लवंग बोली।

“अरे, क्या सच, वही बाबू मिल गये थे ?...” केसर को महान् आश्चर्य हुआ।

“हाँ ! बिल्कुल सच केसर !...वही बाबू थे—पक्के शराबी हैं—मेरे सामने ही चौथाई बोतल पी गये। पहले तो मैं बहुत डरी—मगर बाद को समझ गई कि उनका हृदय अत्यन्त दयावान है, बात की बात में मुझे दो धोतियाँ दे डालीं—केवल एक बार तमाशा देखा...”

“मगर वे मिल कैसे गये तुम्हें ?...” पूछा केसर ने।

“बड़ी लम्बी कहानी है केसर !...ठंडी सॉस ली लवंग ने।

“जरा मैं भी तो सुनूँ लवंग बीबी ! बड़ी लम्बी सॉसें ले रही हो। जान पड़ता है बाबू से धोतियाँ लेकर जल्दी-जल्दी चली आई और अपना दिल वहाँ भूल आई....”

“मजाक करती हो भौजी !...”

लवंग

“अगर अब भौजी कहा तो...” कहते-कहते केसर रुक गई ।

“क्या मेरे मुँह से ‘भौजी’ शब्द बहुत कड़वा लगता है !...”
लवंग ने आँखों में प्रश्न का भाव और होठों पर मदिर मुस्कराहट लाकर पूछा ।

“नहीं, बहुत मीठा लगता है”—केसर बोली—“इतना मीठा कि उसकी मिठास मैं सहन नहीं कर सकती...होठों में शहद भरा है तुम्हारे, देखना कहीं भौरे न टूट पड़ें लवंग !”

“फिर तुमने मजाक छेड़ा !...”

“अच्छा तो बताओ, क्या हुआ था—वे बाबू तुमसे क्यों कर मिल गये ?—”

“बताती हूँ—आज सुबह जब मैं तमाशा लेकर शहर गई तो एक इमारत के सामने कुछ लड़कों को तमाशा दिखाने लगी, इतने में कुछ गुण्डे उधर आ निकले और बिना पैसा दिये ही तमाशा दिखाने को कहा । मैं लाचार थी—तमाशा दिखाने लगी । उनमें से एक गुण्डा जो सबों में बदमाश था, मेरे पास आ खड़ा हुआ और एकाएक उस शैतान ने अपना हाथ बढ़ा कर....”

कहते-कहते लवंग लजित हो उठी ।

मगर उसके शब्दों का इशारा केसर भली भाँति समझ गई । वह भी मुस्करा पड़ी ।

“अच्छा तो, आगे क्या हुआ ?”

“उसी समय मोटर पर वे ही बाबू आ पहुँचे—वह हवेली उन्हीं की थी । उन्हीं ने मुझे उन गुण्डों के चंगुल से छुड़ाया...”

“चलो, अदसान के बोझ से तुम्हें पहले ही लाद दिया उन्होंने—”
केसर हँसकर बोली—“अब किसी दिन उनके गले से लगकर अदसान का बोझ उतार देना...”

“अच्छा, ज्यादा मजाक मत करो”—लवंग ने कहा—“यह लो, एक धोती—जरा पहनकर पंचम मैया को रिझाना...”

लवंग ने एक धोती केसर के घुटनों पर रख दी !

“तुम्हारे भैया तो पहले ही रीझ चुके हैं—अब उन्हें क्या रिझाना है !...रीझना और रिझाना कपड़े-लत्ते से नहीं होता लवंग ! ये हृदय के भाव हैं—अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं...”

“लो भौजी !...माँ ने कहा है, तुम्हें इसे लेनी पड़ेगी...”

“तुम्हें ज़िद करने की क्या जरूरत है !...जब माँ ने कहा है, तो मैं इसे लिए लेती हूँ....” केसर बोली ।

“चलो, नहाकर इसे पहनें....”

“चलो !...”

और दोनों नदी में छापक-छपाकूद पड़ीं । दोनों खूब तैरना जानती थीं । बाल्यावस्था से ही ये दोनों इस कला में पारंगत थीं ।

घण्टों तक तैर कर दोनों नहाती रहीं ।

परन्तु रात्रि के सघन अन्धकार का आगमन जानकर उन्हें पानी से बाहर निकलना पड़ा । बाहर निकल कर दोनों ने नई धोतियाँ पहनीं और घड़े पानी से भर कर चल दीं ।

“उफ !...” कहकर लवंग ने अपना कलेजा पकड़ लिया । मुँह पर बेचैनी के भाव अंकित हो उठे, जैसे उसके हृदय में बहुत तीव्र पीड़ा उठ आई हो ।

“क्या हुआ लवंग !...क्या हुआ !...” केसर ने अपना घड़ा जमीन पर रखकर, लवंग का हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा ।

“कलेजे में दर्द हो रहा है...” टूटती आवाज में लवंग बोली ।

“कलेजे में दर्द !” केसर घबरा उठी—“क्यों दर्द हो रहा है...”

“तुम्हारी सुन्दरता देख कर भौबी !” मुस्करा कर बोली लवंग—

“तुम्हारे छुरहरे बदन पर यह धोती खूब खिल रही है...”

तो यह स्वांग था—अदा थी !

केसर ने यह सब समझा और मुस्कराकर लवंग के सुन्दर कपोलों में एक हलकी चुटकी काट ली ।

दरवाजे पर बैठा हुआ पंचम बीड़ी का कश लगा रहा था। उसकी बुढ़िया माँ भोपड़े के अन्दर चारपाई पर लेटी हुई खों-खों खाँस रही थी। उसी समय पहुँच गई लवंग, नदी के पानी से भरा हुआ घड़ा सर पर रखे।

पंचम ने लवंग की ओर देखा, पुनः सर नीचा करके बीड़ी पीने लगा। लवंग के बदन पर जयराम की दी हुई नयी धोती थी।

“खाना कब बनेगा लवंग ?” पंचम ने पूछा—“नयी धोती पाने की खुशी में मुझे खाना खिलाना भी भूल जायगी क्या ?”

“नदी पर केसर मिल गई थी भैया ! इसीलिये देर हो गई। मैं अभी खाना पकाये देती हूँ...” लवंग ने कहा।

आधे घण्टे में ही लवंग ने बाजरे की रोटी और बैंगन का भुर्ता बना डाला और पंचम को बुलाकर उसके सामने महुए के पत्तल पर खाना परस दिया।

“किसने दी यह धोती लवंग !” खाते-खाते पूछा पंचम ने।

“एक बाबू है भैया !...” लवंग बोली—“बड़े दयालु हैं। उन्होंने मुझे दिया है...”

“कैसे हैं वे बाबू !....”

“बड़े अमीर हैं भैया ! शायद अकेले हैं घर के....हाँ ! नौकर-चाकर की भीड़ अलबत्ता रहती है....”

कहते-कहते लवंग के नेत्रों के समक्ष जयराम की गम्भीर आकृति नृत्य कर उठी। उस मूर्ति का स्मरण आते ही न जाने क्यों लवंग का सारा शरीर एक मादकतापूर्ण गति से सिहर उठा।

“नाम क्या है उनका !...” पूछा पंचम ने।

“नाम तो नहीं मालूम मुझे भैया !...वे बड़े आदमी हैं, उनसे कैसे उनका नाम पूछती !...”

“बेवकूफ कहीं की !... बड़े लोगों का नाम उनके नौकरों से पूछा जाता है—स्वयं उनसे नहीं !...” पंचम ने मधुर झिड़की दी ।

“कल पूछकर बताऊँगी भैया !” —लवंग ने कहा—“नाम जो हो उनका मगर हैं दयालु...”

एक बार फिर लवंग के हृदय-पट पर जयराम का चेहरा अंकित हो उठा मगर इस बार वह प्रतिमूर्ति झलमला रही थी, जैसे शराब पिये हो ।

तुरन्त लवंग को स्मरण हो आया कि उसके दाबू शराब भी पीते हैं ।

।शराब !

जो मनुष्य को पशु और मानव को दानव बना देती है !

जो देवताओं का सोमरस है और राक्षसों की मदिरा !

जिसे किसी न किसी रूप में मनुष्य अनादि-काल से सेवन करता चला आ रहा है ।

मगर यह कितनी घृणित वस्तु है ! कितना हेय-पेय है । मनुष्य की जिह्वा को इस तरल विष में न जाने कैसी मिटास का आभास मिलता है कि वह इसे शहद की भाँति पी जाता है ।

मनुष्य की ही हस्ती है कि वह इतनी कड़वी वस्तु को भी अपना पेय समझता है । मानवी-हृदय में यदि अपना बुरा-भला सोचने की पर्याप्त शक्ति होती तो कितना अन्ध होता ! मगर मनुष्य की यह विशेषता है कि वह एक जहर से परहेज करता है और दूसरा जहर पीता है ।)

“भैया !” लवंग ने थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात् बातचीत का सिलसिला जोड़ा ।

“क्या है लवंग !” पंचम बोला ।

“आदमी शराब क्यों पीता है भैया !” लवंग ने भोलेपन में पूछा ।

“महीने में एकाध बार पीने वाला मजे के लिये पीता है...” पंचम ने कहा ।

“और रोज पीने वाला ?”

“मौत के मुँह में जाने के लिए...” हँसकर पंचम बोला ।

“.....”

तो क्या जो रोज शराब पीते हैं, वे स्वयं अपनी मौत के आवाहक हैं ? क्या वे इसीलिये अधिक मात्रा में शराब का सेवन करते हैं कि मौत उन्हें जल्दी खींच ले जाय और उनके चाहनेवाले इस दुनिया में तड़पते ही रह जाँय और वे इस सांसारिक बन्धन से मुक्ति पा जाँय ?

मगर कितनी करुणाजनक होती होगी यह मौत !—धुलधुल कर मरना और मर-मर कर धुलना ।

वह भी शराब पीते हैं—तो क्या उन्हें भी मौत की इच्छा है ? क्या उन्हें कोई मानसिक व्यथा है, जिससे ऊबकर वे जल्द ही इस दुनिया से चले जाना चाहते हैं ? अगर वे मर गये ?...तो !...उफ !

सोचते सोचते लवंग का बदन थरा उठा । सर में आँधी खड़ी हुई वह उन्हें शराब पीने से रोकेगी—वह उन्हें यों ही दुनिया से न जाने देगी ?

मगर क्यों ? वह आवारा, शराबी रईस, उसका होता ही कौन है, जिसके लिये वह इतनी अधिक परेशान है !—वह क्यों एक ऐसे व्यक्ति की हित-कामना कर रही है, जिसके जीवित रहने से दुनिया का कुछ भी भला नहीं, सिवा इसके कि सौ दो सौ बोतलें और खाली हो जाँय, दस-बीस औरतों की अस्मत् और लूटी जाय ।

लवंग ने अपना हृदय टटोला—‘कुछ’ था !

एक अव्यक्त पीड़ा थी, एक मधुर टीस थी, एक वैकल्पपूर्ण मादकता थी । लवंग का हृदय इस समय जवानी की मधुर कल्पनाओं का क्रीड़ास्थल बना हुआ था ।

अबतक पंचम खाना खा चुका था । बाहर उसने हाथ-मुँह धोया और बीड़ी सुलगाकर चौधरी की चौपाल की ओर चल पड़ा ।

पंचम के चले जाने पर लवंग ने भी खाना खाया और बुढ़िया को भी खिलाया । खाना खा चुकने के बाद, बचा-खुचा जम्मु की नाँद में

उठाकर डाल आई और तब बर्तन साफ करने के पश्चात्, भोपड़ी का दरवाजा भेड़कर दोनों माँ-बेटी एक ही चारपाई पर पड़ रहीं ।

बुढ़िया लेटते ही खर्राटे भरने लगी मगर लवंग के नेत्रों में नींद का नाम भी न था । उसके मस्तिष्क में जैसे अगणित विचारों की धारा लहरें ले रही थीं और वह उन्हीं विचारों में तल्लान चारपाई पर पड़ी थी, बिना हिले-डुले—क्योंकि हिलने-डुलने से बुढ़िया का नींद में विघ्न पड़ने का डर था ।

लवंग आँख मूँदे पड़ी थी । उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उसका चारपाई के बगल में जयराम खड़ा हो, जैसे जयराम के एक हाथ में बोटल और दूसरे हाथ में प्याला हो, जैसे जयराम ने प्याले में मदिरा ढालकर होठों में लगा ली हो...

“नहीं-नहीं...” आवेश में चिल्ला उठी लवंग—“मैं तुम्हें शराब नहीं पीने दूँगी....नहीं पीने दूँगी...तुम शराब पीकर मरना चाहते हो....”

कदाचित् लवंग अर्द्धनिद्रितावस्था में थी—तभी जोरों से चिल्ला उठी थी ।

“क्या है रे लवंगिया !....” बुढ़िया ने लवंग को डाँटा—“जरा-सी नींद लगी नहीं कि लगी सपने में बड़बड़ाने !—अबकी बड़बड़ाई तो मुँह थूर दूँगी...”

लवंग सिरपिटा कर चारपाई पर पुनः लेट गई मगर बहुत देर तक उसे नींद न आ सकी । पश्चिमाकाश पर सुकवा उग आया था, तब लवंग की पलकें झँपी ।

हुक्के की लम्बी-सी निगाली मुँह में डाले, कुर्सीनुमा मचिया पर बैठा था चौधरी, तमाखू पीता हुआ ! शाम हो गई थी । चौधरी अभी-अभी ही मैदान से होकर आया था और अब तमाखू पीकर अपने रोजगार में लग जाना चाहता था । चौधरी का व्यापार सन्ध्या से लेकर दो बजे तक चालू रहता था । 'भूतों के अड्डे' का अधिष्ठाता था न वह ।

“चौधरी काका !...” एक कंजर आ गया ।

“क्या है रे दुखिया....” चौधरी ने पूछा ।

“देखो काका !....धन्ना 'नाइक ही मेरे छोटे भाई को पकड़ कर मार रहा है ! ऐसी भी जबरदस्ती—सो भी तुम्हारे होते हुए—अब कंजरो में तहजीब ही कहाँ रह गई काका—कौन समझता है कि कौन चौधरी है, कौन नायब...”

अपनी तौहोन सुनकर चौधरी को भवों पर बल पड़ गये ।

“कहाँ है धन्ना !”—पूछा चौधरी ने ।

“मेरे दरवाजे पर है काका !...कौन बोले उस संड-मुसंड से...”

“मैं देखता हूँ कि इस पाजी धन्ना ने लोगों की नौद हराम कर दी है”—चौधरी ने कहा और मचिया पर से उठ खड़ा हुआ ।

भोंपही के अन्दर आकर देखा तो केसर अभी तक नदी से लौटी न थी, अतः दरवाजा भिड़का कर हाथ में लाठी ले ली ।

“चलो !....” बोला वह दुखिया से ।

आगे-आगे चौधरी, पीछे-पीछे दुखिया चला ।

धन्ना, दस बारह बरस के एक बालक को पकड़कर मार रहा था और बीच-बीच में कहता जाता था—“बोल सूअर के बच्चे ! मुझे गाली क्यों दी !....”

“धन्ना-पन्ना !...” बालक रोते हुए बोला ।

“फिर....फिर गाली...” धन्ना ने उस बालक का हाथ मरोड़ कर कहा—“अबकी गाली दी तो खट्ट से हाथ तोड़ दूँगा....देखूँगा कौन सूअर तेरी मदद को आता है...”

उसी समय कंधे पर किसी के वजनी हाथ आ पड़े। चौककर धन्ना ने देखा—हाथ में लट्ठ लिये चौधरी खड़ा है और उसके पास ही दुखिया

धन्ना एक बगल हटकर खड़ा हो गया। चौधरी के बुढ़ापे की शक्ति वह जानता था—फिर इस समय तो उसके हाथ में लट्ठ था—जो न कर डाले चौधरी !

चौधरी की आँखें अंगारे-सी लाल थीं, मुख पर अतिशय गम्भीरता थी। आगे बढ़कर चौधरी ने धन्ना के कान पकड़ लिये।

“बेईमान ! अब किसी कछर के मुँह लगा तो हड्डी-पसली तोड़ दूँगा...चौधरी को बुड़्दा मत समझना ..” चौधरी ने गरजकर कहा और चट्ट-चट्ट दो तमाचे धन्ना के गालों पर जड़ दिये।

धन्ना की आँखों के सामने तारे छिटक उठे मगर वह कुछ बोला नहीं !

“जा भाग कमीना-कुत्ता कहीं का”—चौधरी ने कहा—“आज बहुत दिनों से तेरी शरागत सुनता आ रहा था। यह मत समझ कि तू जवान है और मैं बुढ़ा ! अभी मेरे बदन का रग-रग बज उठने को तैयार है...”

धन्ना सर लटकाये हुए चला गया। यद्यपि वह कुछ बोला न था मगर उसकी भंगिमा भयंकर हो उठी थी। वह एक ऐसी आग थी, जो धीरे-धीरे सुलगते हुए एकाएक तीव्र रूप से प्रज्वलित हो उठती है।

चौधरी अपनी चौपाल की ओर चला।

केसर नदी से लौट आई थी और खाना बनाने की तैयारी में थी।

“केसर !...”

दरवाजे पर पहुँच कर चौधरी ने तीव्र स्वर में पुकारा।

और केसर आटा सना हाथ लिए हुए दोड़ी आई ।

चौधरी की भंगिमा उस समय भी उदीप्त थी, जैसे उस छोटी-सी घटना ने उसके अन्तस्थल में असीम क्रोध एवं महान वैकल्य की सृष्टि कर दी हो ।

चौधरी ने लाल-लाल आँखों से केसर के हाथों की ओर देखा जिसमें गीला आटा लगा हुआ था—पुनः उसकी दृष्टि केसर के बदन पर पड़ी हुई चमकदार नई धोती पर पड़ी ।

केसर को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे चौधरी के चेहरे पर, आँखों की जगह आग के दो जलते हुए अँगारे आ पड़े हों । उसने ध्यानपूर्वक देखा, चौधरी का सारा बदन अबतक आवेश से काँप रहा था ।

केसर जानती थी कि चौधरी थोड़ी-सी ही बात में बहुत ज्यादा क्रोधित हो उठता है और क्रोध आ जाने पर जल्दी शान्त भी नहीं होता ।

चौधरी आकर मचिया पर बैठ गया । केसर भी पास ही जमीन पर बैठ गई ।

“क्या है दादा !...” केसर ने नम्र स्वर में पूछा ।

“वह धन्ना का बच्चा था...” बोला चौधरी अस्त-व्यस्त स्वर में—
“अपने को बहुत लगाता है, कुत्ता कहीं का...”

“जाने दो दादा !....कुत्ते को मुँह लगाना ठीक नहीं...”

“सो तो है ही...किसी दिन देख लूँगा बच्चू को....अपने को गामा समझता है, कल का छोकरा !....”

“यह धोती देखते हो दादा !...” केसर ने बात बदल देने के अभिप्राय से कहा, क्योंकि वह भली प्रकार जानती थी कि जहाँ बात का रुख दूसरी ओर पलटा, तहाँ चौधरी का क्रोध भी लुप्त हो जायगा ।

“देखता तो हूँ...क्या है !...” चौधरी रुखी आवाज में बोला ।

“कितनी अच्छी है यह दादा !... है न !...”

“है तो !....कहाँ मिल गई तुम्हें ?”

चौधरी के क्रोध का पारा कुछ नीचे उतर आया था ।

“लवंग की माँ ने भेज दी थी दादा !...”

“लवंग की माँ ने !...” आश्चर्य से बोला चौधरी—“लवंग की माँ ने तेरे लिये भेज दी थी क्या !...”

“हाँ दादा !....”

“बुढ़िया तेरे लिए पागल हो रही है--” चौधरी ने कहा—
“आज दोपहर को टहलता हुआ मैं उधर जा निकला था तो उसने मुझे खटोले पर बिठाया और चिलम चढ़ाकर दिया । जब मैं चलने लगा तो उसने कहा, चौधरी भैया, अब केसर के बिना नहीं रहा जाता...”

चौधरी का क्रोध भाप की तरह उड़ गया था ।

केसर का शरीर चौधरी की बातें सुनकर एक मधुर-कम्पन से भर गया ।

“मुझे भी लवंग की माँ की सेवा करने की बड़ी साध रहती है दादा...” अपनी आवाज में हिचक भरकर बड़े प्रयत्न से कहा केसर ने ।

केसर के इस सीधे-सादे वाक्य में, उसकी मनोभिलाषा निहित थी—दो शब्दों की लड़ी में, जैसे उसके समग्र अधूरे अरमान पिरो दिये थे । अव्यक्तरूप से केसर ने पंचम के प्रति अपने प्रगाढ़ प्रेम को प्रदर्शित कर दिया था ।

केसर के वाक्य में, जो गूढ़ता थी, उसे बूढ़ा चौधरी भली भाँति समझ गया । प्रसन्नता हाँ हुई उसके हृदय में । सोचने लगा वह—

पंचम छोकरा कितना अच्छा है ! केसर की और उसकी जोड़ी खूब फबेगी । दृष्टा-कृष्टा भी है—दिमाग भी रखता है । अपने मरने के बाद ऐसी व्यवस्था कर जाऊँगा कि वही कंजरी का चौधरी हो जाय । अच्छा ही है, अगर केसर और पंचम की शादी हो जाय । बेटी पास ही में रहेगी, कहीं दूर भी नहीं जायगी । या तो शादी के बाद पंचम

और लवंग तथा बुढ़िया आदि का भी यहीं बुला लूँगा। पड़े रहेंगे बिचारे इसी चौपाल में—उनका भोंपड़ा भी जीर्ण हो चला है।

सोचता रहा चौधरी, कई मिनट तक चुपचाप !

“अच्छा तो तू जल्द खाना पका डाल बेटी !... रात होने को आई। लोग अब आते ही होंगे...” चौधरी बोला।

“बहुत जल्द खाना तैयार कर दूँगी दादा !...” कहती हुई केसर उठकर भीतर चली गई।

भटपट खाना तैयार करके उसने चौधरी को खिलाया। खाना खाकर चौधरी शराब की बोतलें लेकर चौपाल में मचिया पर आ बैठा।

लोगों की आवा-जाही शुरू हो गई थी। दिन भर के थके-माँदे कंजर मनोरंजन की खोज में चौधरी के चौपाल में एकत्रित हो रहे थे।

एक घण्टे में ही चौपाल में शोरगुल का बाजार गर्म हो उठा। गाली-गलौज और बक-भक शुरू हो गया। चौधरी के आगे इकन्नी-दुअन्नी खनकने लगीं। बोतलों के कार्क खुल गये—कुल्हड़ भरे जाने लगे—शुष्क होठों ने तीव्र मदिरा, ठण्डे पानी की तरह पीना शुरू कर दिया।

केसर अन्दर चारपाई पर लेटी हुई थी। नींद नहीं आ रही थी। नींद आती भी तो कैसे !... पंचम का इन्तजार जो था...

चुपके-चुपके पाँव रखता हुआ, लोगों की नजरों से अपने को बचाता हुआ आया पंचम।

केसर को नई धोती में लिपटी हुई पड़ी देखकर चौंक पड़ा, उसे लवंग का खयाल आ गया फिर सोचने लगा—लवंग तो अभी घर पर थी, वह यहाँ इतनी रात को क्या करने आयेगी।

प्रेम की प्यासी आँखों ने अपनी प्रेयसी को आखिर पहचान ही लिया। अर्द्ध-निद्रित केसर की खाट पर वह जा बैठा। चिहूँक कर केसर उठ बैठी। परन्तु पंचम को बैठा देख, सन्तोष की साँस लेने के साथ-साथ मुस्करा पड़ी।

“यह तो बताओ...” पंचम ने केसर को अपनी ओर खींचते हुए पूछा—“यह धोती किसकी चुरा लाई तुम !....”

“बता दूँ !....” केसर के नेत्रों में मादकतापूर्ण, शरारत का भाव था ।

“बताओ...” पंचम की आँखों से प्रेम की ज्योति भाँक रही थी ।

“फिर तो पूछो, क्या पूछते हो ?”

बातें बहुत धीरे-धीरे हो रही थीं, जिससे बाहर के किसी मनुष्य के कानों तक वे आवाजें न पहुँच सकें ।

“यह धोती तुम किसकी चुरा लाई ?”—पंचम ने अपना प्रश्न दुहराया ।

“तुम्हारे बहन की !...” मजाक के ढंग पर कहा केसर ने ।

“घत् !” कहकर पंचम ने, केसर द्वारा किये गये उस अपराध के दंडस्वरूप, उसका एक मादक चुम्बन चुरा लिया ।

उस समय अन्धकारमय आकाश का वत्त भेदन करता हुआ सप्तमी का चन्द्र उग आया था । रात्रि की नीरवता में, जमीन की छाती पर सफेद तथा काली परछाइयाँ बड़ी हृदयग्राही लग रही थीं ।

पास ही के किसी वृक्ष पर के घोंसले से, एक चिड़िया के पर फट-फटाने की आवाज तथा करुण चीख सुनाई पड़ी, पुनः चारों ओर शान्ति छा गई ।



अपने हृदय की अतृप्त तृष्णा शान्त करने के लिये उस दिन जयराम गुलशन के कमरे में रहा । मदिरा की बोतलों तथा गुलशन की जवानी भरी देह से खूब खेल खेले गये । उस रात वह स्वर्गलोक में था । दुनिया उसके समक्ष तुच्छ एवं हेय थी ।

एकाएक दरवाजे पर थपकी पड़ी ।

गुलशन और जयराज अलग हो गये । गुलशन ने आगे बढ़कर धीरे से दरवाजा खोला—सामने उस्ताद तालखॉ खड़ा था । बेचैनी छा रही थी उसके चेहरे पर ।

“क्या है उस्ताद ?—” गुलशन ने पूछा ।

“वह आया है बीबी”—उस्ताद ने धीरे से फुसफुसा कर कहा, इस ढंग से कि उसकी बातें जयराज न सुन ले ।

मगर उस्ताद की आवाज इतनी तेज थी कि जयराज उसे भली प्रकार सुन सकता था ।

“कौन आया है उस्ताद...कौन है....”

“वह रामदास सोनार है”—उस्ताद ने कहा—“बहुत जली-कटो सुना रहा है बीबा !...क्या करूँ !...”

“क्या कहता है वह !...”

“कहता है कि अभी, इसी वक्त मेरे नौ सौ रुपये लाओ—नहीं तो तूफान मचा दूँगा...”

“वह क्या तूफान मचायेगा जलील कुत्ता !...कह दो, चला जाय इस वक्त...” कहते-कहते गुलशन कुछ आवेश में आ गई थी ।

जयराज सब बातें सुन रहा था । वह पूर्णतया नशे में था ।

उठकर गुलशन के पास आया—

“क्या है गुलशन !—” उसने पूछा ।

“कुछ नहीं मेरे सरकार !...कुछ नहीं....आपको तकलीफ करने की जरूरत नहीं—आप आराम करें—मैं अभी सारा मामला तय किये देती हूँ...” गुलशन मीठे स्वर में बोली ।

“आखिर बात क्या है ?” जयराज हैरान स्वर में बोला—“कुछ मैं भी तो सुनूँ ?...तुम बताओ ताल खॉ ! क्या बात है ? कौन है, जो इस समय मेरे आराम में विघ्न डाल रहा है....”

“किसकी हिम्मत है हज़ूर, जो आपके आराम में खलल डाले—”
उस्ताद ताल खॉ बोला—“एक नाचीज सुनार है हज़ूर !...”

“क्यों आया है वह यहाँ !....” जयराज ने पूछा । उसे उस सुनार पर वास्तव में क्रोध आ गया था, क्योंकि उसने एक-ब-एक उसके स्वप्न-जगत में बाधा डाल दी थी और वह स्वर्गलोक छोड़कर अचानक मृत्युलोक की हाहाकारमयी नदी में डूबने-उतराने लगा था ।

एक क्षण !

केवल एक क्षण की ही देर थी । यदि वह सुनार कुछ देर तक और न आता तो जयराज का प्रेम अपनी चरम-सीमा पार कर चुका होता, हृदय की कुत्सित वासना, अपना भक्ष्य पाकर शान्त हो गई होती, अंग-प्रत्यंग में क्रोधजनित स्फूर्ति के स्थान पर तृप्तिजनित शिथिलता होती ।

मगर सब कुछ चौपट कर दिया इस मूर्ख सोनार ने । क्या उस इसी समय आना था !

“उस्ताद ताल खॉ !” उस्ताद से अपनी बातों का कोई उत्तर न पाकर पुनः तीव्र स्वर में बोला जयराज—“मैं पूछता हूँ कि वह सोनार यहाँ क्यों आया है ? मगर तुम चुप हो....बोलो, क्या चाहता है वह !...”

“हज़ूर ! उसके नौ सौ रुपये गुलशन के ऊपर निकलते हैं....यही हार बनवाया था गुलशन ने....” उस्ताद ताल खॉ ने गुलशन के गल में पड़े हुए एक कीमती हार की ओर इशारा करते हुये कहा ।

“क्या बताऊँ !...” गुलशन सकुचाते हुये बोली—“हार बनवा चुकने पर दिन ऐसे खराब आ गये कि अब तक उसका रुया न दे सकी...”

सर नीचा कर लिया गुलशन ने ।

“ठहरो !...मैं दिये देता हूँ...मेरी कोट की जेब में पर्याप्त रुपये हैं...”

कहता हुआ जयराज खूँटी पर टँगे हुए अपने कोट की ओर बढ़ा। मगर गुलशन ने प्यार से उसका हाथ पकड़ लिया।

“मुझे ज्यादा शरमिन्दा न करो मेरे राजा !”—बोली वह—
“रहने दो, वह किसी दूसरे दिन आकर अपने रुपये ले जायेगा।”

“तुम घबड़ाओ मत...” जयराज ने प्यार से अपनी मदहोश आँखों को गुलशन के शरबती नयनों में ढाल दिया।

फिर अपनी कोट की जेब से सौ-सौ के नौ नोट लाकर उस्ताद ताल खाँ के हाथों पर रख दिये।

“लो उस्ताद !”—बोला जयराज—“ले जाकर उस सोनार को दे दो...”

“लाख-लाख शुक्रिया हज़ूर !” प्रसन्नतापूर्वक बोला ताल खाँ—
“हज़ूर का दिल खुदा करे, हमेशा दरिया बना रहे...”

उस्ताद चला गया। गुलशन दरवाजा भीतर से बन्द कर पलंग पर आ बैठी। जयराज भी उसकी बगल में आ बैठा।

मगर गुलशन की मुखाकृति अत्यन्त गम्भीर हो गई थी। उसके चेहरे की संजीदगी ने उसके नेत्रों में करुण-भाव ला दिये थे। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे किसी बात ने उसके कोमल हृदय पर असहनीय चोट पहुँचाई हो।

“बुप क्यों हो मेरी रानी...!” जयराज ने आँखों में प्यार भर कर पूछा।

“मैं आपसे नहीं बोलूँगी...” रुठने का नाट्य करते हुए कहा उसने।

“क्यों ?...क्यों नहीं बोलोगी ?...”

“मैं आपसे नाराज हूँ ?...”

“क्या खता हुई मेरी ?...क्या अपराध हो गया मुझसे ?...”
पूछा जयराज ने अनजान बनकर।

“आपने रुपये क्यों दिये ?....”

“वह मेरा फर्ज था गुलशन !...” जयराज बोला ।

“अपने फर्ज का आपको बहुत ख्याल रहता है—” गुलशन कृत्रिम क्रोध से बोली—“मगर दूसरों के फर्ज की आप कुछ परवाह ही नहीं करते जैसे...”

“दूसरों के फर्ज का कैसा !...”

“बड़े भोले हैं न आप !...मैंने गहने बनवाये थे तो क्या मेरा फर्ज यह नहीं था कि मैं ही रुपये अदा करूँ !...क्या आप इतना भी नहीं समझ सकते भोले राजा !...”

गुलशन के होठों पर मुस्कराहट आ गई थी, जिसे उसने बलपूर्वक रोक रक्खा ।

“तुम्हारे बजाय यदि मैंने रुपये दे दिये तो क्या नुकसान हुआ !...” जयराज ने गुलशन के और पास आकर कहा ।

“बहुत बड़ा नुकसान हुआ”—गुलशन बोली—“आप अभी तक मुझे मामूली तवायफ समझ रहे हैं, जो दस-बीस रुपयों के लिये...”

“ऐसा न कहो मेरी तितलो !...”

“मेरी मुहब्बत का जैसे आपको कुछ ख्याल ही नहीं....”

“मुझसे अपराध हुआ गुलशन !...माफ कर दो...” जयराज ने कहा ।

“हम माफी दे सकते हैं मगर एक शर्त पर !...”

“क्या है शर्त !...” पूछा जयराज ने ।

“....” गुलशन ने होठों पर अँगुली रखकर कोई संकेत किया ।

इशारे से जिस वस्तु की याचना गुलशन ने की, वह उसे मिल गई ।

एक नाटक था ।

बड़ा ही दिलचस्प और रंगीन !

नाटक के पात्र थे सीनार, उस्ताद ताल खाँ, गुलशन और जयराज ।

सीनार ने अपने रुपये माँगे, उस्ताद ताल खाँ ने गुलशन को खबर दी, गुलशन ने अपनी हिचकिचाहट प्रकट की और नाटक के

भोंदू पात्र जयराज ने चुपचाप नौ सौ रुपये निकाल कर उस्ताद को दे दिये ।

नाटक था !

जी हाँ, नाटक था वह !

सब कुछ कल्पित था, बनावटी था—सोनार का आना, नौ सौ रुपये का हार—सब कुछ मिथ्या था, एक नाटक मात्र था ।

मगर गुलशन के फेर में पड़े हुए मूर्ख जयराज को इतना ज्ञान कहाँ ! उसे क्या मालूम कि वेश्याओं के पास, उनके अभिभावकों के पास, अन्धे रईसों से रुपया ठगने के लिये एक से एक बढ़कर चालें हैं ।

गुलशन और उस्ताद ताल खाँ ने मिलकर जयराज को खूब उल्लू बनाया, बात की बात में नौ सौ रुपये ँठ लिये

जयराज कभी भी वेश्याओं द्वारा ठगा नहीं गया था । यह उसके लिये प्रथम अवसर था, जब कि शराब के नशे में बुत्त होकर उसने इतना बड़ा नुकसान उठाया था । यदि गुलशन के सौन्दर्य ने उसे पागल न बना दिया होता अथवा अत्यधिक मदिरा सेवन कर उसने अपना मस्तिष्क विकृत न कर डाला होता—तो वह कभी भी गुलशन की विश्वासघातकता द्वारा प्रभावित न होता ।

उस्ताद ताल खाँ गुलशन का अभिभावक भी था और तबलची भी । उसमें और गुलशन में खुल्लम-खुल्ला बातें होती थीं । यह नहीं प्रतीत होता था कि इस बूढ़े मुसलमान तबलची ने, अपनी बुढ़ाई की गुजर के लिये, गुलशन को बाह्यावस्था से ही पाला है और उसे अपने जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु समझ कर सँवारा है ।

गुलशन के जीवन का यह भेद केवल कुछ ही लोग जानते थे ।

कई साल पहले उस्ताद ताल खाँ ने एक शिशु की जान बचाई थी और उसे अपने घर में लाकर, यत्नपूर्वक उसका लालन-पालन किया था ।

परन्तु क्या वह परोपकार था ?

क्या उस समय उस्ताद ताल खाँ के हृदय में परोपकार की सद्भावना विराजमान थी ? क्या उस बालिका को उसने अपनी पुत्री की तरह पाला था ?

नहीं !

परोपकार नहीं था वह ! सद्भावना नहीं थी !—उस्ताद के हृदय में पुत्री का भाव नहीं था ।

मनुष्य स्वार्थी होता है । यह मानवी-प्रकृति है ।

उस्ताद ताल खाँ ने एक विषय लालसा के वशीभूत होकर उस बालिका का पालन-पोषण किया था । उस्ताद जानता था कि जवानी के दिन जितनी रंगीनी से व्यतीत होते हैं, बुढ़ाई के दिन उतनी ही गमगीनी से ।

बुढ़ापा एक भयंकर अभिशाप है !

बुढ़ापा मृत्यु का भीषण प्रतीक है !

जानता था यह, उस्ताद ताल खाँ । उसकी जवानी के दिन रूप के बाजार में दलालियाँ करते और तबले थपथपाते व्यतीत हुए थे—मगर बुढ़ापे के दिन गुजारने के लिये उस्ताद को एक ऐसी परी की आवश्यकता थी, जो लोगों के हृदय में बिजली बनकर तड़प जाय और ‘घन-घटा’ के मध्य से पानी की बूँदों जैसे रुपये बरस पड़े ।

उस्ताद ने इसीलिये गुलशन को इतना बड़ा किया था ।

बाल्यावस्था से ही गुलशन को उचित शिक्षा दी गई थी । संगीत के लयों का ज्ञान कराया गया था । नृत्य के हाव-भाव बताये गये थे । कमर की एक-एक लहर पर, देखनेवालों के हृदयों को शतशः द्रुट करना सिखाया गया था । आँखों की कमान पर कटाक्ष का तीर चढ़ाकर निशाना लगाना बताया गया था । तर्जनी उँगली को कला-पूर्ण ढंग से ठुड्ढी पर रखकर बैठना सिखाया गया था ।

लड़पन से ही लोगों के हृदय-हरण करने की प्रत्येक कला का ज्ञान उसे कराया गया था । थोड़ी उम्र से ही उसे ‘सी-सी’ और ‘हाय-हाय’

का चढ़ाव-उतार, आरोही और अवरोही, सिखाया गया था। छातियों पर उभार आने के बहुत दिन पहले ही, उसे अपनी छातियों पर की साड़ी असावधानतापूर्ण ढंग से हटा कर मुस्कराना बताया गया था।

प्रारम्भ से ही नृत्य का अभ्यास करते रहने के कारण वह बहुत अच्छा नाच नाचती थी। उसके रग-रग में 'वेश्यापन' ठोंक-पीट कर भरा गया था।

तत्पर्य यह कि उस्ताद ताल खाँ ने, गुलशन को अपने हाथों सँवार-सँवार कर सजाया था। उसकी प्रत्येक भंगिमा में उसने अपने हृदय की कलुषता भर दी थी। उसके रग-रग में अपने अन्तराल की वासना प्रवेश करा दी थी।

उस्ताद ने बहुत परिश्रम किया था, गुलशन को 'पक्की' बनाने में।

और एक दिन आया कि गुलशन की मासूम देह पर जवानी का चाँद चमक उठा। सीने का उभार और कमर का पतलापन आपस में ढोड़ लगा बैठे। आँखों में कृत्रिम सुरमें के बदले, जवानी की सुरमई छा गई।

जवानी के आ जाने से गुलशन की शुष्क-कला में, एक जीवन्त माधुर्य भर उठा।

एक दिन—

जब कि सारा शहर दीवाली का त्योहार, दीपकों की जगमगाहट में मना रहा था, बिजलियों के लट्ठू घर-घर से भाँक रहे थे— तो जवानी के भार से लदी हुई, सोलहो-शृंगार से युक्त अपनी देह लेकर, गुलशन कोठे पर आ बैठी—पहले पहल !

लोगों की नज़रें पड़ीं। पतिंगे पर फटफटा कर उड़ आये शमा के पास। कितनों ने नृत्य देखा, कितनों ने मुजरे सुने।

एक ही सप्ताह में गुलशन का नाम भर्यंकर आग की तरह शहर में फैल गया।

उस्ताद ताल खाँ के पास 'पहली रस्म' के लिए पैगाम पर पैगाम आने लगे ।

और एक काली रात में, शहर के नामी रईस ने उस 'रस्म' को पूरा किया ।



रायबहादुर सेठ गंगादास, जिन्हें लोग एक सीधा-सादा रईस समझते थे, वास्तव में थे छिपे-रुस्तम । दिन के उज्ज्वल प्रकाश में, श्वेत चन्दन का टीका लगाये हुए हमारे समाज के कर्णधार, रात्रि की नीरव कालिमा में क्या-क्या नहीं करते !

तो सेठ गंगादास ही गुलशन की 'पहली रस्म' करने वाले थे !

और आज उनका पुत्र जयराज गुलशन का प्रेमी बन बैठा था ।

सेठ गंगादास वेश्यागामी थे जरूर, मगर जयराज की तरह नहीं । वे कायर थे, उन्हें समाज का भय था, अपनी उच्चता का शान था, अपने मान का अभिमान था ।

उनके लिए दिन शुभकर्मों का द्योतक था ।

और जयराज के लिए दिन और रात समान थे ।

कदाचित् जयराज को अब तक यह मालूम न था कि उसके पिता सेठ गंगादास भी रूप-बाजार की सैर करते होंगे ।

मालूम भी हो तो किस प्रकार—बब कि पिता ने आरम्भ से ही पुत्र को दूर रखा था । उसके आराम-चैन का खयाल रखा मगर उसके चरित्र की शुद्धता की ओर तनिक भी ध्यान न दिया ।

सेठ गंगादास सोचते थे कि पुत्र को अपने से दूर, दूसरे बँगले में रखने से, वह पिता की बुराइयाँ भोंप न सकेगा और पिता की दुश्चरित्रता की छाप उसपर न पड़ने पायेगी ।

मगर उनका सोचना प्रतिकूल निकला । पिता की दी हुई स्वतन्त्रता तथा दौलत का जयराज ने अनुचित उपयोग किया । शराब और वेश्याओं के पीछे पानी-सा रुपया बहाने लगा वह ।

और एक दिन गंगादास को विश्वस्तसूत्र से पता लगा कि उनका पुत्र शराबी, शराबी और वेश्यागामी हो गया है । सेठजी आश्चर्यचकित हो उठे । उन्हें क्रोध नहीं आया—अपने ऊपर पश्चात्ताप ही हुआ ।

क्यों उन्होंने जयराज के प्रति अवहेलना बरती ?

क्यों उन्होंने उसे हद से ज्यादा स्वतन्त्रा दे दी ?

सोचने लगे वे—मगर जयराज से उन्होंने कुछ नहीं कहा । कई बार जयराज को डाँटने-फटकारने वे उसके बँगले पर गये, परन्तु जयराज के सामने आते ही उनकी बातें मुँह में ही रह जाती और जबान दूसरे-दूसरे शब्द बकने लगती ।

जयराज पर किये गये दुलार का परिणाम यह हुआ कि पिता पुत्र के सामने कायर बन जाता था और पुत्र पिता के हस्तक्षेप के बिना अधिकाधिक उच्छृङ्खल होता जा रहा था ।

सेठ गंगादास यह चाहते थे कि जयराज के जीवन-धारा की गति बदल जाय । वह प्रतिकूल दिशा छोड़कर, अनुकूल दिशा की ओर प्रवाहित होने लगे—मगर ऐसा करने का मार्ग क्या था ?—यह वे नहीं जानते थे ।

एक बात सेठ गंगादास ने जो किया था, वह यह था कि अब उन्होंने जयराज पर नियन्त्रण रखना प्रारम्भ कर दिया था । उसके प्रत्येक कार्य की खबर वे गुप्तरूप से रखते थे; यद्यपि उन्हें इसमें सफलता की आशा बहुत कम थी । यह एक कठिन कार्य था कि दिन और रात के

अन्दर जयराम जो कुछ भी करे, उसकी खबर सेठ गंगादास को हो जाय ।

फिर भी अब रायबहादुर सेठ गंगादास सावधान हो गये थे ।



सटक मुँह में डाले सेठ गंगादास कोच पर बैठे हैं । कभी-कभी एक दो कश खींचकर मुँह से धुएँ का गुबार निकाल देते हैं । उनकी मुखाकृति इस समय अतिशय गम्भीर है । चेहरा तमतमाया हुआ है ।

उनके सामने अदब से उस्ताद ताल खाँ खड़ा है ।

“ताल खाँ !...” स्थिर बाणी में बोले सेठजी—“तुम अपने को बहुत होशियार लगाते हो !...”

“सब हज़ूर की कदमबोसी का नतीजा है—” उस्ताद ने कहा—
“वरना यह नाचीज बन्दा है किस लायक !...”

“हूँ !...” सेठजी ने अपने प्रचलित नेत्रों से उस्ताद की ओर देखा—“तुमने अब मेरी ही छुरी, मेरे गले पर फेरनी शुरू कर दी...”

“भला यह कभी हो सकता है गरीबनिवाज !—”

“हो सकता है नहीं, हो रहा है—” बोले सेठ जी—“यह जानते हुए कि जयराम मेरा बेटा है और गुलशन एक रात को मेरी स्त्री बन चुकी है—तुम उन दोनों को क्यों मिलने दे रहे हो !”

“हमारी दुनिया में इस रिश्ते का कोई ख्याल नहीं रहता हज़ूर !
...गुस्ताखी न हो तो मैं अर्ज करूँ कि हम पैसे के गुनाम हैं, चाहे वह पैसा आपका हो या आपके बेटे का...तवायफ किसी एक की भिलकियत नहीं है हज़ूर !...”

“ठीक कहते हो तुम ! मगर मैं अपने बेटे को नष्ट होता हुआ नहीं देख सकता—मैं यह कभी सहन नहीं कर सकता कि मेरी आँखों के सामने ही मेरा बेटा बुरे रास्ते पर पैर रखे...” सेठजी ने कहा ।

“खुदा आपकी लाख बरस की उम्र रखे हजूर !....कोई भी बालिद अपने लड़के का राहेंबद पर जाना बरदाश्त नहीं कर सकता—मगर बालिद को अपनी बात भी सोचनी चाहिये हजूर ! अपने चाल-चलन पर भी गौर करना चाहिये...हजूर ! मेरी गुस्ताखी माफ करेंगे...”

अपने चरित्र पर कटाक्ष होते हुए देखकर सेठजी क्रोध से काँप उठे मगर बड़े ही प्रयत्न से उन्होंने अपना क्रोध रोका । वे जानते थे कि उनका क्रोध औरों के लिये भयानक हो सकता है मगर उस्ताद ताल खाँ के लिये नहीं ।

क्योंकि उस्ताद ताल खाँ उनके हृदय का निर्बलता जानता था, उनके चरित्र के कलंक का पता था उसे ।

मनुष्य ने सदा अपनी निर्बलता के समक्ष झुकना सीखा है । अपनी कमजोरी पकड़ लेनेवाले के सामने मानवी-नेत्र अपने आप झुक जाते हैं । यही हाल सेठ गंगादास का भी था ।

“तुम बिल्कुल ठीक कहते हो—” सेठजी बोले—“मगर यह तो सोचो कि जो पिता किसी के कारण चरित्र-भ्रष्ट हो चुका है तो क्या वह यही चाहेगा कि उसी के सामने उसकी सन्तान भी चरित्र भ्रष्ट होकर समाज का कलंक बने—”

“नहीं हजूर ! नहीं !”—ताल खाँ ने कहा—मगर हरएक बदफेल आदमी समाज की आँखों में नहीं खटकता हजूर ! अपने को ही लीजिये । आप सब कुछ कर चुकने पर भी, समाज में इज्जतदार आदमी समझे जाते हैं...”

“ठीक कहते हो ताल खाँ ! मगर याद रखो कि मैं जीते जी जय-राज को तुम्हारे हाथों में न पड़ने दूँगा । मैं जानता हूँ कि तुम्हारे तमाम

शरीर में जहर छिपा है—जिसे तुमने डँसा, वह फिर साँस भी न ले सका...”

“मैं कौन हूँ और कितना जहरीला हूँ, यह आप जैसे आदमी जरूर जानते होंगे, क्योंकि दिन को अच्छे-अच्छे कामों से ऊबकर, रात में तवायफों की खोज में मेरे पास आते हैं—और मैं रुपया लेकर उनके मन की कर देता हूँ...इसलिए जहरीला हूँ मैं हजूर !” ताल खाँ ने कहा ।

उस्ताद ताल खाँ की बातों में जो व्यंग्य भरा था, वह सेठजी का क्रोध उद्बोस करने के लिए पर्याप्त था, परन्तु सेठजी की शिथिलता, उनके क्रोध से तीव्रतर थी और इसीलिए वे अपने क्रोध को शमन करने का प्रयत्न कर रहे थे ।

“मैं चाहता हूँ कि हमारा-तुम्हारा समझौता हो जाय”—सेठजी बोले—“नहीं तो तुम मुझसे शत्रुता कर तुम फल-फूल न सकोगे । मेरे एक इशारे पर तुम्हारा विनाश हो जायगा और तुम चुपचाप देखा करोगे...”

“बजा फरमाते हैं हजूर !....ताल खाँ ने निर्भीक स्वर में उत्तर दिया—“हम जैसे गरीबों की रोजी पर कटार चलाना आप जैसे लोग खूब जानते हैं...”

“चुप रहो !...”

चिल्ला उठे सेठ गंगादास । क्रोध सहन शक्ति की सीमा का उल्लंघन करके उबल पड़ा ।

सेठजी का क्रोध देखकर उस्ताद ताल खाँ सन्नाटे में आ गया ।

“मुझे माफ करें हजूर !...बहुत गुस्ताखी हुई मुझसे...” उसने कहा —“हजूर जो हुक्म दें, वह मैं करने को तैयार हूँ...”

“देखो !...” सेठ जी बोले—“मैं तुम्हें पाँच सौ रुपया महीना दिया करूँगा...इसके बदले में मैं केवल यह चाहता हूँ कि तुम बयराज

का पीछा दोड़ दो । अपनी उस जहरीली-नागिन गुलशन को उससे दूर रखो...”

“अगर खुद जयराज बाबू हमारा पीछा न छोड़ें, तब ?...”

“तुम्हें ऐसा करना होगा कि वह तुम्हारा पीछा छोड़ दे...अगर ऐसा करने के लिए जयराज को अपमानित करने की जरूरत हो तो तुम प्रसन्नतापूर्वक कर सकते हो...किसी तरह भी ऐसा कर दो कि वह तुम्हारा पीछा छोड़ दे...”

“रूपया मिलने पर हम गर्दन तक तराश सकते हैं हजूर ! यह तो मामूली बात है”—उस्ताद ताल खाँ ने कहा ।

चुपचाप सेठ गंगादास ने उस्ताद ताल खाँ के हाथों पर दस-दस के पचास नोट गिन दिये । ताल खाँ ने उन्हें जेब में रखा और तब एक कदम पीछे हटकर एक लम्बा सलाम किया ।

“देखो !”—जाते हुए ताल खाँ को रोककर सेठजी ने कहा—
“यह काम जितनी जल्दी हो जाय, उतना ही अच्छा है । तुम हर महीने मेरी कोठी पर आकर पाँच सौ ले लिया करना । अगर कहो तो कोई इकरारनामा लिख दूँ ?....”

“हजूर की जबान किस इकरारनामों से कम है—आप बेफिक्र रहें—

सारा काम ऐसी आसानी से हो जायगा कि फरिश्तों को भी खबर न होने पायेगी...ताल खाँ की दाढ़ी धूप में सफेद नहीं हुई है हजूर !”

कहता हुआ ताल खाँ पुनः सलाम कर चला गया ।

सेठजी ने सटक मुँह में लगाकर दो एक कश खींचा, तत्पश्चात् उठकर दूसरे कमरे में चले गये ।

आज दो दिन से जयराज, सेठजी की कोठी पर बराबर आ रहा था और सारी ब्यापार की कायप्रणाली का निरीक्षण करता था । सेठजी को महान् सन्तोष था कि उन्होंने जयराज के रास्ते के एक भीषण काँटे को, गुलशन को, हमेशा के लिये दूर कर दिया और अब जयराज

गुलशन की ओर से निराश होकर और भी तत्परतापूर्वक सारा कार्य देखेगा ।

मगर होता है वही, जो मंजूर खुदा होता है ।



जयराम प्रतिदिन नौ बजे सोकर उठता था । यह उसका नित्य का नियम था । कदाचित् ही किसी दिन वह इससे पहले उठा हो । रात्रि में देर तक जागते रहने के कारण यह आवश्यक भी था कि अपनी निद्रा पूरी करने के लिये वह नौ बजे तक सोये ।

आज भी सवा नौ बज जाने पर उसकी निद्रा टूटी थी और चारपाई पर पड़ा हुआ बदन तोड़कर आलस्य दूर कर रहा था ।

इतने में ही हवेली के बाहर, सड़क पर से किसी डुगडुगी के लगातार बजने की आवाज आने लगी । ऐसा मालूम होता था कि बाहर कोई मदारी आया है, और बालकों को बन्दर का नाच दिखाकर कुछ पैसे कमाना चाहता है ।

डुगडुगी का बजाना, सो भी अपने हवेली के सामने, एकदम सुबह-सुबह, यह जयराम को बुरा तो अवश्य मालूम हुआ, मगर वह बाल्यवस्था से ही इस प्रकार के खेल-तमाशों का शौकीन था, अतः वह चारपाई पर उठ बैठा और हाथ बढ़ाकर पास की खिड़की का दरवाजा खोल दिया, ताकि चारपाई पर बैठे ही वह बाहर सड़क पर का दृश्य देख सके ।

जयराम दूसरी मंजिल के एक हवादार कमरे में सोया करता था । उसका कमरा सड़क के ठीक सामने था ।

खिड़की से जयराज ने नीचे सड़क की ओर देखा ।

एक मदारी था—नौजवान, मुन्दर फटे कपड़े पहने हुए । और एक रीछ था—बहुत बड़ा, बड़ा भयंकर, लम्बे बालों वाला । तथा बहुत से लड़के थे—प्रसन्न, हर्षोत्फुल्ल—मदारी को चारों ओर से घेरे हुए ।

मदारी के हाथ में एक डुगडुगी थी, जिसे वह लगातार बजा रहा था, ताकि उत्सुक बालक अधिक से अधिक संख्या में आ जाँय ।

“बेटा जम्बू !...” मदारी ने पुकारा ।

“.....” और रीछ इस प्रकार सजग होकर खड़ा हो गया कि उसकी होशियारी देखकर जयराज चकित हो उठा ।

मदारी ने फटे कुर्ते की जेब से घुँघरू के दो भुब्बे निकाल कर रीछ के पैरों में बाँध दिया, पुनः बोला—“बेटा जम्बू !.... बीच मजलिस में रंडी कैसे नाचती है—जरा बाबू लोगों को दिखा दे....”

और वह बड़ा-सा रीछ अपने पैरों पर खड़ा होकर भुम्भ-भुम्भ नाचने लगा और मदारी गाने लगा—“अद्दा-द्दा ! नाच भला तू नाच...भला तू नाच...अद्दा हा नाच मजे से नाच...छूम-छूम... छूम-छुनननन...”

थोड़ी देर तक रीछ नाचता रहा, तब मदारी ने उसके पैर से घुँघरू खोलकर पुनः जेब में डाल लिया और तब बोला—

“अरे ऐ जम्बू नाना !...”

और बालक खिलखिला कर हँस पड़े ।

मदारी कहता गया—“ऐ जम्बू नाना ! घर की दुलहिन कैम घूँघट निकालती है बेटा...हाँ, जरा धीरे से....”

रीछ ने अपने अगले पैरों को मुँह के ऊपर ले जाकर घूँघट की शकल बना ली ।

“ऐ बेटा !”—मदारी बोला—“हौली में जाकर बाबू लोग कैसे शराब पीते हैं...जरा दिखा दे चाल !”

रीछ ने अपने अगले दाहिने पैर को बोतल की शकल बना कर मुँह से लगा लिया । बालक हँस पड़े ।

“अरे ओ जम्मू काका ! शराब पीकर लोग नाली में कैसे लोटते हैं ?”

और रीछ जमीन पर गिरकर हथर से उधर भूमि पर लोटने लगा ।

“शाबाश बेटा जम्मू !...” मदारी ने रीछ के भयानक सर पर हाथ फेरा—“भला जम्मू ! यह तो बता बेटा कि गाँठ के पूरे और आँख के अन्धे बाबू लोग रण्डियों के पास जाकर क्या करते हैं ?...”

रीछ नीचे झुका और मदारी के पैरों पर नाक रगड़ने लगा । दिखा दिया उसने कि विलासी युवक वेश्याओं के पास जाकर उनके पैरों पर नाक रगड़ते हैं ।

सारी भीड़ हो-होकर हँस पड़ी ।

खिड़की पर से सारा तमाशा देखते हुए जयराम की मुखाकृति पर क्रोध की आभा लक्षित हो उठी ।

“बेटा जम्मू !...” मदारी ने पुनः रीछ को पुकारा—“गामा को जानता है न ?...”

“.....” रीछ ने सर हिलाकर अपनी स्वीकृति प्रकट की ।

“कौन है वह ?”

“रीछ ने ताल ठोंककर बताया कि वह पहलवान है ।

“तू भी गामा है न जम्मू ! लड़ेगा कुश्ती ?...” मदारी ने पूछा ।

रीछ ने सर हिलाया । स्वीकृति दी ।

“देख इतने आदमी हैं यहाँ पर”—मदारी बोला—“बोल, किससे कुश्ती लड़ेगा !....बिससे चाहे उसे चुन ले...”

भरभरा कर डर से लोग दूर हट गये । कुछ भयभीत होकर भाग खड़े हुए—कदाचित्त रीछ उन्हीं को न चुन ले—यही सोचा उन्होंने ।

मगर रीछ ने स्वयं मदारी को चुना ।

“बाह बेटा !” मदारी बोला—मुझी से लड़ना चाहता है....अच्छा आ ! तू भी अपना हौसला देख ले...”

मदारी ने अपना फटा कुर्ता निकाल कर स्थान पर रख दिया और धोती समेट कर बाँध ली। तत्पश्चात् रीछ के गले की रस्सी निकाल कर दूर रख दिया और ताल ठोका।

प्रबल वेग से दोनों प्रतिद्वन्दी आपस में भिड़ गये। खूब कुश्ती होने लगी। रीछ के शरीर में अपार बल था और मदारी के शरीर में गजब की फुर्ती थी और दाँव-पेंच भी वह खूब जानता था। कुश्ती जोड़ पर होने लगी।

एक ब एक रीछ ने मदारी को धक्का दिया। मदारी सम्हल न सका और जमीन पर जा रहा—मगर गिरा पट्ट ही। रीछ उसकी पीठ पर जा चढ़ा।

तब मदारी ने रीछ की एक बाँह अपने काँख में दबाकर कमरतेगा लादा और सट्ट से उठाकर फेंका। रीछ जमीन पर चित्त गिरा।

मदारी कुश्ती जीता और रीछ हारा।

रीछ के बड़े बड़े नाखून, मदारी के शरीर में लग गये थे और रक्त बह रहा था मगर मदारी को कुछ परवाह न थी। यह उसका नित्य का कार्य था।

मदारी ने रीछ के गले में रस्सी डालकर बाँधा और अपना कुर्ता पहना।

“ऐ बेटा जम्मु !...” मदारी ने पुकारा—“दुनिया में सबसे बड़ी चीज क्या है !...”

जम्मु ने अपना पेट ठोका।

“हमने कुश्ती क्यों लड़ी है !...”

जम्मु ने पुनः अपना पेट ठोककर बताया कि पेट के लिये।

“जो तमाशा देखकर, हमारा पेट न भरे वह क्या हो जाय !...”

रीछ ने, लँगड़ा बनकर दो-चार कदम चलकर, बताया कि लँगड़ा हो जाय।

“और क्या हो जाय !...” मदारी ने पूछा।

रीछ ने अपनी दोनों आँखें मूँदकर बताया कि अन्धा हो जाय ।

“शाबास बेटे !....आज तेरी किस्मत जगी है—मुझे भरपूर खाने को मिलेगा, सलाम कर बाबू लोगों को ।”

रीछ ने दाहिना हाथ उठाकर सलाम किया ।

“माँग बाबू लोगों से, अपने पेट के लिये...”

रीछ, अपने पेट पर हाथ रखे हुए, सब के सामने जाने लगा । किसी ने घेला दिया किसी ने पैसा, किसी ने चावल-दाल, किसी ने आटा ।

कई माताओं ने, अपने बालकों पर लगी हुई कुदृष्टि दूर करने के लिये, मदारी को दो-दो बाल लेकर उनकी करधनी से बाँध दिये ।

जयराज तमाशा देखने में इतना तल्लीन था कि उसे खबर नहीं हुई कि लखना कब से दरवाजे पर चाय की ट्रे लिये खड़ा है ।

पश्चिमी सभ्यता में रँगें हुए जयराज को, प्रातःकाल चारपाई पर से उठते ही, एक या दो प्याली चाय की आवश्यकता होती थी या एक पेग बियर की । इसके बाद मुँह में त्रुश डालकर वह पाखाने जाता था और गर्म पानी से नहाकर बालों में लोशन लगाता था, इसके बाद एक कप चाय और एक-दो आमलेट खाकर तब हवेली से बाहर निकलता था ।

नियमानुसार आज भी लखना चाय लेकर हाजिर था ।

जयराज की दृष्टि उधर पड़ी ।

“चाय नहीं बियर लाओ...” उसने कहा ।

लखना उल्टे पाँव लौट गया और शीशे के गिलास में टेनेन्ट्स बियर भर लाया ।

जयराज ने बियर का गिलास हाथ में ले ली और एक साँस में पी गया । लखना ने हाथ आगे बढ़ाकर खाली गिलास ले लिया ।

“लखना !...” पुकारा जयराज ने ।

“जी सरकार !...” जाता हुआ लखना वापस लौट आया ।

“सड़क पर जो मदारी तमाशा दिखा रहा था न....उसे नीचे बैठक में बुला ला....मैं अभी गुसल से आता हूँ...”

लखना चला गया। जयराम ने सिगरेट सुलगाई और गुसलखाने में जाकर अन्दर से किवाड़ बन्द कर लिये।

लगभग घण्टे भर बाद स्नान आदि से निवृत्त होकर वह बाहर निकला और बैठक में आया।

कोच पर बैठकर उसने लखना को पुकारा। लखना चाय की ट्रे लिये आ उपस्थित हुआ।

जयराम ने चाय का कप होंठों से लगा लिया और आमलेट का टुकड़ा तोड़कर मुँह में रक्खा।

“किसने बनाया है आमलेट !...” पूछा उसने।

“महाराज ने सरकार !...” उत्तर दिया लखना ने।

“अण्डे खराब हो गये थे क्या !”

“जी नहीं सरकार !....कल शाम के अण्डे हैं...मँगरू खटिक के यहाँ से मैं लाया था, दो आने जोड़े...”

“आमलेट ले जाओ—ठीक नहीं बना है...” जयराम ने कहा—
“हाँ ! वह मदारी कहाँ है !...”

“हवेली के बाहर खड़ा है सरकार !...” लखना बोला—“जाने को कह रहा था ! बड़ी मुश्किल से मैंने रोक रक्खा है....”

“उसे यहाँ बुलाओ...” जयराम ने आज्ञा दी।

दो मिनट बाद, अपनी गरीबी में अपना बदन छिपाये मदारी आया। जयराम को दोनों हाथ उठाकर सलाम किया।

“तुम मदारी हो !...” पूछा जयराम ने।

“जी नहीं कंजर हूँ मैं...मदारी का काम करता हूँ सरकार !”

“तुम्हारा नाम !...”

“हम गरीबों का क्या नाम सरकार...जो ही पुकार लीजिये....”

वह पंचम था। मगर एक बड़े आदमी के सामने उसने अपना नाम न बताया। सोचा, धनवानों को गरीबों के नाम की इतनी चिन्ता क्यों !...

“तुम्हारा रीछ कहाँ है ?”

“बाहर बाँध दिया है सरकार !...सोचा, हबेली में लेकर आना ठीक नहीं ! हज़ूर तमाशा देखना चाहते हैं क्या !...”

“नहीं ! मैं तुम्हारा तमाशा ऊपर की खिड़की से देख चुका हूँ—” जयराज ने कहा—“तुम्हारा रीछ बहुत जानकार है...”

“हाँ सरकार ! उसी की कमाई पर तो हम चार आदमियों का गुजर होता है”—

“कौन-कौन है तुम्हारे परिवार में ?—”

“मैं, मेरे माँ, छोटी बहन और यही जम्भू !....” पंचम बोला—“जम्भू छुटपन से ही मेरे पास है सरकार !...”

“तभी तुमसे बहुत हिल-मिल गया है”—जयराज ने कहा ।

वास्तव में जयराज उस रीछ की चतुरता देखकर अत्यन्त प्रभावित हुआ था और उसमें भी अधिक प्रभावित हुआ था पंचम की गरीबी देखकर ।

जयराज का मस्तिक कभी एक-सा नहीं रहता था ।

कभी उसका हृदय गरीबों के प्रति विद्वेष भावना से भर उठता था । क्या अधिकार इन कुशतनधारी गरीबों को कि वे पृथ्वी पर भार बनकर जीवित रहें ? अपना कर्ण से लोगों के हृदय में घृणा उत्पन्न करें ? अपने गन्दे हाथ लोगों के सामने फैलाकर सहायता की भीख माँगे ।

मगर कभी-कभी उसके हृदय की वही विद्वेष-भावना, गरीबों के प्रति असीम सहानुभूति में परिवर्तित हो जाती थी । सोचता वह—गरीबी भी अभिशाप है । कितना विषम-जीवन होता है धनहीनों का ?

जैसे धन ही संसार में सब कुछ है । जैसे गरीबों का कोई अस्तित्व ही नहीं और धनवान ही संसार के कर्णधार हैं ।

थोड़ी देर चुप रह कर जयराज ने अपनी जेब में हाथ डाला पाँच-पाँच के दो नोट पंचम के आगे पेंक दिया ।

“तुम्हारी और तुम्हारे रीछ की कुश्ती देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ । तुम खूब लड़ते हो...मगर घर जाकर जरा अपने बदन के खरोंच पर पट्टी बाँध लेना । रीछ के नाखून जहरीले होते हैं...” जयराज बोला ।

“रीछ के तो सिर्फ नाखून ही जहरीले होते हैं सरकार ! मगर आदमी का रग-रग जहरीला होता है...मैं भी आदमी हूँ....” पंचम ने कहा ।

“.....” जयराज हँस पड़ा, एक गम्भीर हँसी ।

“मैं सच कहता हूँ हजूर !”—पंचम बोला—“आदमी से जहरीला और कोई जानवर नहीं होता...और इसके पहले भी कई बार पैसे की लालच से मैं जम्मु से लड़ चुका हूँ । हर बार ऐसी बहुत-सी खरोंचें लग जाती हैं...कहाँ तक खयाल करूँ...”

जयराज यह नहीं जानता था कि पंचम ही उस सौन्दर्य-प्रतिमा लवंग का भाई है, जिसने उसे थोड़ी देर के लिये आत्मविस्मृत-सा कर दिया था ।

और न तो पंचम ही जानता था कि उसकी प्रिय बहन को धोती प्रदान करनेवाला यही जयराज है !

“देखो मदारी !....” जयराज बोला—“यों तो मैं गरीबों से कोई सहानुभूति नहीं रखता—मगर तुम्हारी दशा देखकर मैं सोच रहा था अपने इस अपवित्र-जीवन में थोड़ा-सा पुण्य भी संचय कर लूँ...”

“गरीब का भला करना आप जैसे धनवानों का ही काम है सरकार !...” पंचम ने कहा—“जब आप ही न मदद करेंगे तो हम खायेंगे क्या !...”

“सो, अब जब कभी तुम पर कोई तकलीफ पड़े या तुम्हें रुपयों की आवश्यकता हो, तुम मेरे पास आ जाया करो...बेखटक !....”

“जरूर आऊँगा हजूर ! आप जैसा मददगार ईश्वर करे सबको मिले...”

“अब तुम जा सकते हो....” जयराज ने कहा ।

और पंचम सलाम कर चला गया ।

कोच पर से उठकर जयराम ने रेशमी सूट पहना । लखना आकर पाँव में जूते पहना गया ।

“शोफर से कह दो कि कार तैयार कर दे !”—जयराम ने लखना को आज्ञा दी ।

और पूर्णरूप में तैयार होकर जब जयराम बाहर आया तो उसकी छोटी-सी कार लिये हुए शोफर सड़क पर खड़ा था ।

जयराम को देखकर शोफर ने दरवाजा खोल दिया । जयराम अन्दर जा बैठा और कार अविराम गति से आगे दौड़ चली ।



नागिन जैसी लट्टें पीठ पर लहरा उठीं, जैसे सावन-भादों की घटा घिर आई हो ! हाथों ने कंधी उठा ली और निर्जीव कंधी किसी के कोमल हाथों की गति पाकर, काले केशों पर दौड़ चली ।

आइने के सामने खड़ी होकर बालों पर कंधी फेरती हुई गुलशन वास्तव में ऐसी लग रही थी, जैसे बेले का फूल ! गोरा चमड़ा आईने के शरीर पर और भी गोरा लग रहा था ।

गुलशन अभी स्नान करके आ रही थी । बदन पर केवल एक महीन साड़ी थी । गजब की थी साड़ी वह कि कंधे पर से खिसक कर जमीन चूम रही थी और उठे हुए हाथों के मध्य से नग्न वक्षस्थलों की आभा दृष्टिगोचर हो रही थी । मगर उसके बाल कितने होशियार थे कि आगे लटक कर उन्होंने उन वक्षस्थलों की नग्नता पर अपना आवरण डाल रखा था ।

बालों में कंधी कर गुलशन ने साड़ी खोलकर रख दी और पैरों में रेशमी सलवार तथा बदन पर एक मखमली कुर्ता पहन लिया और सर पर एक कामदार दुपट्टा रख लिया ।

इसके बाद गोरे कपालों पर पाउडर-पफ फेर कर, उन्हें चाँद की तरह चमकाया, होठों पर लिपस्टिक लगाकर उनकी लालिमा में जादू उत्पन्न किया, और तब आईने में जरा-सा मुस्कराते हुए देखकर, अपने आकर्षण पर दृष्टि डाला ।

तब उसे सन्तोष हुआ, जब उसने देख लिया कि वह इतनी आकर्षक हो गई है कि आवारे रईसों के घटाछन्न हृदय में बिजली बनकर कौंध जाय ।

“ओहो ! आज तो सलवार और कुर्ती के नसीब जागे हैं...” दरवाजे पर से आवाज आई ।

गुलशन ने घूमकर देखा—तो उस्ताद ताल खाँ खड़ा था दरवाजे पर मुस्कराता हुआ, पान की लाली से अपने होठ रंगे ।

“तुम्हारी आँख में फफोले न पड़े उस्ताद !...ऐसा कहते हो कि मुझे नजर लगे बिना न रहे...” गुलशन ने रुठते-से स्वर में कहा ।

“ऋरे, वाह !”—ताल खाँ हँसा—“कितने दिलों में तार बनकर उतर जानेवाली सूरत पर भी भला किसी की नजर लग सकती है !...”

“तुम्हारी नजर बड़ी तेज है उस्ताद !...”

“जरूर नजर तेज है !”—ताल खाँ बोला—“तभी तो तुम्हें एक बच्ची की शकल में सड़क पर पड़ा हुआ देखकर, मैं समझ गया था कि यह तूफान है, जो इस दुनियाँ में लड़की की शकल पकड़ कर आया है—कयामत है, जो आशिकों के दिलों को बरबाद करने आई...”

“चलो...तुम बड़े वैसे हो उस्ताद !....जैसे तमीज ही नहीं तुम्हें...” गुलशन ने मधुर झिड़की दी—“यह तो बताओ, तुम आ कहाँ से रहे हो !...”

“अज्ञाह करे, इन बिगड़े दिमाग रईसों की तन्दुस्ती हजार बरस तक कायम रहे और इनकी आँख ताकायामत इसी तरह अन्धी रहें...”

“बात क्या है उस्ताद !...अमीरों के लिये दुआ और बद्दुआ दोनों क्यों दे रहे हो !...” गुलशन ने पूछा ।

“इस वक्त मैं सेठ गंगादास के पास से आ रहा हूँ...”

“कौन सेठ गंगादास !...” पूछा गुलशन ने ।

“बड़ी बेवफा होती हो तुम लोग—” हँसकर बोला उस्ताद—
“अरे, सेठ गंगादास का नाम इतनी जल्दी तुम्हारे दिमाग से उतर गया ! शाबास ! हो तुम पूरी तवायफ !...”

“अरे, बताओ भी, कौन हैं सेठ गंगादास !...”

“वही, जिनके साथ पहली रात की रस्म तुमने अदा की थी—” ताल खाँ ने कहा—“वही, जिसने दो घण्टे की मौज के लिये दो हजार रुपया मिट्टी के टुकड़ों की तरह निकाल कर फेंक दिया था...”

“वह...” गुलशन के मुख पर लज्जा की झलकी छाया दौड़ गई—
“वही हैं...”

“हाँ !...” ताल खाँ बोला—“वही हैं !...और तुम ऐसी हो कि बिचारे का नाम तक भूल गई...”

“मैंने उनका नाम पूछा ही कब था !—” गुलशन ने कहा—
“और तुमने ही उनका नाम मुझे कब बताया था उस्ताद !...”

“मेरे बताने की क्या जरूरत थी !...तुम्हारी उनकी पोशीदा गुफ्तगू हो रही थी, उसमें उनका नाम पूछ लिया होता....”

“खैर ! गलती हो गई...मगर सिवा एक दफा के फिर वे कभी आये नहीं उस्ताद !...क्यों नहीं आये !...”

“पक्के खिलाड़ी, एक फूल को बार-बार नहीं सूँघते और न लथेड़ा हुआ फूल छूते हैं...सेठ गंगादास ही तो जयराज के वालिद हैं !... उन्होंने मुझे अपने नौकर से बुलवाया था !”

“क्यों !...” गुलशन को आश्चर्य हुआ ।

“सेठजी जयराज का यहाँ आना पसन्द नहीं करते—कोई भी वालिद अपने बेटे की बरबादी नहीं देख सकता...”

“यह तो ठीक ही है—मगर मैं जयराज को फँसाये रखना चाहती हूँ।”

“सेठजी ने मुझसे पाँच सौ रुपया हर महीने देने को कहा है”—
ताल खाँ ने कहा।

“किसलिये !....”

“इसलिये कि मैं जयराज को यहाँ आने न दूँ...”

“और अगर वह आये तो !...”

“तो उसे बेइज्जत करके निकाल दूँ...”

“सब बन्दिशें तो हो चुकीं”—गुलशन ने कहा—“मगर जयराज से मेरा बदला लेना तो रह ही जायगा...”

“जयराज को बेइज्जत करके निकाल देने से तुम्हारा बदला भी पूरा हो जायगा...” उस्ताद ताल खाँ ने कहा—“ऐसा ही करो आज जब वह आये तो उसकी खूब बेइज्जत करो...”

“उसने मेरे साथ जैसा बर्ताव किया है, उसकी सजा सिर्फ तौहीन नहीं हो सकती उस्ताद !...” गुलशन आवेश में बोली—“मैं उसकी दुनियाँ एकदम से मटियामेट कर देना चाहती हूँ...उसका जर लूटकर उसे दर-दर का भिखारी बना देना चाहती हूँ...”

“उसके बाप के पास इतनी दौलत है कि तुम बूढ़ी हो जाओगी मगर लूट न सकोगी....”

“कुछ भी हो मगर मैं उसे अपने हाथ से जाने न दूँगी, तब तक जब तक कि उसे दाने-दाने के लिये सिसकता न देख दूँ...” गुलशन ने कहा—“एक काम करो तुम उस्ताद ! हम जयराज को भी मिलाये रहेंगे और सेठ गंगादास को भी...”

“मगर वह किस तरह !...”

“जयराज हमारे पास इसी तरह आता रहेगा और सेठ गंगादास

यह जानते रहेंगे कि हमने जयराज को अपने यहाँ आने से मना कर दिया है ...”

“मगर सेठजी बड़े काइयों हैं...अगर उन्हें कहीं पता लग गया तो !...” उस्ताद ने कहा—“मगर पता लग जाने पर वे कर ही क्या लेंगे ?...ये रईस अपनी इज्जत को बहुत डरते हैं। सेठ गंगादास की सारी इज्जत इस वक्त मेरे हाथों में है...”

उस्ताद के मुख पर क्रूरता की छाया झलक उठी।

“क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ...” तभी दरवाजे पर से आवाज आई।

उस्ताद ताल खाँ और गुलशन चौंक पड़े, जैसे पैरों तले सँप पड़ गया हो। दरवाजे पर जयराज खड़ा था। उसकी आकृति गम्भीर थी—आँखों में एक प्रकार की लालिमा थी, जो क्रोधजनित मालूम पड़ती थी।

उस्ताद और गुलशन को यह विश्वास था कि जयराज ने उनकी बातें छिपकर अवश्य सुनी हैं और तभी उसके मुख पर इतना गम्भीरता है।

“आइये इजूर !...आइये !....” उस्ताद ने अपनी भंगिमा ठीक करके कहा—“जइ नसीब जो आप आये...”

जयराज स्थिर गति से आगे बढ़ गया। उसने अपने प्रज्वलित नेत्र गुलशन की आँखों में डाल दिये। गुलशन ने सिहर कर अपना सर नीचा कर दिया।

“बैठिये मेरे सरकार !...” किसी तरह उसके होठों से अस्त-व्यस्त शब्द निकले।

जयराज चारपाई पर बैठ गया। उसके मुख पर की उद्दीप्त भंगिमा धीरे-धीरे छुप्त होने लगी।

उस्ताद ताल खाँ कमरे से बाहर हो गया।

गुलशन ने शीशे के प्याले में ब्लैक-एण्ड-हाइट का एक पेग भर-कर जयराज के आगे कर दिया। जयराज ने हाथ बढ़ाकर थाम लिया

और पी गया। मदिरा की तीव्रता ने हृदय की शुष्कता पर सरस वर्षा कर दी।

“बड़ी अच्छी लग रही है यह सलवार तुम्हें !...” बोला जयराज।

“आपकी इनायत है...” गुलशन ने कहा—“नज़रें आप की पारस हैं मेरे हज़ूर ! जो लोहे को भी सोना बना देती हैं...”

गुलशन को जयराज के ढंग से यह विश्वास हो गया कि उसकी और उस्ताद ताल ख़ाँ की बातें जयराज के कानों में नहीं पड़ सकी हैं, अन्यथा इस तरह सीधी-सर्दी बातें करने के पहले वह क्रोध से आग हो जाता।

“आज तो तुम्हारा सौन्दर्य बड़ा अनोखा दिखाई पड़ रहा है गुलशन !...”

“मेरे राजा को रश्क हो रहा है क्या !...”

“हाँ ! जी चाहता है कि तुम्हारे गालों पर पाउडर-सा लगा रहता या तुम्हारे होठों पर लिपस्टिक बनकर घिस जाता या तुम्हारे सीने पर चोली बनकर चिपका रहता—” जयराज बोला।

“चलिये !...आप बड़े वैसे हैं....”

“पिताजी की कोठी पर जा रहा था....सोचा, तुमसे मिल लूँ... इसलिये कार रोककर तुमसे मिलने चला आया....” जयराज ने कहा।

“कनीज पर आपने बड़ी मिहरबानी की”—गुलशन बोली—
“एक बात कहने को जी चाहता है मेरा...”

“कहो !...”

“चलिये—! आज बजड़े पर घूमने चला जाय...आस्मान पर बदली है...मौसम बड़ा दिलकश है...”

“चलो—मुझे कोई एतराज नहीं...” जयराज ने कहा—“कार बाहर खड़ी है...”

दोनों आकर कार में बैठ गये और कार नदी-तट की ओर रवाना हुई।

नदी तट पर पहुँचकर दोनों कार से उतर पड़े। जयराज का छोटा-सा बजड़ा नदी की धारा में पड़ा था। माँझी ने जयराज को देखकर सलाम किया।

जयराज और गुलशन उस पर आ बैठे। मन्थर गति से नौका आगे बढ़ी।

“जी चाहता है—” गुलशन बोली—“कि बीच दरिया में यह बजड़ा डूब जाय और मैं इसी तरह आपके आगोश में सर रखवे मुझे-अदम की रवाना हो जाऊँ...”

जयराज के मुख पर घृणा का भाव आ गया परन्तु उसने प्रयत्न करके अपने मुख पर का वह भाव छिपाया।

“ऐसा न कहो मेरी तितली!—तुम दुनियाँ के लिये चमकता चाँद हो तुम्हारे न रहने से हम प्रेमियों की दुनियाँ अँधेरी हो जायगी।”

नौका धीरे-धीरे चली जा रही थी। गुलशन और जयराज के अंग-प्रत्यंग एक हो रहे थे।



(दुनिया नीरस थी, उसमें सरसरा लाने के लिये स्त्री पैदा की गई। स्त्री में आकर्षण था, उसे सौन्दर्य प्रदान किया गया!—सौन्दर्य नग्न था, अतः स्त्री को लज्जा दी गई। लज्जा शुष्क थी अतः स्त्री में, अदम भरी गई और उस अदम को सहन करने वाला, उसका भार उठाने वाला कोई न था, इसलिये पुरुष की सृष्टि हुई।

स्त्री का मूल्यांकन करने वाला पुरुष ही है और पुरुष को पथ भ्रष्ट करने वाला है स्त्री का अनुपम सौन्दर्य।)

अनादि काल से आज तक संसार में कितने परिवर्तन, कितनी क्रान्तियाँ हुई हैं, अधिकांश में स्त्री के मादक सौन्दर्य का ही हाथ रहा है।

लवंग असीम सौन्दर्य लेकर इस संसार में आई थी—परन्तु उसके प्राकृतिक सौन्दर्य को बाह्य उपकरणों का सहारा पाकर उभरने का अथवा तीव्र मादक होने का अवसर न मिला था। उसकी सुन्दरता, उसकी निर्धनता की सहेली बनकर, अपना अस्तित्व भूल गई थी। कीचड़ में छिपे हीरे की ज्योति पर समय के चक्र ने धुँधलापन डाल रखा था।

आज एक साधारण-से उपादान का सहारा पाकर उसके सौन्दर्य ने अपनी वास्तविक आभा भलकाई। उसका शरीर गुलाब के फूल-सा खिल उठा।

जयराज की दी हुई धोती पहन कर, अपने तमाशे का बक्स सिर पर रक्खे, जिस समय लवंग शहर में आई, उस समय स्वयं उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे शहर आज जगमगा रहा हो, जैसे शहर के कण-कण में उसके सौन्दर्य की ज्योति नाच रही हो।

लवंग का हृदय आज तक सरल बाल-क्रीड़ाओं द्वारा ओत-प्रोत था परन्तु अब उसमें एक मादक भावना जागरूक हो उठी थी। अपने जीवन में वह बहुत-से पुरुषों के सम्पर्क में आई थी मगर कभी उसका हृदय इतनी मधुर कल्पनाओं का क्रीड़ा-क्षेत्र न बना था। कभी उसने यह खयाल भी न किया था कि उसका सरल हृदय एक दिन एक अव्यक्त पीड़ा से भर जायगा और उसके नयनों की नींद, उसके बदन की चञ्चलता, उसके मन की सुख-शान्ति छिन जायगी।

उसके जीवन में एक भयङ्कर आँधी आई और उस आँधी के प्रबल वेग में, सूखेपत्ते-सा उड़ता हुआ जयराज, उसके सामने आ पड़ा।

सूखेपत्ते-सा जयराज !—

जिसने कभी पवित्र प्रेमरस की एक बूँद न चखी, जिसने कभी किसी मित्र के मुख से सान्त्वनामयी वाणी न सुनी, जिसने कभी शराब की बोतलों के अतिरिक्त शहद का आस्वादन न किया—

जो सूखेपत्ते-सा संसार रूपी वृक्ष से टूटकर, बिना सहारे इधर-उधर भटक रहा था, जिसका सारा बदन पीला पड़ गया था—ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कुछ ही दिनों में उसकी जीवन-शक्ति क्षीण होते-होते मृत्यु की भयानक गोद में विलुप्त हो जायगी।

वही जयराम !

लवंग के सरल हृदय में उस सूखेपत्ते को देखकर असीम करुणा उत्पन्न हो गई और उसने बड़े मनोयोगपूर्वक उस तुच्छ पत्ते को उठाकर सीने से दबा लिया। हृदय, सिंहासन पर बिठा लिया।

मगर क्या तुच्छ पत्ते को इसका पता था !

नहीं ! उस पत्ते ने आँधी के भयानक वेग का सहारा पाया था और उसी के सहारे वह सबके ऊपर उड़ता हुआ चला आया था ! उसे ज्ञान भी न था कि वह तुच्छ है, वह पेड़ से टूट चुका है, अपने पवित्र कर्तव्य से च्युत हो गया है। वह तो डूब-उतरा रहा था क्योंकि आँधी के प्रबल वेग का सहारा मिल गया था—

तो फिर उसे लवंग के स्निग्ध शीतल-सौजन्य का आभास कैसे मिलता !

लवंग के हृदय की धुकधुकी के साथ वह तुच्छ पत्ता थोड़ी देर तक सिमटा रहा मगर पुनः आँधी का वेग पाकर उठ चला.... और ऊपर, एकदम ऊपर !

यही हाल था जयराम का।

लवंग ने तमाशा का बक्स जयराम की हवेली के सामने, सड़क पर उतारा। घंटी की आवाज सुनकर कुछ बच्चे दौड़ पड़े। लवंग उन्हें तमाशा दिखाने लगी मगर रहकर उसकी दृष्टि सामने की हवेली की ओर उठ जाती थी। उसे ऐसा लगता था, जैसे कोई छिपे-छिपे उसकी ओर देख रहा है।

एक घण्टे तक तमाशा दिखाने पर लवंग को तीन आने मिल सके। इसके बाद लड़कों का आना बन्द हो गया परन्तु लवंग उसी स्थान

पर खड़ी रही। उसे विश्वास था कि उसकी घण्टी की आवाज सुनकर उसके बाबू उसे जरूर बुला भेजेंगे—अथवा यदि किसी आवश्यक कार्य से कहीं गये होंगे तो उनकी मोटर अब आती ही होगी।

बहुत देर तक लवंग उस स्थान पर चुपचाप, एकाकी खड़ी रही। सोचने लगी वह कहीं मुझे भूल तो नहीं गये ?

अवश्य भूल गये होंगे। वे धनवान हैं, शराबी हैं—उन्हें लवंग जैसी सैकड़ों मिल सकती हैं परन्तु लवंग को 'उन' जैसा शायद ही मिल सके।

लखना, हवेली के दरवाजे से बाहर निकला। सामने की पटरी पर चुपचाप खड़ी हुई लवंग पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह सड़क पार करके उसके पास आया।

“क्यों चुपचाप खड़ी हो ?—” पूछा लखना ने।

“सरकार ही नहीं हैं क्या ?...” लवंग ने उसकी बातों का कुछ उत्तर न दिया और एक दूसरा ही प्रश्न पूछ बैठे।

“सरकार रोज-रोज एक ही तमाशा नहीं देखते—” हँसकर बोला लखना—“उन्हें हर दिन नया तमाशा और नई तमाशेवाली चाहिये....”

“.....”

लवंग का बदन एक बार सिहर कर काँप उठा।

“उनकी आशा छोड़ो जाकर कहीं दूसरी जगह तमाशा दिखाओ.... वे गये होंगे गुनशन बाई के घर....” कहकर लखना अपने रास्ते चला गया।

लवंग के पाँव थिथिल होते जा रहे थे। उसके शरीर से प्राण जैसे अलग हो गया था। अवयव शून्य पड़ते जा रहे थे।

“उन्हें हर रोज नया तमाशा और नई तमाशेवाली चाहिये....”—

ये शब्द जैसे क्रूर अट्टहास बनकर उसके कानों में प्रतिध्वनित हो रहे थे। अगर वह सर पकड़ कर सड़क पर बैठ न जाती तो कदाचित

उसके काँपते हुए पैर उसके शरीर का बोझ न सम्हाल सकते और उसे जमीन पर गिरा देते ।

गुलशन के नाम ने उसे और भी व्यथित कर दिया । कौन हो सकती है यह गुलशन ? क्या वही वेश्या तो नहीं, जिसके साथ उसने जयराज को उस चाँदनी रात में देखा था, जब कि वे दोनों आत्मविभोर होकर नदी के वल्लस्थल पर नाव द्वारा सैर कर रहे थे ।

तो क्या जिस अंकुर को उसने अपनी मधुर-भावनाओं का जल पिला-पिलाकर उसे अपनी हृदय-भूमि में अंकुरित होने दिया था, वह अब निराशारूपी वायु के उष्ण झरोकों से यों ही कुम्हलाकर सूख जायगा ।

लवंग के होंठ सूख चले । आँखों में आसुओं की गंगा-जमुना उमड़ आई । उसने तमाशे का बक्स धीरे-से सर पर रक्खा और वहाँ से चल दी ।

इस समय सारा शहर जैसे झुलस रहा था—लवंग को ऐसा प्रतीत हुआ । वह अपने गाँव की पगडंडी पकड़ कर गाँव की ओर चला पड़ी ।

रास्ते में गाँव की ओर से आता हुआ धन्ना मिला । धन्ना ने लवंग को धूर कर ऊपर से नीचे तक देखा । लवंग ने सर नीचा कर लिया ।

“शहर से आ रही है क्या लवंगिया ?”—पूछा धन्ना ने

“मुँह में कीड़े पड़ गये हैं क्या रे ?”—बिगड़ कर बोली लवंग—
“सीधे नहीं पुकारा जाता....लवंगिया जैसे इनके बाप की लौंडी है....”

“अरे वाह रे...” धन्ना ने जबान ऐँठकर कहा—“अब चिंटी को भी पर निकल रहे हैं....”

लवंग कुछ न बोलकर आगे बढ़ गई । धन्ना शहर की ओर चला गया ।

गाँव के किनारे ही नदी पड़ती थी । लवंग इसी नदी के किनारे आकर एक पत्थर पर चुपचाप बैठ गई । तमाशे का बक्स जमीन पर रख दिया ।

उस समय घाट सूना था। कोई न था वहाँ। केवल हथेली की ठेंकन देकर अपना सर लटकाए बैठी थी लवंग।

टप-टप कई बूँद अश्रुकण लवंग के नेत्रों से निकलकर नदी के वक्ष-स्थल पर गिर पड़े, जिन्हें नदी की लहरों ने अपनी जिह्वा फैलाकर रोप लिया। एक क्षण में ही उन लोल लहरों ने, लवंग के हृदय की वेदना के प्रतिरूप उन अश्रुकणों को अपने अन्तराल में समेट लिया।

छप-छप डाँड़ चलने का शब्द हुआ और लवंग ने चौंककर नदी की ओर देखा। एक बजरा किनारे की ओर चला आ रहा था। धीरे-धीरे, मन्थर गति से।

लवंग के नेत्रों ने उस सुन्दर नाव पर दो आकृतियाँ देखीं—एक पुरुष, दूसरी स्त्री ! उसने आँखें मीजकर पुनः देखा—

एक जयराम था !

दूसरी थी गुलशन !!



दूर से शराबी-सा दीखनेवाला वह आवारा रईस जयराम वास्तव में अथाह सागर-सा गम्भीर था। उसकी गम्भीरता के ही कारण गुलशन और उस्ताद ताल खों को यह पता न लग सका कि उसने छिपकर उनकी बातें सुनी हैं।

यद्यपि जयराम सब कुछ, प्रत्येक शब्द, दरवाजे के पास खड़ा होकर सुन चुका था, क्योंकि वह जानता था कि ये दोनों जहरीले नाग हैं। सारी इज्जत इनके हाथों में है। अतः इनको इस प्रकार कुचलना चाहिये कि साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे।

इसीलिये अनिच्छा रहते हुए भी जयराम उस दिन गुलशन के

साथ बजरे पर सैर करने चला गया था। वास्तव में उसे एक आवश्यक कार्य था और उस कार्य के सम्बन्ध में अपने पिता सेठ गंगादास से उसका मिलना अनिवार्य था—फिर भी वह वहाँ न गया और गुलशन को लेकर नदी के वल्ह पर आमोद-प्रमोद करने चल पड़ा।

नाव पर गुलशन और जयराज ने क्या-क्या बातें कहीं, क्या-क्या रंगरेलियाँ हुईं, यह अनजाने की बात है।

हाँ ! एक जगह नदी के किनारे एक गाँव बसा हुआ देखकर गुलशन ने किनारे उतरने की इच्छा प्रकट की क्योंकि अब वे शहर से कई मील दूर आ चुके थे।

नाव किनारे लगाई गई। जयराज ने गुलशन को सहारा देकर नाव से नीचे उतारा।

सब कुछ देख रही थी लवंग, पत्थर की चट्टान पर बैठी हुई।

देख रही थी कि जिस सूखेपत्ते पर सहानुभूति प्रदर्शित कर, उसने उसे अपने हृदय-आसन पर बैठा लिया था, वही अब पुनः उसके हाथों से छूटकर आँधी के पास जा पहुँचा था और उसके साथ उड़ता हुआ अपने को दुनिया से बहुत ऊपर समझ रहा था।

यह जो गुलशन है—वह आँधी है। आँधी के प्रबल वेग की तरह उसके पास यौवन का उन्मादकारी आकर्षण है और सूखेपत्ते-सा जयराज अपना अस्तित्व भूलकर विभोग हो रहा है।

जयराज की दृष्टि लवंग पर पड़ी। वह चौंक उठा।

“तुम...तुम....”

उसने इस प्रकार मस्तक पर उँगली रखकर सोचने का नाट्य किया जैसे उसे लवंग का नाम भूल गया है।

“लवंग नाम है न तुम्हारा !—” पूछता हुआ वह लवंग की ओर बढ़ा।

“जी सरकार !...” लवंग उठकर खड़ी हो गयी। उसके अन्ध-कारपूर्ण हृदय में आलोक की एक रेखा प्रकाशित हो उठी, जयराज

को अपना नाम लेते सुनकर । क्या यह उसके लिये कम सौभाग्य की बात थी कि उसके बाबू उसका नाम भूले नहीं थे ।

“वही घोती है न !...बड़ी अच्छी लग रही है !”—जयराम बोला ।
“.....”

और लवंग जैसे शर्म से गड़-सी गई । उसे अपने सौन्दर्य पर डाह होने लगा । उसके हृदय की समस्त ग्लानि जयराम के दा सरल वाक्यों से दूर भाग गई ।

“तुमसे मैंने कुछ कहा था, न, याद है या नहीं ?”—जयराम ने पूछा ।

“क्या कहा था सरकार ने !...मैं तो भूल ही गई...” कहते-कहते लवंग के अरुण अधरों पर अनायास ही एक हृदयवेधी मुस्कान दौड़ गई ।

“मैंने तुमसे कहा था न कि रोज प्रातःकाल आ जाया करो”—जयराम बोला—“मैं तमाशा देखा करूँगा...”

“मगर सरकार वहाँ हों तब तो...” लवंग ने कहा—“नहीं तो क्या खाली हवेली तमाशा देखेगी ।”

“ओह...” मुस्कराकर जयराम ने देखा लवंग की ओर—“मैं जल्दी चला आया था । अच्छा, कल से जरूर आना—मैं रहूँगा...”

“बहुत अच्छा !....”

एक क्षण के लिये लवंग के नेत्र, जयराम के पिपासित नेत्रों से जा मिले । दोनों के बदन में सिहरन भर उठी । जयराम ने उन आँखों में प्राकृतिक-सौंदर्य देखा—अपार सुख-शान्ति देखी ।

उसने एक नजर में ही उन आँखों का शरबत पी जाना चाहा—मगर इस प्रकार पीने से कहीं सौन्दर्य घटता है !

“तमाशे का बक्स इधर लाओ—मुझे तमाशा दिखाओ...” जयराम ने कहा । लवंग के स्निग्ध आकर्षण से वह आज विशेष प्रभावित हुआ था ।

लवंग तमाशे का बक्स उठा लाई । जयराम ने शीशे से आँख सटा दी । चलचित्र की भाँति चित्र सरकने लगे और उन चित्रों की म्याख्या करता हुआ लवंग का कोकिल-स्वर मधुर-गति से कूक चला ।

थोड़ी देर तक क्रम चलता रहा । लवंग कह रही थी—“ताज बीबी का रौजा देख....देख रे बाबू देख !”

“वाह !...” जयराम ने बीच में रोककर कहा—मगर आँखें शीशे पर से न हटाया—“यहाँ तो नंगी तमोलिन दिखाई पड़ रही है और तुम कहती हो कि ताज बीबी का रौजा देख...खूब...”

लवंग को जैसे अपनी गलती पर विश्वास ही न हुआ । उसने बक्स की एक दरार से अन्दर की ओर देखने के लिए अपना सर झुकाया । ऐसा करने में उसका सर जयराम के सर से लग गया और रक्ताक्त कपोल जयराम के कपोल से एक क्षण के लिए घिस गये ।

लवंग को वह स्पर्श बड़ा मादक लगा । उसने अपना सर न हटाया, केवल कपोल जरा-सा सरका कर भीतर की ओर भाँका । भीतर ताज बीबी का रौजा था । जयराम ने झूठ कहा था ।

“बड़े झूठे हो सरकार !...” धीरे से फुसफुसा कर कहा लवंग ने ।

“तुम बड़ी भोली हो लवंग !...” जयराम के होठों से एक मादक ध्वनि निकली—“अपनी आँखों की तलवार को ध्यान में ही रखा करो रानी !...”

रानी !

कितना मादक शब्द है यह, जैसे लवंग की चोली में हाथ डालकर किसी ने गुदगुदा दिया हो ।

जयराम ने लवंग का हाथ अपने हाथ में लेकर धीरे से दबा दिया । आत्म-विस्मृत लवंग को जैसे होश हुआ ।

तमाशा देखकर जयराम ने दो रुपये लवंग के हाथों पर रख दिये । लवंग नहीं लेती थी, तो स्वयं आगे बढ़कर उसके आँचल में रुपये बाँध दिये ।

“कल आओगी न !”

“जी !...”

वातावरण कुछ ऐसा रंगीन हो चला कि गुलशन की उपस्थिति का शान ही न रहा—न तो जयराज को ही और न तो लवंग को ही ।

दोनों, सब कुछ भूल कर एक दूसरे में समा गये ।

और तब—

जब गुलशन ने धीरे में ख़ाँसा तो जयराज इस प्रकार चौंक पड़ा, जैसे किसी ने उसकी चोरी पकड़ ली हो ।

उसने घूमकर देखा, गुलशन आँखों में क्रोध एवं उपेक्षा का भाव भरे एक किनारे खड़ी थी । लवंग की ओर इस तरह देख रही थी, जैसे उसे समूचा ही निगल जायगी ।

“कौन है यह !...” आँखों में उदीप्त क्रोधाग्नि भरकर पूछा गुलशन ने, जयराज से ।

“यह एक गरीब तमाशेवाली है...” जयराज ने उत्तर दिया ।

“आप से इससे ताल्लुक !....” गुलशन का यह प्रश्न कुछ आशा का भाव लिये हुए था, जिससे स्वाभिमानी जयराज को बहुत बुरा लगा ।

“गुलशन !....” रूखे स्वर में बोला वह—“मेरी सरलता से ज्यादा फायदा न उठाओ । यह न भूलो कि मैं सेठ हूँ और तुम बाँदी... मेरे निजी मामलों में हस्तक्षेप करने की कोशिश न करो...”

जयराज के इस वाक्य ने गुलशन के शरीर का कोना-कोना जला दिया मगर वह कर ही क्या सकती थी ?

लाचार चुप ही रही । मगर उसका हृदय जयराज से प्रतिशोध लेने की तीव्र भावना से भर उठा ।

गुलशन सर नीचा किये हुए आकर नाव पर बैठ गई । जयराज भी पीछे-पीछे जा सवार हुआ । नाव किनारा छोड़कर आगे बढ़ी ।

रास्ते भर कोई कुछ न बोला ।

नाव से उतरकर, कार पर वे दोनों गुलशन के घर आये । कार से

उतरने के वक्त गुलशन ने जयराज से कहा—“मुझे माफ करो मेरे राजा ! दरअसल वह मेरी ही गलती थी...”

“कोई बात नहीं !...” कहकर जयराज ने कार आगे बढ़ा दी ।

गुलशन दौत पीसकर रह गई । यह भी तो उसका अपमान ही था ।



पंचम ने जम्मू की डोरी खूँटे से बाँध दी और तब टूटे-से खटोले पर आ बैठा । अभी-अभी शहर से ही आ रहा था वह । लवंग और उसकी माँ भोंपड़े के अन्दर थीं और पंचम का आना उन्हें शत न हो सका था ।

लवंग अन्दर अपनी माँ से कह रही थी—“सच बात है माँ ! शराबी होते हुए भी वे बाबू बड़े दयावान हैं...जैसे उनके सामने रुपया कोई चीज है ही नहीं....”

“ठीक है रे !...” उसकी माँ ने उत्तर दिया—“बाज अमीर ऐसे ही होते हैं...मगर अधिकतर बड़े आदमी, गरीबों के लिये काल ही होते हैं । अगर अमीरों के दिल में दया आ जाय तो दुनिया में बहुत कम गरीब रह जायँ...”

पञ्चम धीरे-धीरे भोपड़ी के अन्दर आ गया । दरवाजे पर से ही बोला—“अब भी गरीबों पर तरस खानेवाले अमीरों की कमी नहीं है माँ !...”

चौककर लवंग और बुढ़िया ने दरवाजे की ओर देखा ।

“कब का आया है तू रे ?”—पूछा बुढ़िया ने !

“अभी तो आया हूँ माँ !....पञ्चम बोला—“क्यों री लवंग ! क्या बढ़-बढ़कर बातें कर रही है ! दिखाऊँ मैं कितना कमाया है आज ! ..”

“रहने दो, रहने दो मैया !—” लवंग हँसकर बोली—“कमाया होगा चार-छः आने—”

“अरे दूट !....इधर तो देख—”

पञ्चम ने अपनी जेब से दस रुपये निकालकर लवंग और बुढ़िया को दिखाया ।

“अरे ! आज पंचम मैया भी इतना कमा लाये माँ !—” लवंग ने आश्चर्य से कहा ।

“तभी तो कहता हूँ कि अब भी दुनिया में दयावान् अमीरों की कमी नहीं है—” पंचम बोला !

किसी बड़े आदमी ने दिया है तुम्हें ये रुपये !—” पूछा बुढ़िया ने ।

“हाँ माँ !—” पंचम बोला —“बहुत बड़े आदमी हैं । लवंग के बाबू ऐसे क्या होंगे ?”—पंचम ने लवंग को चिढ़ाने के ढंग से कहा ।

“तुमने मेरे बाबू को देखा भी है या यों ही कह रहे हो !—” लवंग ने तुनक कर उत्तर दिया—“हमारे बाबू तुम्हारे बाबू से बहुत अमीर हैं...”

“हमारे बाबू तुम्हारे बाबू से बहुत अमीर हैं—” पंचम ने लवंग का ही वाक्य दुहरा दिया ।

दोनों ही जयराम की बात कह रहे थे और दोनों को ही यह न मालूम था कि उनके बाबू पृथक् नहीं, वरन् एक हैं ।

“आज देखो, हमारे बाबू ने मुझे इतने रुपये दिये हैं—” लवंग ने जयराम के दिये हुए रुपये दिखाये, जिसे उसने नदी के किनारे दिया था—“आज इतने रुपये दे गये और उस दिन एक जोड़ी धोती दिलवा दी थी...”

“अरे, तेरे बाबू भी तब तो बहुत अमीर मालूम पड़ते हैं—” पंचम ने कहा ।

“आज वे नाव की सैर करते-करते यहाँ आ गये थे—तुम होते तो उन्हें देखते, कितने अच्छे हैं हमारे बाबू !....” लवंग बोली ।

“अरे होगा कोई बन्दर !—” पंचम ने पुनः लवंग को चिढ़ाना चाहा—“मुझे मिल जाय तो उसकी गर्दन मैं रस्सी बाँधकर नचाना शुरू कर दूँगा—नाचो बेटा ! ताक धिनाधिना !....”

“देख माँ !...” लवंग माँ से रँआसी होकर बोली—“पंचम भैया मुझे चिढ़ाते हैं, मेरे बाबू को बुरा कहते हैं...”

“मत चिढ़ा रे पंचम !...” बुढ़िया खीझकर बोली—“नहीं तो अगर यह रोई तो तुझे ही चुप कराना पड़ेगा...”

“मैं सच कहता हूँ माँ !....मगर लो, यह तो रोने लगी—अब न कहुँगा—” पंचम बोला—“मेरे बाबू ने कहा है कि जब कोई तकलीफ पड़े तो मुझे बताना...”

“तो इससे बढ़कर तकलीफ और क्या होगी कि तू दिन भर भालू लेकर शहर भर में ढब-ढब करता फिरता रहे...ऐसा ही है तो माँग ले अपने बाबू से कोई नौकरी—देखें, तेरे बाबू कितने दयावान हैं...” बुढ़िया बोली—मत रो लवंग ! कल आप ही पता चल जायगा...”

पंचम कुछ सोचने लगा । कदाचित् माँ की बात उसे पसन्द आ गई थी । यह राय शायद उसे भी बहुत अच्छी लगी कि अपने बाबू से कोई नौकरी माँग ले ।

“ऐसा ही करूँगा माँ !...” पंचम ने कहा—“बाबू ने वक्त पढ़ने पर सहायता करने का वचन दिया है, नौकरी दे देंगे....मैं कल उनसे नौकरी मागूँगा—”

उस रात—

पंचम ने केसर से मिलकर अपने बाबू के विषय में कहा और खूब

प्रशंसा की। अपने नौकरी करने का विचार भी प्रकट किया। सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई।

मारे प्रसन्नता के उस दिन पंचम एक अद्वा पी गया और केसर ने खुशी-खुशी उसे पिलाया।



उस्ताद ताल खाँ ने गुलशन के मुख पर अंकित घृणा की रेखायें देखीं। वह एक दूसरे ही काम से गुलशन के पास आया था परन्तु उसे क्रोध एवं घृणा से युद्ध करते देखकर, वह अपनी बात कहना भूल गया।

“क्या बात है बीबी !—” उस्ताद ने पूछा।

“वह मुझे एकदम जलील समझता है—” गुलशन ने क्रोधपूर्ण स्वर में कहा—“समझता है कि मैं उसको बाँदी हूँ, जिसे उसने चन्द सिक्के देकर खरीद लिया है...”

“कुछ कहो भी, क्या बात है !”

“समझता है जैसे, मुझे चाहे जिस तरह नाच नचा लेगा। जैसे मेरे पास इज्जत व हुर्मत है ही नहीं....” क्रोध में कहे जा रही थी गुलशन।

“मगर किसकी बात कह रही हो बीबी !...”

“उसी बेहूदे जयराम की !...और किसकी !...”

“क्या किया है उसने !”—

उस्ताद की आकृति गम्भीर हो गई थी।

“आज हम और वह नदी की छैर को गये थे न !”—

“हाँ ! तो क्या हुआ....”

“शहर से बहुत दूर जाकर, उसने एक गाँव के किनारे अपनी नाव लगवाई....वहाँ उसे तमाशा दिखानेवाली एक छोकरी मिल गई...”

“छोकरी !...तमाशा दिखानेवाली !...” ताल खाँ को आश्चर्य हुआ ।

“हाँ उस्ताद !....” गुलशन बोली—“छोकरी क्या थी, चाँद का टुकड़ा थी...देखते ही बनता था । गाँव की मिट्टी में सना हुआ, पत्थर के टुकड़ों के बीच, बाजी वक्त हीरा भी दिखाई पड़ जाता है उस्ताद !...”

“खैर, तो क्या हुआ !....”

“उमे देखते ही जयराज मुझे भूल गया और उस छोकरी से घुल-घुलकर बर्तें करता रहा । उसका तमाशा भी देखा और एक पैसे की जगह दो रुपये दे डाले...”

“हमें तो वह कभी एक पैसा भी ज्यादा नहीं देता !”—उस्ताद ने कहा ।

“हमें क्यों देगा !...पक्का शैतान है वह !”—गुलशन बोली—
“उस लड़की के पीछे उमने मेरी तौहीन की है...”

“क्या कहा था उमने !”

“कहा था गुलशन ! यह न भूलो कि मैं सेठ हूँ और तुम हो तवायफ !”—

कहते-कहते गुलशन ने दाँत पीसा ।

“एक बात मानोगी गुलशन !—”

“कहो उस्ताद...”

“जयराज का पीछा छोड़ दो”—उस्ताद ताल खाँ बोला—
“तुम्हारी खूबसूरती पर निछावर होनेवाले सैकड़ों हैं....”

“यह नहीं हो सकता उस्ताद !”—हृदय स्वर में कहा गुलशन

ने—“आज के तीर जैसे अलफाज ने मेरा दिल चाक कर दिया है। मैं अपनी वह तौहीन भूल नहीं सकती। वह मर्द का बच्चा अपने को समझता क्या है....मैं उसकी शान धूल में मिना कर छोड़ूंगी...”

“बहुत दिनों से तुमने उसे मिट्टी में गारत कर देने का बाँधनू बाँध रखा है—मगर कभी कामयाब भी तो नहीं हो सकी...”

“जल्द ही कामयाबी मेरे पैरों पर अपनी नाक रगड़ेगी उस्ताद !”

“खुदा करे, तुम्हारी बातें सच हों—और तुम्हारी अदा में चन्द और बलायें आकर शामिल हो जायँ...”

उस्ताद ताल खाँ हँस पड़ा।

“अच्छा, अब जरा कपड़े उतार कर आराम कर लो...नहीं तो घण्टे भर बाद शाम होने पर, शामा के जलने का वक्त हो जायगा और परवाने दौड़ पड़ेंगे...” उस्ताद ताल खाँ ने पुनः कहा।

“तुम मेरे पास आये किस लिये थे उस्ताद !”—पूछा गुलशन ने।

“इसलिये आया था कि तुम्हारे ‘वही’ पहली रातवाल सेठजी आये हैं। इतने दिनों बाद चाहते हैं तुमसे मुलाकात करना मगर मैं सोचता हूँ कि इस वक्त तुम्हारा आराम करना बेहतर होगा। मैं उन्हें चले जाने को कह देता हूँ...”

“सेठ गंगादास हैं क्या ?”—गुलशन ने पूछा।

“हाँ...” उस्ताद ताल खाँ ने उत्तर दिया।

“उनसे मिल लेना ठीक होगा उस्ताद !...”

“नहीं ! तुम आराम करो....मैं तबियत खराब होने का बहाना किये देता हूँ....समझो !...”

उस्ताद दरवाजे की ओर बढ़ा मगर ठक् से खड़ा रह गया। दरवाजे के उस पार रायबहादुर सेठ गंगादास खड़े थे, हाथ में चाँदी की मूठ वाली छड़ी लिये।

“मैं समझता हूँ कि तुम्हें कोई बहाना करने की जरूरत न पड़ेगी—” सेठजी ने गम्भीर स्वर में कहा—“क्योंकि मैं देख रहा हूँ

कि गुलशन की तबीयत एकदम ठीक है और मुझसे कुछ बातें कर लेने के लिये तैयार भी है...”

सेठ जी कोठरी के अन्दर आ रहे। गुलशन उन्हें देखकर उनकी ओर लपकी और उनकी छाती से ऐसी जा लगी, जैसे किसी वृक्ष का पत्ता टूटकर जमीन की छाती से जा लगा हो।

“बहुत दिनों पर आये सेठ जी !....मुझे तो एकदम भूल ही गये थे...” गुलशन ने कृत्रिम संजीदगी के साथ कहा।

“तुम लोगों को आदमी जितनी जल्दी भूल जाय उतना ही अच्छा है—” सेठजी ने कहा—“आजकल तो मैं बुढ़ा हूँ मगर अपनी जवानी के दिनों में मैं किसी तवायफ के यहाँ दूसरी बार न गया...”

“तो वह खुशनसीबी कनीज की ही हासिल हुई...” गुलशन ने मुस्करा कर कहा।

“हाँ !...मगर बुढ़ाई में जब कि जवानी का जोश जाता रहा...” सेठ जी बोले और गुलशन की गद्दीदार चारपाई पर जा बैठे।

गुलशन भी उनकी बगल में जा बैठी।

“देखो गुलशन !...” सेठजी ने कोई बात शुरू करनी चाही।

“फरमाइये...” गुलशन की, ‘मैं तुम पर फिदा’ वाली अदायें जारी थीं।

“मैं इस समय तुम्हारे पास, तुम्हारा प्रेमी, तुम्हारा खरीदार बनकर नहीं आया हूँ...”

“.....” मौन रहा गुलशन।

“इस समय एक अभागा बाप बनकर तुम्हारे पास आया हूँ”—सेठजी ने कहा—“एक अभागा बाप भी अपने बेटे को अपनी जान १ बढ़कर प्यार करता है और यह चाहता है कि उसका बेटा बरबाद होने के बदले, उस समय तक आबाद रहे जब तक कि उसका सौंस है...”

“आप तो पहेली बुझा रहे हैं सेठजी !”—गुलशन बोली—“बरा समझाकर कहिये...”

“तुम समझ ही नहीं रही हो तो कैसे समझाऊँ !”

“जिस तरह पहली रात को समझाया था....” गुलशन ने कटाक्ष का तीर चलाकर कहा—मगर सेठजी का शरीर उस पके कटहल जैसा हो गया था, जिसमें छूरी भोंक देने पर भी दूध नहीं निकलता ।

“मैंने ताल खाँ को अपनी कोठी पर बुलाया था—” सेठजी ने कहा—“उसे मैंने समझाया था कि मैं पाँच सौ रुपया प्रति मास देने को तैयार हूँ—जयराज का पीछा तुम लोग छोड़ दो...”

“मैं छोड़ने को तैयार हूँ सेठजी !...”

“तैयार हो !...”

“जी हाँ !...मगर एक शर्त पर !—”

“क्या है शर्त !....” पूछा सेठजी ने ।

“शर्त यह है कि आप रोज यहाँ आया करें...”

गुलशन ने कहा ।

और सेठजी ने प्रज्वलित नेत्रों से गुलशन की आँखों में झुंककर देखा ।

“तुम नागिन हो—” आवेश से उठ खड़े हुए सेठजी—“तुम जयराज के बजाय मुझे फँसाना चाहती हो क्योंकि तुम जानती हो मेरे पास दौलत है...” मगर याद रखो—यदि मैं यह दौलत तुम लोगों में छुटा दूँ तो जयराज कदापि मुझे क्षमा न कर सकेगा...मैं जानता हूँ तुम मेरी बूढ़ी बुद्धि पर अपने रूप का जादू फेककर मुझसे सारा धन हड़प सकती हो—मगर जयराज ऐसा कभी नहीं कर सकता । मैं मानता हूँ कि जयराज इस दुनिया में, मुझसे भी पक्का खिलाड़ी है...”

गुलशन ने सेठजी का हाथ मुलामियत से पकड़कर उन्हें चारपाई पर बैठाना चाहा मगर सेठजी ने क्रोध से हाथ झटक दिया ।

“अब तुम्हारे लिये मैं दूसरा रास्ता देखूँगा—” क्रोध से बोले सेठजी ।

गुलशन जानती थी कि सेठ गंगादास सब कुछ कर सकते हैं ।

उसका मकान, जिसमें रात-रात भर रूपों और चांदी के स्वप्न देखे जाते हैं, सेठजी के एक इसारे से धूल-धूसरित हो सकता है।

“गुस्सा न कीजिये मेरे आका...” गुलशन बोली—“मजाक को इस तरह तहेदिल तक मत लीजिये... मैं आपकी हर एक बातें पूरी करूँगी। यह तो मैं उस्ताद से भी कह चुकी हूँ...”

सेठजी कुछ शान्त हुए। बोले—“तुम लोगों की चालाकी का भेद जानना असम्भव है.... मैं जा रहा हूँ; मेरी बातें याद रखना...”

“फिर कब दीदार नसीब होंगे ?”

“कभी नहीं !” सेठजी रूखा-सा उत्तर देकर चले गये।

जब तक सेठजी और गुलशन की बात हो रही थी, तब तक उस्ताद ताल खों बाहर खड़ा था। सेठजी के जाते ही वह अन्दर आया।

“आखिर ये अमीर सेठ हम लोगों को समझते क्या हैं ?” घृणायुक्त स्वर में बोली गुलशन—“कभी बिस्ली बने रहते हैं और कभी शेर !”

“दौलत का गरूर हुस्न के गरूर से भी ज्यादा कारी होता है बीबी !... अपनी देखो... रग-रग में गरूर भरा है....” उस्ताद ने कहा।

“जयराज का पीछा छोड़ने को कह रहा था—नाचोज कहीं का...”

गुलशन ने घृणा से मुँह सिकोड़ा।

वेश्या की आँखों से शराब छलक उठता है, जब वह कटाक्ष करती है।

होठों पर बिजली चमक जाती है, जब वह मुस्कुराती है !

परन्तु जिस समय उसके मुँह पर घृणा और क्रोध के भाव लक्षित होते हैं तो उसका सौन्दर्य प्रलय-सा भयानक हो उठता है।

जयराज अभी-अभी स्नान करके आया था और बड़े से शीशे के सामने खड़ा होकर बालों पर कंघी फेर रहा था, कि टेलीफोन की घंटी बज उठी। जयराज ने आगे बढ़कर मेज पर रखा हुआ रिसीवर उठा लिया।

उसके पिता—रायबहादुर सेठ गंगादास बोल रहे थे। स्वर में रोष था—आवाज की गति में तीव्रता थी।

जयराज मुनता रहा—

“तुम बजारू कृतियों के पीछे फिाने वाले एक नीच कुत्ते हो... मैंने तुम्हें क्या बनाना चाहा और तुम क्या बन गये...यह मत समझना कि तुम्हारा बूढ़ा बाप बगैर अकल का एक पुतला है, जो सुन नहीं सकता...देख नहीं सकता...मैं तुम्हारे दर एक काम की पूरी-पूरी खबर रखता हूँ...मैंने तुम्हें स्वतन्त्रता दी, इसलिये नहीं कि तुम आजाद पत्नी की तरह मेरे हाथों पर से फुर्र-फुर्र उड़ जाओ—मैंने तुम्हें धन दिया, इसलिए नहीं कि तुम उसे मिट्टी समझ कर इधर-उधर फेंकते फिरो.... मैंने तुम्हें पैसा किया, इसलिए नहीं कि तुम मेरे नेत्रों में ही धूल भोंक कर मनमानी करने लगे....”

जयराज टेलीफोन का रिसीवर कान से लगाये, अपने पिता के कठोर वाक्य सुन रहा था। आज के पहले, कभी उसके पिता ने इतने कड़े शब्द, इस ढंग से उसके लिए नहीं प्रयोग किये थे।

सेठ गंगादास जो पुत्र की सुरत अपने सामने देखकर, अपना सारा क्रोध भूत जाते थे—इस समय टेलीफोन पर गरज रहे थे—

“तुमने मुझे अच्छा समझा—तुमने मुझे बेवकूफ समझा—तुमने मुझे निर्बल बुढ़ा समझा...है न !...मगर याद रखो, अगर जल्द ही तुमने अपनी आदतें न सुधारें तो मुझे विवश होकर अपनी सम्पत्ति का दूसरी तरह से उपयोग करना पड़ेगा, तब तुम्हारी यह बाबूगिरी, यह

सफेद शैतानी के ढंग न रह जायेंगे...खैर ! जो कुछ हुआ उसे भूलकर अब रास्ते पर आओ—कल तुम कोठी पर भी नहीं आये...आज बारह बजे अवश्य आ जाना...”

सेठजी के बातचीत का अन्तिम अंश नम्रतापूर्वक बोला गया था ।

जयराम रिसीवर रख धम्म से कुर्सी पर बैठ गया । आज उसे बहुत आत्म-ग्लानि हो रही थी । यदि उसने प्रारम्भ ही से अपना चरित्र उच्च बनाने की चेष्टा की होती तो उसके पिता को आज इतने कठोर शब्द कहने की आवश्यकता न पड़ती !

हृद-संक्रमण से जयराम की मुट्ठियाँ बँध गई ।

अब कभी नहीं जायगा वह रूप के बाजार में और शराब पीना भी धीरे-धीरे छोड़ देगा ।

यह संकल्प करते ही जयराम को अपना अन्तःकरण कुछ हलका-सा प्रतीत हुआ । ऐसे समय, उसे एक सच्चे साथी का अभाव खटका ।

अब तक उसने किसी साथी की खोज भी तो नहीं की थी ।

उसी समय लखना आया । लखना का आना जयराम को बहुत बुरा मालूम हुआ, क्योंकि पिता के वाक्यों द्वारा उत्पन्न हुई ग्लानि की छाया अब भी उसके मुख पर विद्यमान थी । चेहरा तमतमाया-सा प्रतीत होता था ।

“सरकार ! वह मदारी आया है !”—लखना ने कहा ।

“भेज दो उसे...” कह दिया जयराम ने, बिना सोचे-समझे, बिना लखना के वाक्य भली प्रकार सुने ।

लखना चला गया । जयराम पुनः सर नीचा कर कुछ सोचने लगा ।

“जै रामजी की सरकार !...”

जयराम ने चौंककर सर उठाया तो दरवाजे पर पंचम को खड़े देखा । जयराम का हृदय क्रोधित हो उठा—लखना के ऊपर ।

क्यों उसने ऐसे असमय में इस मदारी को यहाँ भेजा ?

“क्या चाहते हो !...” जयराम ने स्वर में नम्रता लाने का प्रयत्न किया मगर वह असफल रहा । पंचम समझ गया कि बाबू इस समय क्रोध में हैं ।

“एक बात कहना चाहता था सरकार !...” पंचम हिचकिचाते हुए बोला ।

“यही न कि तुम्हें कुछ रुपये चाहिये...बोलो, कितना दूँ !” जयराम के स्वर में वही घबराहट थी ।

पंचम को जयराम के इस वाक्य से बहुत दुख पहुँचा । तो क्या उसके बाबू उसे इतना नीच समझते हैं कि वह उनके पास रुपये माँगने की लालच से आया है ? क्या पास में धन नहीं रहा तो वह भिखारी बन गया ?

“भीख नहीं चाहता सरकार !...मैं नौकरी चाहता हूँ”—दबी जवान से पंचम कहा ।

“नौकरी !...” कुछ सोचने लगा जयराम—“देखो ! मैं इस समय काम में हूँ । तुम कल आना तो बताऊँगा...” जयराम ने पाकेट से पाँच का नोट निकालकर पंचम के आगे उपेक्षा से फेंक दिया—“तब तक इन्हें ले जाकर काम चलाओ...”

पंचम को बहुत आत्मश्लानि हुई जयराम के रूखे व्यवहार पर । उसने जयराम को बहुत दयावान समझ रखा था परन्तु आज उसकी धारणा निर्मूल सिद्ध हो गई ।

उसने जमीन पर पड़ा नोट उठाया नहीं । सर नीचा करके चुपचाप कमरे से बाहर हो गया । बँगले के अहाते में बनी हुई पतली सड़क पर से वह मुख्य द्वार की ओर बढ़ा ।

“अरे पंचम भैया !...”

पंचम ने पलट कर देखा तो धनना ।

घन्ना लपक कर पंचम के पास आया । बोला—“बहुत उदास मालूम होते हो पञ्चम भैया !”—

“तू यहाँ कहाँ रे धन्ना !”—पंचम ने पूछा ।

“मेरी क्या पछते हो भैया ! जहाँ मजदूरी लग गई, वहीं भिड़ गये...आज दिन भर की मजदूरी इन्हीं बाबू के यहाँ मिल गई । सोचा दिन भर पीट-पाटकर चार-छः आने मार लूँ...है न !....”

“ठीक है भाई !...” पंचम के स्वर से उसके हृदय की उदासी बाहर आ रही थी ।

“तुम यहाँ क्यों आये थे पंचम भैया !”—पूछा धन्ना ने—“बहुत उदास क्यों मालूम हो रहे हो !...”

पंचम, धन्ना की छलनामयी प्रकृति से अनभिज्ञ था, बोला—
“उदासी की बात मत पूछ रे !...ये अमीर हैं...इनकी शान आसमान छूती है...”

“क्या हुआ भैया !....”

“आया था नौकरी के लिये”—पंचम बोला—“सो मुझे नीच भिखारी जानकर सामने पाँच रुपये फेंक दिये और कह दिया, कल आना...अगर नौकरी नहीं देनी थी, अपमान करने का क्या हक...”

“रुपये कहाँ हैं !...”

“मैं वहीं जमीन पर पड़ा हुआ छोड़कर चला आया”—पंचम ने कहा ।

“न पूछो पंचम भैया !...” धन्ना बोला—“इन अमीरों का गुमान न पूछो...सातवें आसमान पर रहता है...”

“अब कभी यहाँ न आऊँगा...”

“आने की बात कहते हो पंचम भैया !”—मुख पर क्रूर हँसी लाकर धन्ना बोला—“तुम्हारी जगह अगर मैं होता तो सड़ से छूरी निकालकर बेईमान के सीने में भोंक देता...हाँ !....”

“.....”

पंचम कुछ न बोला । सर लटका कर चला गया । उसने चले जाने पर घन्ना के मुख पर क्रूर मुस्कराहट खेल उठी ! उसने गम्भीरता-पूर्वक सर हिलाकर कोई बात सोची और तब वह जयराम के कमरे की ओर बढ़ा ।

जयराम पंचम के चले जाने पर, उसी प्रकार चिन्तामग्न कोच पर बैठा था । उसने यह भी नहीं देखा था कि पंचम ने उसका फेंका हुआ नोट उठाया की नहीं ।

“सरकार !....”

जयराम ने सर उठाया तो घन्ना खड़ा था । उसके हाथ में पँच का वह नोट दिखाई पड़ रहा था, जिसे बड़ी सफाई के साथ उसने जमीन पर से आते ही, उठा लिया था ।

“तुम !...क्या है !...क्या कहना चाहते हो !”—जयराम ने पूछा । घन्ना ने बिना एक शब्द बोले हुए वह नोट लाकर जयराम के सामने रख दिया ।

“कहाँ था यह नोट !...”

“सरकार ! जो आदमी, अभी-अभी, आपके पास नौकरी माँगने आया था न !...वह मेरे गांव का है...उसी ने यह नोट मुझे दिया है कि मैं इसे ले जाकर आपको लौटा दूँ ...”

“क्यों !...” जयराम के मुख पर आश्चर्य का भाव था ।

“सरकार, वह बड़ा खतरनाक आदमी है...यही मैं आपसे कहने चला आया कि उसे यहाँ आने देना ठीक नहीं होगा...वह खून भी कर सकता है, थोड़े रुपयों के लिए...” घन्ना की बातों में नाटकीय विशेषता थी ।

“अच्छा !”

“जी हाँ, सरकार !....आपने उसे नौकरी नहीं दी तो आप पर वह बहुत क्रोधित हो रहा था । मुझसे अभी-अभी बहुत-सी बातें कह रहा था...”

“क्या कह रहा था ?”—पूछा जयराज ने ।

“सरकार ! मुझे माफ करेंगे—मैं गरीब आदमी हूँ”—धन्ना ने कहा—“वह कह रहा था कि ये अमीर साले पूरे कस्साई होते हैं...मुझे भिखमंगा समझ रखा था बेहूदे ने...”

“...” जयराज के नेत्र एकबारगी अंगारे जैसे जल उठे ।

“फिर मेरे हाथों में यह नोट देकर बोला, इसे ले जाकर दे देना उसे...शराब पी लेगा इन रुपयों का...एक बात उसने और कही है सरकार !—बहुत भयानक !...”

“तुम बताओ, क्या कहा है उसने ?”

“कल आपने उसे बुलाया है न !...” धन्ना बोला—“कल वह कमर में छुरी रखकर आवेगा और बात-बात में ही आप से लड़ बैठेगा । सरकार ! बहुत होशियारी से रहियेगा...कहता था कि कल बच्चू के कलेजे में छुरी न घुसेड दें तो मर्द का बच्चा नहीं...”

“यह बात है....” तीव्र स्वर में बोला जयराज—“आने दो उसे कल ! उसके लिए पुलिस पहले ही तैयार रहेगी...मैं देख लूँगा उसे । तुम जाकर अपना काम करो...मगर देखो यह बात किसी से मत कहना...”

धन्ना गम्भीर चेहरा और हँसता हुआ दिल लेकर चला गया । आज उसने जो आग लगाई थी, कदाचित्त वह सब कुछ जलाकर भस्म ही कर देगी ।

धन्ना को केसर से शत्रुता थी और पंचम था केसर का प्रेमी और धन्ना का प्रतिद्वन्दी । इसीलिए धन्ना के हृदय में पंचम के प्रति कपट-भावना बहुत दिनों से अन्तर्हित थी ।

और वही कपट-भावना, विश्वासघात की प्रबल दावाग्नि बनकर, बाहर आई थी—शायद पंचम और जयराज को उसका पता न था ।

जयराज के अन्तस्थल को घन्ना की बातों ने उद्वेलित कर दिया था। पंचम को अब वह परम कपटी तथा कृतघ्न समझने लगा था। उल्टा-सीधा समझा कर घन्ना के चले जाने के बाद भी वह उसी प्रकार कोच पर बैठा रहा।

सोचता रहा वह—

अब तक वह जिन-जिन साथियों की संगति में आया है, सब उसे कपटी एवं विश्वासघाती ही मिले। किसी के हृदय में भी उसने अपने प्रति सहानुभूति न देखी। जो भी आया, वह स्वार्थवश उसके पास आया।

शराब की बोतलें !—

ये भी बहुत दिनों से उसका साथ देती आई थीं। अब तक वह पका शराबी बन चुका था। परन्तु केवल कलेजा जला देने के अतिरिक्त इन दाहक शराब की बोतलों ने उसके लिए क्या किया था ? केवल उसकी सुप्त इन्द्रियों में उत्तेजक भावना उत्पन्न कर उसे भ्रष्ट करने के अतिरिक्त यह हलाहल उसके किस काम आया था ? अत्यधिक शराब पीने के ही कारण जयराज के कलेजे में इधर कई महीनों से, कभी-कभी एक-ब-एक असहनीय यन्त्रणा होने लगती थी और जयराज छुटपटा उठता था। दो चार पेग अधिक शराब पी लेने पर तब वहीं जाकर यन्त्रणा दूर होती थी। शराब ही उस दर्द की दवा थी।

वेश्यायें !

ये भी प्रतिदिन रात को उसका साथ देती थीं—परन्तु उनके रग-रग से उनके सौन्दर्य से, उनकी मुखाकृति से, उनकी मदभरी आँखों से—सबसे जैसे एक ज्वाला-सी प्रज्वलित होती रहती थी और जयराज को ऐसा लगता था जैसे उसके कलेजे का सारा रक्त, वे अग्नि शिखा बनकर शोषण कर रही हैं।

पंचम !

इस गरीब मदारी पर उसने दया दिखलाई थी—सोचा था, जो सहानुभूति उसे कहीं न मिल सकी, कदाचित्त हम गरीबों के पास उसे मिल जायगी। मगर उसकी आशा पर तुषारापात हो गया, जब कि उसने घन्ना से पंचम की बुरी धारणा के विषय में सुना !

लवंग !

इस कंजर बाला ने अपने सरल-माधुर्य द्वारा, अल्प समय में ही उसकी नीरस बीणा को भंकृत कर दिया था।

और लवंग की याद आते ही जयराज का बदन एक हलके कम्पन से सिहर उठा। उसने सर उठाया तो लखना को आते देखा।

लखना ने हाथ की तश्तरी जयराज के सामने मेज पर रख दी : तश्तरी में दो आमलेट तथा एक प्याला चाय थी।

जयराज ने अब तक नाश्ता नहीं किया था। वह आमलेट खाने लगा।

“सरकार ! वह तमाशावाली आई है...” लखना ने धीरे से कहा।

इस घर के नौकरों में यदि कोई जयराज के स्वभाव से परिचित था, तो वह था लखना। वह जानता था कि सरकार का क्रोध ठण्डा करने के लिये चाय अथवा बियर या ब्रान्डी हिस्की की आवश्यकता पड़ती है।

“तमाशावाली !”—जयराज के मुख पर उद्विग्नता की जगह प्रसन्नता की हलकी आभा ने ले ली—“मेज दो उसे...”

लखना चला गया और पाँच मिनट बाद लवंग ने वहाँ प्रवेश किया। जयराज ने सर उठाकर लवंग की ओर देखा और लवंग ने जयराज की ओर। दोनों एक दूसरे को देख कर मुस्कराये। मुस्कराहट में दोनों के हृदयों का वैकल्पिक अन्तर्हित था।

“तमाशा देख लो बाबू !...” लवंग ने मधुर स्वर में कहा।

“तुम्हारे तमाशों में अब आकर्षण नहीं रहा...” जयराज बोला—

“मुझे तुम्हारे तमाशे से अच्छी तो तुम्हारी सूरत लगती है। जी चाहता है, रात दिन सामने बैठकर देखा करूँ।”

“.....” लवंग के कपोलों पर लजा के कोमल करों ने लालिमा का छीटा दे रखा था और वह सर नीचा किये हुए खड़ी रही, आकर्षक प्रतिमा की तरह।

“बैठ जाओ!”—जयराम के स्वर में आज्ञा न थी, स्नेह का माधुर्य था।

“तमाशा न देखोगे बाबू तो मुझे छुटी दे दो...कुछ पैसे पैदा कर लूँ...”

“पैसे के लिये मत चिन्ता करो...मैं तुम्हें काफी दे दूँगा...” जयराम बोला।

“मैं योंही आपके पैसे न लूँगी बाबू!...मुझसे कुछ काम कराकर तब पैसे दीजिये तो मैं ले सकती हूँ....” लवंग ने कहा।

“काम ?...” जयराम ने कुछ सोचा—“अच्छा तो ये जो मेरे फोटो टंगे हैं—इन सब को उतारकर साफ करो और फिर उन्हें यथास्थान टाँग दो...”

“बड़े ऊपर हैं—मैं किस तरह उतार सकूँगी ?”—

“मैं तुम्हें ऊपर उठा दूँगा...” जयराम ने हँसकर कहा।

“नहीं-नहीं बाबू...” हड़बड़ाकर उठी लवंग। दिल एक मधुर वेदना से धड़क उठा।

“अच्छा तो, वह स्टूल ले लो”—जयराम ने कहा—“मगर अपने को गिरते से बचाये रखना क्योंकि उसका एक पाँव टूटा है”—

लवंग ने स्टूल ले जाकर एक फोटो के नीचे रखा और उस पर धीरे-धीरे चढ़ी और बल पूर्वक फोटो उतारकर सीने से दाब लिया, ताकि उतरते समय वह गिर पड़े तो टूट न जाय।

जयराम ने एक ठण्डी साँस ली। वह देख रहा था कि वह भोली प्रतिमा उसके सामने रहते हुए भी, उसका फोटो सीने से दाबे थी।

“देखो गिरना मत....” जयराज कहता ही रहा मगर धड़ाम से लवंग का पतला शरीर फर्श पर आ रहा ।

पक्की फर्श से सर टकरा जाने के कारण लवंग का मस्तिष्क भन्ना उठा था । एक क्षण तक उसे जैसे होश ही न रहा ।

तबतक जयराज भी झपट कर उसके पास जा पहुँचा था और उसका फूल-सा हलका शरीर अपने बाँहुओं पर उठा लिया था ।

जयराज लवंग को लेकर कोच की ओर बढ़ा । लवंग को होश आ गया था परन्तु वह न जाने कैसा मादक-स्वप्न देख रही थी कि चुप रही ।

जयराज के अवयव उस कोमल प्रतिमा को अधिकाधिक अपने में कसते जा रहे थे । हृदय आवेग से भर उठा था ।

दूसरे ही क्षण जयराज के उल्लसित बाँहुओं ने उस सौन्दर्य प्रतिमा को भरजोर अपने हृदय से दाब लिया और प्यासे अधर मादक अधरों से जा मिले ।

जयराज के अधरों के सम्पर्क ने लवंग में जैमे शराब की नदी भर दी । उसका शरीर काँप उठा और कोमल हाथों की माला जयराज के गले में जा पड़ी ।

उसने लवंग को धारे से कोच पर लिटा दिया । लवंग ने आँखें खोलो, पुनः लज्जा से बन्द कर लीं ।

“कहीं चोट तो नहीं लगा लवंग !”—जयराज के स्वर में सरलता थी ।

“.....” लवंग चुप रही ।

“बोलो लवंग !...मेरी रानी !...” जयराज की एक मादक साँस लवंग के अधरों पर लोट गई—“कहाँ चोट आई—”

“यहाँ !”—मुस्कुराकर लवंग ने अपने होठों पर अँगुली रख दी ।

और तब जयराज ने जाना कि उन कोमल अधरों को, उसके अभ्यस्त होठों ने सचमुच बहुत चोट पहुँचाई है । परन्तु वह एक ऐसी चोट है,

जिसकी दवा केवल चोट है। अतः जयराम ने पिपासित-भंगिमा से लवंग के सरस अधरों पर एक और चोट दी।

“तुम कितनी अच्छी हो लवंग !....”

“तुमने मेरा सब कुछ लूट लिया बाबू !...” कहते-कहते लवंग बेहोश-मी हो रही। उसके जीवन-समुद्र में आज प्रथम बार तूफान आया था, जिमने उसे बेमूँह कर रखा था। वह जीते जी वहाँ पहुँच गई थी, जहाँ इन्द्रधनुष की सतरंगी आभा बदन पर लोट-लोट कर जीवन को सतरंगा बना देती है।

लखना इसी बीच दरवाजे पर आया था और उन दोनों को ऐसी अवस्था में देखकर चुपचाप दरवाजा बन्द कर, चला गया था। किसी को खबर न थी।

“जी चाहता है कि अब बोतलों की शराब पानी छोड़कर, तुम्हारे होठों और आँखों की मदिरा पिया करूँ...” जयराम बोला।

“मेरा सब कुछ लूटकर, मुझे दर-दर की भित्तारिन मत बना देना बाबू !” लवंग ने कहा।

उसी समय जयराम को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उसके हृदय में कोई सैकड़ों कीलें चुभो रहा हो। वह अपना कलेजा पकड़ कर कराह उठा।

“क्या हुआ बाबू !...” हड़बड़ा कर उठ पड़ी लवंग। जयराम कराहता हुआ, दोनों हाथों से अपना कलेजा दाबे कीच पर सो गया।

“बाबू !...” करुणा भरे स्वर में पुकारा लवंग ने।

“लवंग !...” क्षीण स्वर में बोला जयराम—“मेरे खेब से चाभी निकाल कर...वह आलमारी खोलो...उसमें बोतल....बोतल....”

कहते-कहते जयराम पीड़ा से व्यग्र हो उठा। वह जानता था कि इस रोग का मूल कारण क्या है—वह समझ गया था कि जबाला ने उसका कलेजा जला डाला है—अब उसमें सिवा दर्द के हो ही क्या सकता है !

यह दौरा उसे सातवीं बार हुआ था। यों तो पहले दो-दो चार-चार महीने का अन्तर देकर होता था परन्तु इस बार तो केवल बीस दिन व्यतीत हुए थे।

“आप शराब न पियें....” लवंग ने कहा—“आपका तबियत खराब है...”

लवंग ने आलमारी खोलकर बोतल निकाली, प्याला भरा और जयराज के शिथिल एवं शुष्क होठों से लगा दिया।

लगातार सात प्याले पीने पर तब जयराज का हृत्शल कुछ कम हुआ। वह कोच पर धीरे से उठ कर बैठ गया।

“शराब ने मुझे छलनी बना डाला है लवंग !...” जयराज बोला—“तुम मुझे मिली मगर तब, जब मैं मृत्यु के द्वार पर अपना पहला पैर रख चुका हूँ...”

“किसी डाक्टर को दिखाओ बाबू !...”

“डाक्टर क्या करेंगे !...” क्षीण मुस्कान जयराज के मुख पर फैल गई—“जिस मनुष्य ने अपना पैसा लुटाकर, अपनी मौत खरीदी हो—उसकी दवा डाक्टर क्या करेंगे !...”

“ऐसा न कहें आप...जल्द ही अच्छे हो जायेंगे...” लवंग बोली—उसके सुखद-संसार पर प्रलय की घटा घिर आई थी।

आब लवंग को, पंचम के उस दिन के वाक्य याद आये। उसने कहा था—“जो शराब पीता है, वह खुद अपनी मौत खरीदता है...”

लवंग काँप उठी। कर ही क्या सकती थी वह ! जयराज को भूल नहीं सकती थी। जैसे उसके जीवन-मरण से उसका जन्मान्तर का साथ हो गया हो।

लवंग दिन भर जयराज के पास रही। संध्या को जयराज की तबीयत सम्बल गई और उसके मुख पर पहले की-सी हरियाली आ गई तो लवंग दूसरे दिन दोपहर को आने का वादा करके चल दी।

रास्ते भर वह जयराज के स्वास्थ्य के विषय में ही सोचती रही।

देखने में दृष्ट-पुष्ट, मुखपर मुस्कराहट—मगर हृदय में इतनी भीषण यन्त्रणा ! अन्तराल में इतना भीषण रोग !

यह बीमारी है कैसी, जो हँसते-हँसते मनुष्य को एक-ब-एक आक्रान्त कर लेती है और इतनी यन्त्रणा देकर कुछ घण्टों में चली जाती है !

लवंग का भोला हृदय डाक्टरों की इस गुत्थी को किस प्रकार सुलझा सकता था !



सर लटका कर खटोले पर आ बैठा पंचम । बुढ़िया यह सब देख रही थी । वह पंचम की उदासी का भी कारण कुछ-कुछ जान गई थी कि पंचम के बाबू ने उसे नौकरी नहीं दी, इसीलिए पंचम उदास है ।

बुढ़िया आकर उसके बगल में बैठ गई । बोली—“क्यों रे ! मिल गई नौकरी !...”

“...” पंचम निर्वाक बैठा रहा । कुछ न बोला ।

“कहतो थी कि नौकरी आजकल इतनी सस्ती नहीं...मगर तेरे पर तो अपने बाबू का भूत सवार था....लवंग के बाबू को देख...आज वह बहुत से रुपये लेकर आई है...लवंग ! ओ री लवंगिया !...” बुढ़िया ने पुकारा ।

लवंग झोपड़ी में से दौड़ी आई । पूछा—“क्या है माँ !”—

पंचमवा की सूरत जरा देख ! मालूम होता है इसके बाबू ने इसे नौकरी देने के बजाय थप्पड़ मारे हैं...क्यों रे !...”

अन्यमनस्क भंगिमा लिए हुए पंचम उठ खड़ा हुआ और पगडंडी की ओर बढ़ा ।

“कहाँ चल पड़ा तू !...” बुढ़िया ने टोंका उसे—“चल, लिट्टी नोन खा ले तब जा, जहाँ जाना हो...”

“मैं नहीं खाऊँगा आज !...” कहकर पंचम आगे बढ़ा ।

बुढ़िया ने हॉफते हुए आगे बढ़कर प्रेम-पूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया ।

“अरे ! तुझे नौकरी नहीं मिली तो क्या तेरी नानी मर गई, जो इतना उदास है ! नौकरी न सही....काम तो तेरा चल ही जायगा....”

मगर पंचम हाथ झटक कर आगे बढ़ गया । बुढ़िया को आज पंचम की गम्भीरता बड़ी भयानक लगी—जैसे शान्त समुद्र की सतह पर तूफान का प्रबल वेग छिपा हो—जैसे पंचम की गम्भीरता के पीछे कोई भयंकर संकल्प अन्तर्हित हो ।

पंचम जा रहा था नदी की ओर । नदी तट पर ही उसे मिल गया घन्ना ।

“कहाँ जा रहे हो पंचम भैया !....” बेइया की तरह हँसकर कहा—“केसर के घर !...जाओ, जाओ...मगर एक बात तुमसे कहनी थी भैया !....”

“कहो न !...”

“लो बीड़ी पियो !...” घन्ना ने पंचम को एक बीड़ी दी । पंचम बीड़ी सुलगा कर पीने लगा ।

“तुम जब वहाँ से चले आये न पंचम भैया ! तो वह बड़ी लम्बी चौड़ी ढाँक रहा था—” घन्ना बोला ।

“कौन !....वह बाबू !...”

“हाँ भैया !...” घन्ना ने कहा—“कह रहा था कि ये साले रुपये के गुलाम, टुकड़खोर दम लेने नहीं देते....जब देखो, तब नौकरी के लिये मुँह बाये खड़े हैं और नहीं तो दस-बीस रुपये ही माँगने चले आये...”

“ऐसा कह रहा था वह कमीना !”—पंचम क्रोधित हो उठा था ।

“हाँ पंचम मैया !...उसने कहा कि कल जब वह आयेगा, तो जूतों से बातें करूँगा...इसके बाद...” रुक गया घन्ना ।

“इसके बाद क्या कहा उसने ?”—दाँत पीसकर पूछा पंचम ने ।

“जाने दो मैया !...गाली है...”

“तुम बताओ, उसने क्या गाली दी है !...”

“बहन की गाली !”—क्रोध से गरज पड़ा पंचम—“मैं उस कमीने का खून पी जाऊँगा । होने दे सुबह...”

पंचम तेजी से घर की ओर लौट पड़ा, इसलिये धन्ना की कर मुस्कान वह देख न सका ।

कपटी धन्ना, नियति के हाथों का खिलौना बनकर, नाच रहा था । उसने दोनों ओर आग लगा दी थी । वह जानता था कि दो भयंकर आग्न-शिखार्यें आपस में लड़कर प्रलयंकर लपटें फेकेंगी, उनसे पंचम का तो नाश अवश्य हो जायगा और तब केसर उसकी होंगी ।

पंचम तेजी से पग बढ़ाता हुआ भोपड़ी की ओर चला जा रहा था । उसका मस्तिष्क इस समय एक भयानक संकलर से भर गया था ।

बहन की गाली !

पंचम सब कुछ सह सकता था परन्तु लवंग के प्रति एक शब्द भी उसके लिये विषैले तीर के समान था ।

घन्ना जानता था कि पंचम लवंग को कितना प्यार करता है और इसीलिये, जरूम को अत्यधिक धायल करने के लिये उसने वह विषैला तीर छोड़ा था ।

उस समय पंचम करने अपमान की बात भूल गया । केवल लवंग को, अपने सारे आराम का बलिदान चढ़ाकर उसने आराम से रखा है—जिसे अपने स्नेहजल से सींच-सींच कर उसने एक पौधे से वृक्ष का स्वरूप दिया है—

उसी लवंग को, एक अमीर अपने धन के अन्धेनप में आकर, गाली दे—दुर्वाक्य कहे !

नहीं सहन कर सकेगा वह ।

पञ्चम ने रास्ता चलते हुए अपने दोनों कान बन्द कर लिये । उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे गाँव के कोने-कोने से लवंग के लिये गालियों की ध्वनि निकल रही हो !—वास्तव में पंचम लवंग के लिये सब कुछ कर सकता था ।

भोपड़ी के दरवाजे पर आकर उसने पुकारा—“माँ !...”

बुढ़िया अन्दर से दौड़ी आई—“क्या है रे पंचम !...”

“हँसुआ कहाँ है....”

“क्या करेगा हँसुआ तू !...क्या काटेगा !...” बुढ़िया को आश्चर्य हुआ, पञ्चम को हँसुआ माँगते देखकर ।

“काम है, तू दे तो !...” कहा पञ्चम ने ।

बुढ़िया ने भोपड़ी में से हँसुआ लाकर पंचम को दिया । पंचम हँसुआ हाथ में लेकर पत्थर पर रगड़ने लगा । घण्टों रगड़ता रहा ।

फिर एक लिट्टी खाकर खटोले पर सो रहा । हँसुआ सिरहाने रख लिया । बीड़ी भी न पी उसने ।



जयराम के नौकरों को धक्का देता हुआ, पंचम दौड़ पड़ा जयराम के कमरे की ओर । वह बड़ा-सा हँसुआ, उसकी कमर में छिपा हुआ, समय की प्रतीक्षा कर रहा था ।

जयराम प्रातःकाल ही मदिरा का प्याला होठों से लगाये बैठा था । पंचम अनायास उसके सामने जाकर खड़ा हो गया । चौक पड़ा जयराम ।

“क्या चाहते हो !...” पूछा उसने ।

“हमें गरीब जानकर ठुकड़खोर कहते हो बाबू !”—गरजा पंचम—
“हम इतने नीच नहीं कि तुम बहन की गाली दे दो और हम चुपचाप
सह लें....”

“चुप रह कमीना कहीं का...” उबल पड़ा जयराम—“बहन की
गाली तुने मुझे दी थी...अब उल्टे घमकी देने आया है !”

“जबान सम्हाल कर बातें निकालो बाबू !”—क्रोध से बोला
पंचम—“मैं रीछ से लड़ता हूँ । तुम्हारी पसली-पसली तोड़ दूँगा...”

“रीछ से लड़ता होगा तू ! मगर रुपयों की शक्ति का सामना
करने की ताकत तुझसे नहीं आई है—” जयराम बोला ।

“बहुत घमंड है तुम्हें अपने रुपयों का इरामो के पीछे कहीं
के !—” भद्दी गाली देकर पंचम ने छिपा हुआ हँसुआ निकाल लिया
और प्रबल वेग से दूट पड़ा जयराम पर ।

परन्तु कुछ कर नहीं सका वह । उसी समय पीछे से कई आदमियों
ने पंचम को पकड़ लिया । पंचम ने घूमकर देखा तो पुलिस । उसका
सर चकरा गया ।

जयराम ने सब कुछ पड़ले से ही ठीक कर रखा था ।

जमादार की बूट की टोंकर खाकर पंचम के होश ठिकाने आये ।
फिर भी वह लाल-लाल आँखों द्वारा जयराम की ओर घूरता ही रहा ।

पुलिस ने पंचम को हथकड़ी भर दी और वह हँसुआ समेत उमे
ले चला ।

“जा तो रहा हूँ—” जाते-जाते बोला पंचम—“मगर याद रखना
बाबू ! मैं खून का प्यासा हूँ । अगर जिन्दा रहा तो तुम्हारे लहू मे
जमीन लाल कर दूँगा...”

और अड़कता हुआ वह चला गया ।

जयराम को ऐसा लगा जैसे उसने एक निरीह के साथ बलप्रयोग
कर अच्छा काम नहीं किया है ।

परन्तु इसके अतिरिक्त वह कर ही क्या सकता था ! क्या पंचम के तीव्र हँसुए द्वारा अपनी जान देता !

शम्रि ही जयराम ने कपड़े पहन कर अपने पिता की कोठी पर जाने की तैयारी कर ली क्योंकि कल बिगड़े जाने पर भी दिन भर जा न सका था ।

उस दिन दोपहर के बाद, लवंग जब जयराम की हवेली पर पहुँची तो लखना ने उसे इज्जत के साथ सलाम किया और उसे ले जाकर जयराम के कमरे में बैठाया ।

“आप बैठें...” लखना ने कहा—“सरकार कोठो पर गये हैं, अब आते ही होंगे...”

लखना चला गया । लवंग कोच पर बैठी रही । आज वह अपने तमाशे का बक्स नहीं लायी थी । जब अन्तस्थल का तमाशा लोग देखने लगे तो बह्य तमाशे की आवश्यकता ही क्या थी !

लवंग की हिचक अब बहुत कुछ दूर हो चुकी थी । उसने मेज पर से जयराम का फोटो उठाकर अपने होठों से लगा लिया ।

“मैं स्वयं आ गया हूँ—” दरवाजे पर से जयराम ने कहा—“फोटो को ज्यादा कष्ट मत दो....”

और तब उसने आगे बढ़कर लवंग को इस प्रकार समेट लिया, जैसे कोई गठरी समेट रहा हो । लवंग के होठों पर चुम्बन की मुहरें लगती रहीं और वह अपने को भूली-भूली-सी जयराम के शरीर का सहाग पाकर सिमटी रही ।

तभी जयराम ने उसकी पतली उँगलियों में सोने की अँगूठी पहना दी ।

“हम तुम अनन्त काल तक इसी तरह रहेंगे रानी !...” जयराम ने कहा ।

लवंग को जैसे अपने सौभाग्य पर विश्वास ही न हुआ । एक दमिद्र ने सम्प्रदा का अतुल कोष जो देखा था ।

जयराज, लवंग को कोच पर बैठाकर, शराब की बोतल लेने लपका । प्याला भरकर वह पीने ही जा रहा था कि लवंग ने हाथ बढ़ा कर पकड़ लिया ।

“इसे न पियो !...” बोली वह—“यह नुकसान करती है....”

“अब यह नहीं छूट सकती लवंग !...मैंने कई बार कोशिश करके देखा—मगर हर बार मेरे कलेजे का दर्द उभड़ आता है, इसके बिना...”

“मैं इसे नहीं पीने दूँगी आपको....” दृढ़ करने लगी लवंग ।

“अच्छा, नहीं पीऊँगा...तुम प्रसन्न रहो, यही चाहता हूँ मैं...” जयराज बोला—“मगर कल यहाँ आकर तुम मुझे सख्त बीमारी की हालत में पाओगी...”

“क्यों ?...”

“यही दवा है, जो मुझे अब तक चलने-फिरने में मदद दे रही है...”

“आप इतनी शराब पीते हैं मगर नशा तो नहीं चढ़ता आप पर !—”

“नशा नहीं चढ़ता, यही तो खराबी है—” जयराज ने कहा—“शराब नशे के रूप में ऊपर न आकर, मेरा कलेजा जलाती है, और उसी में मुझे सुख मिलता है....मगर दुम्हारी मर्जी नहीं है, तो नहीं पिऊँगा, जाने दो...”

और वास्तव में उस दिन जयराज ने शराब नहीं छुई ।

सन्ध्याकाल तक लवंग जयराज के पास रही । जयराज के यहाँ खाना भी खाया उसने । अमीरों का स्वादिष्ट खाना खाकर आज उसे अत्यन्त तृप्ति हुई । उसके जीवन में आज एक अनोखा दिवस था, जब कि उसने परिश्रम द्वारा पैदा की हुई लिट्टी छोड़कर पूड़ियाँ खाई थीं ।

एक अमीर और एक गरीब—दोनों के हृदयों पर प्रेम के मादक

करो ने अपनी छाया कर रखी थी और वे दोनों प्राणी उस प्रेम-सरोवर में गोते खाते हुए अपनी अमीरी और गरीबी का अस्तित्व तक भूल गये थे ।

यह था प्रेम !

जिसके आगे संसार के समस्त भेद-भाव तुच्छ एवं हेय हैं ।



रात के दस बज चुके थे । सप्तमी का चन्द्रमा आकाश पर चमक रहा था । घोर निस्तब्धता छाई हुई थी । केवल चौधरी की चौपाल में हो-हल्ले की आवाज आ रही थी ।

खटोले पर पड़ी हुई लवंग करवटें ले रही थी और बुढ़िया बीच दरवाजे पर बैठी हुई पगडंडी की ओर देख रही थी ।

“भैया अब तक नहीं आये माँ !...” लवंग ने परेशानी की आवाज में पूछा :

“नहीं री !...” माँ ने खिन्नकर कहा—“आता होगा न !.... जरा देर हुई पंचम के आने में कि तू लगी घबड़ाने...”

“आधी रात होने को आई माँ !...” लवंग की आशंका तीव्र हो उठी थी—“पंचम भैया इतनी देर तो कभी नहीं करते थे...”

सुबह का गया-गया पंचम, अब तक न आया था । रीछ भी साथ नहीं ले गया था फिर उसके न आने का कारण क्या हो सकता है ?

“गरीबी के दिन हैं रे !”—बुढ़िया बोली—“बिताये नही बीतते... नहीं तो फूल-सा बेटा मेरा, चार पैसे के लिए दर-दर मारा-मारा फिरता !...”

“माँ !...मेरा दिल घबड़ा रहा है ...भैया को कुछ हो तो नहीं गया....”

“.....” बुढ़िया काँप उठी । कहीं सचमुच पंचम किसी आफत में तो नहीं पड़ गया ?

“तू दरवाजे पर टटरी लगाकर सो रह, मैं जरा चौधरी के घर जाती हूँ”—कड़कर बुढ़िया उठ खड़ी हुई और हाथ में लाठी लेकर चौधरी के चौपाल की ओर बढ़ी ।

लवंग ने उठकर भोपड़े का दरवाजा टटरी से बन्द कर लिया । दरवाजे से जो थोड़ा बहुत प्रकाश अन्दर आ रहा था, वह लुप्त हो गया और भोपड़ी के भीतर सूची-भेद्य अन्धकार छा गया । लवंग पुनः खटोले पर जा लेटी ।

परन्तु उसकी आँखों में नींद न थी । पंचम के न आने से उसका हृदय अत्यन्त व्यग्र हो रहा था और उस व्यग्रता में कभी-कभी जयराम के मादक चुम्बनों की याद आ जाती थी और लवंग का हृदय व्यग्रता एवं मादकता का क्रीड़ास्थल बन जाता था ।

बड़ी देर तक वह खटोले पर करवटें बदलती रही और नींद की मदहोशी ने, काले नेत्रों की पुतलियों पर अपना अधिकार जमाना प्रारम्भ कर दिया ।

अभी वह जाग्रत और निद्रितावस्था के मध्य में था कि उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे किसी ने भोपड़े की टटरी धीरे से खोली हो और अन्दर आकर उसके खटोले के पास खड़ा हो गया हो ।

लवंग अर्द्ध-निद्रितावस्था में थी । उसका हृदय धड़कने लगा था । मगर वह चुपचाप खटोले पर पड़ी रही ।

उसी समय उसके मुख और गर्दन पर किसी ने हाथ फेरा । चौंक कर उठ बैठी वह । देखा, एक आकृति खड़ी है, खटोले के पास—मनुष्याकृति !

“कौन है, माँ...” यद्यपि लवंग जानती थी कि उसकी माँ का

डीलडील इतना लम्बा नहीं है और यह है कोई पुरुष—फिर भी उसने पुकारा ।

वह आकृति लवंग के पास खटोले पर बैठ गई और लवंग के कन्धे पर अपना हाथ रख दिया—“धीरे से बोलो लवंग रानी !”—आकृति ने कहा ।

“कौन हो तुम !...” भयभीत स्वर में पूछा लवंग ने ।

“मैं हूँ—घन्ना !...”

“घन्ना !....” काँप उठी लवंग—“क्यों आये हो तुम यहाँ घन्ना !...”

“अपनी भोली सूरत से पूछो क्यों आया हूँ मेरी रानी !...” घन्ना ने लवंग का हाथ पकड़ लिया ।

“दूर रह कमीना, कुत्ता कहीं का !” लवंग रोष भरे स्वर में बोली—“गाँव की बहू-बेटियों पर डोरे डालते हुए शर्म नहीं आती... शोहदा-लुच्चा कहीं का !...”

“तुम्हारे चिल्लाने से कुछ फायदा नहीं होगा !...पास मैं कोई झोपड़ी भी नहीं कि कोई सुन लेगा । चिल्लाओ, जितना जी चाहे...”

आगे बढ़कर घन्ना ने निर्दयतापूर्वक लवंग की कलाई पकड़ कर उमेठ दी । लवंग चीख पड़ी । घन्ना ने लवंग को उठाकर खटोले पर पटक दिया । लवंग छुटपटा रही थी, उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे । मगर घन्ना ने ध्यान न दिया । उस पर तो कामान्धता का भूत सवार था ।

लवंग चीखती रही, चिल्लाती रही ।

उसी समय दरवाजे पर किसी विशालकाय जन्तु की छाया दृष्टि-गोचर हुई । भय से काँप कर घन्ना ने लवंग को छोड़ दिया, लवंग ने उस ओर देखा ।

“जम्भू !...” हर्ष की ध्वनि लवंग के मुख से निकल पड़ी, बीच दरवाजे पर अपने भैया के विशालकाय रीछ को देखकर ।

वह जम्मू ही था। भोपड़े में से लवंग की भयातुर चीखें सुनकर वह समझदार जन्तु खूँटा उखाड़कर और रस्सी तुड़ाकर उसकी सहायता को आ पहुँचा था।

धन्ना का भय से बुरा हाल था। वह जानता था कि पंचम अपने भयानक रीछ को न तो नकेल लगाता था और न चमड़े के पट्टे द्वारा उसका मुँह ही बाँधता था।

जम्मू के मुँह से दिशाओं को प्रताडित करती हुई एक भयानक गर्जना निकली और वह धन्ना की ओर झपटा।

“मुझे बचाओ लवंग !...इस रीछ से मुझे बचाओ....” धन्ना भाग कर लवंग के पीछे जा खड़ा हुआ।

परन्तु लवंग भी भयभीत हो रही थी, उस दुर्दान्त जानवर को खुगा हुआ देखकर। पता नहीं क्रोध में आकर वह भीषण जन्तु धन्ना की हत्या कर डाले !...

जम्मू लवंग के सामने आकर खड़ा हो गया। धन्ना के पैर भय से थर-थर काँप रहे थे। दरवाजे पर कोई रुकावट न देखकर वह दरवाजे की राह पर भाग चला परन्तु जम्मू उससे भी फुर्तीला था। अभी धन्ना भागकर बीच दरवाजे में ही पहुँचा था—कि जम्मू ने उसकी टाँग अपने भीषण मुँह द्वारा पकड़ ली।

चिल्लाकर धन्ना गिर पड़ा। दूसरे ही क्षण उस दुर्दान्त रीछ ने गिरे हुए धन्ना को अपने हाथों से उठाकर धम्म से जमीन पर पटक दिया और उसकी पीठ में अपने तीक्ष्ण नाखून धँसा दिये।



चौधरी की चौपाल का शोर-गुल बन्द हो चला था । सभी कंजर पर्याप्त मनोरंजन करके अपने-अपने भोंपड़ों को चल दिये थे । चौधरी भी दालान का सब सामान समेटकर, अन्दर सोने जा रहा था कि आ पहुँची पंचम की माँ, खुट-खुट लाठी ठेगती हुई ।

“सरुपा भौजी !...” बुढ़िया को देखकर चौधरी बोला—“बहुत दिनों पर दिखाई पड़ी । हाल-चाल तो सब अच्छा है न ?...”

“नहीं चौधरी देवर !...” बुढ़िया की आवाज शक्ति थी—“पंचम सुबह का शहर गया, अबतक नहीं लौटा है...”

“अब तक नहीं लौटा !—” आश्चर्य से बोला चौधरी—“रीछ तो साथ में है न ?...”

“नहीं—रीछ नहीं ले गया था...”

“तो !...” कुछ सोचने लगा चौधरी, मस्तक पर अँगुली रखकर—“उसे देखना जरूरी है भौजी !...मैं अभी जाता हूँ...”

चौधरी ने लम्बा-सा लट्ठ उठा लिया और पाँव में चमरौघा पहन कर तथा केसर को सावधानतापूर्वक रहने का आदेश देखकर, वह पगडंडी पर चल पड़ा । बुढ़िया भी उसके पीछे-पीछे चली ।

एकाएक बुढ़िया के भोंपड़े की ओर से किसी जानवर के भयानक चिंगाड़ की आवाज आई ।

“उफ् ! मादूम होता है कि रीछ छूट गया है”—बुढ़िया बोली ।

उसी समय किसी मनुष्य का आर्त्तनाद सुनाई पड़ा । दोनों डग बढ़ाते हुए भोंपड़े तक आये । देखा, रीछ घन्ना को पटक कर उसे काट रहा है और लवंग एक ओर भय से सिमटी खड़ी है ।

“जम्मू !” चिल्लाकर पुकारा बुढ़िया ने और तुरन्त ही वह भयानक रीछ घन्ना को छोड़कर अलग हो गया; कदाचित्त वह जान गया था कि अब लवंग के सहायक आ पहुँचे हैं ।

बुढ़िया ने जम्मू को खूँटे से बाँधा । घन्ना भयग्रस्त खड़ा था । उसे यद्यपि अधिक चोट नहीं आई थी, फिर भी रीछ का एक दाँत उसकी पीठ में घँस गया था, जिससे रक्तस्राव हो रहा था ।

“तू क्या करने आया था यहाँ ?—” क्रोधभरे स्वर में चौधरी ने पूछा ।

“मैं इधर से जा रहा था कि यह रीछ मुझ पर टूट पड़ा....” घन्ना ने कहा ।

“नहीं चौधरी काका !—” लवंग बोली—“यह मुझे तंग कर रहा था...”

“कमीना बदजात कहीं का !...” कहकर चौधरी ने उसे कई तमाचे जड़ दिये । घन्ना मर लटकाये एक ओर को चला गया ।

चौधरी भी हाथ में लट्ठ लेकर शहर की पगडंडी पर से आगे बढ़ा चन्द्रमा पश्चिमाकाश पर डूब चुका था और अँधेरी रात में सुनसान रास्ता बड़ा भयंकर लग रहा था—मगर चौधरी था कि निडर चला जा रहा था ।

शहर के छोर तक चौधरी चला गया परन्तु कहीं पंचम का पता न पाकर पुनः गाँव की ओर लौट पड़ा । रात्रि के तीन बज चुके थे, जब वह एक घने बरगद के पेड़ के नीचे पहुँचा, जो उसके गाँव से तीन सौ गज की दूरी पर था और कंजरोँ में भुतहा करके प्रसिद्ध था ।

ज्योंही चौधरी उस बरगद के नीचे पहुँचा तो उसे कुछ आइट मिली मगर उसके सम्हलने के पहले ही पत्थर का बड़ा-सा ढोंका पेड़ पर से गिरकर चौधरी की खोपड़ी पर आ लगा ।

वह पत्थर काफी बड़ा था और किसी बलिष्ठ पुरुष ने पेड़ पर से उसके सर पर दे मारा था, मुँह से भयानक चीख निकली और वह चेतनाहीन होकर वहीं गिर पड़ा ।

घन्ना !

चौधरी द्वारा बार-बार अपमानित घन्ना इस बार अपना अपमान सह न सका । उसकी प्रलयंकर बुद्धि ने भयानक बदला लेने का दृढ़

संकल्प कर लिया। वह उसी बरगद के पेड़ पर छिपकर, चौधरी के लौटने की प्रतीक्षा करने लगा।

और चौधरी लौटा तो जो कुछ हुआ वह अत्यन्त भयंकर था। घन्ना का बदला, चौधरी की मृत्यु का दूत था जैसे।

चौधरी के बेहोश होकर गिरते ही, घन्ना पेड़ पर से उतरा और शहर की ओर भाग चला। अब कभी कंजरो के गाँव में न आने का संकल्प कर लिया था उसने।

रात भर तक जागती हुई केसर, अपने पिता के लौटने की प्रतीक्षा करती रही। लवंग और बुढ़िया भी चौधरी की बाट देख रही थीं—परन्तु चौधरी न आया।

भोर हुई तो पगडंडी पर से जाते हुए कुछ कंजरो ने उस भुतड़े बरगद के पेड़ के नीचे बेहोश चौधरी को देखा। सर फट गया था। आस-पास की जमीन गुलाबी हो गई थी।

बेहोश चौधरी उठाकर घर लाया गया। केसर उसकी दशा देखकर जोर-जोर रोने लगी। लवंग और बुढ़िया को भी बहुत पश्चात्ताप हुआ, न जाने किस कुसायत में उन्होंने चौधरी को पंचम का पता लगाने भेजा !

चौधरी का उपचार होने लगा—परन्तु उसे होश न आ सका।



जयराम ने सचमुच शराब छोड़ दी। लवंग के प्यारे अनुरोध से उसे, जैसे नव-जीवन की प्रेरणा मिली। वह सोचने लगा—काश, लवंग उसके जीवन में दो-चार साल पहले ही आ गई होती, तो वह नष्ट न होता !

जयराम अब नित्य प्रातःकाल केवल चाय और आमलेट या टोस्ट

लेता था। लवंग आज चार दिनों से उसके यहाँ नहीं आ रही थी—परन्तु वह कोच पर बैठा हुआ उसकी प्रतीक्षा करता रहता था। उसे विश्वास था कि वह अवश्य आयेगी। सब तरह से निराश होकर जयराज के सन्तप्त हृदय ने लवंग के सन्निकट सद्धानुभूति की मात्रा देखी थी और इसीलिये, इतने अल्प समय में ही वह लवंग को अपने हृदय में अमूल्य स्थान दे चुका था।

लवंग के न आने से उसके हृदय में एक तरह का अभाव-सा प्रतीत हो रहा था आजकल—और जयराज अपने इस परिवर्तन पर स्वतः आश्चर्यचकित था।

उम समय, जयराज यही सब चिन्तायें लेकर बैठा था और लवंग की प्रतीक्षा कर रहा था। चातक की प्रतीक्षा का अन्त आ पहुँचा और आ गई लवंग।

परन्तु उस दिन लवंग का चेहरा गम्भीर था। मुख पर चिन्ता की लहरें लहरा रही थीं। आते ही उसने मुस्कुराहट जयराज की ओर नहीं देखा वरन् एक कोच का ढासना पकड़कर खड़ी रही, सर लटकाये।

“आओ लवंग !...” जयराज ने घसीट कर उसे अपनी गोद में भर लिया और तब उसने देखा कि लवंग आज न जाने क्यों दुःखित है। जयराज के हृदय में भी जैसे एक कष्टदायक यन्त्रणा-सी उठ खड़ी हुई, अपनी प्रेयसी का म्लान मुख देखकर।

“लवंग !...रानी !...” जयराज ने मधुमिश्रित स्वर में पुकारा लवंग को—“क्या बात है !...मुझे बताओ, तुम इतनी अस्त-व्यस्त क्यों हो !...”

जयराज की सद्धानुभूति का सहारा पाकर लवंग का हृदय रो उठा, वेदना तीव्रतर हो उठी। और नेत्रों में सावन-भादों उमड़ आया।

जयराज के बहुत हठ करने पर तब लवंग ने अपने भैया के घर न जाने तथा चौधरी के घायल होने की बात कही और बताया कि इसी कारण से वह कई दिनों तक आ न सकी थी।

जयराम नहीं जानता था कि उसकी क्रोधाग्नि का शिकार, वह मदारी ही था लवंग का भाई ।

“सब कुछ धीरे-धीरे ठीक हो जायगा लवंग !...धीरज रखो !—” जयराम ने सात्वना दो और लवंग अबोध बालिका-सी जयराम के वक्ष से लगी रही ।

“लवंग !...” जयराम ने लवंग की ठुड्डी ऊपर उठाकर कहा—
“एक बार मुस्करा दो लवंग ! केवल एक बार इन नयनों में हँसी का माधुर्य भरकर मेरी ओर देखो...”

लवंग के होठों पर मुस्कराहट आई और जयराम पर बिजली गिरा गई । जयराम ने उस कोमल शरीर को अपने बाँहों में आवेष्टित कर लिया और दूध पानी की तरह, दो जान, दो शरीर मिलकर एक हो गये ।

लवंग ने जयराम के मादक-प्रेम का प्रतीक, एक ऊष्ण चुम्बन अपने अधरों पर पाया और जयराम ने पाया लवंग की पुष्पमाला जैसी बाँहें अपने गले में ।



यद्यपि जयराम ने गुलशन के साथ अपमानजनक बर्ताव किया था परन्तु गुलशन ने सब कुछ भुला दिया, केवल बदला लेने की प्रबल इच्छा से । यही कारण था कि जब उसने देखा कि जयराम उसके यहाँ आज कई दिनों से नहीं आ रहा है तो उसने स्वयं बेहया बनकर जयराम के पास जाने की सोची ।

जयराम की हवेली के सामने वह तौंगे पर से उतरी और सीधे जयराम के कमरे की ओर बढ़ी । कमरे के दरवाजे पर पहुँचकर उसने जो

दृश्य देखा, वह उसे आश्चर्यचकित एवं क्रोधित कर देने के लिए काफी था ।

गुलशन को, लवंग को पहचानते हुए देर न लगी । वह अपनी प्रतिद्वन्दिनी कंजर-बाला को एक नजर में ही पहचान गई थी ।

वह उल्टे पाँव लौट पड़ी । सोच रही थी वह, यह जयराम भी कितना मूर्ख है कि मदिरा उपस्थित होते हुए भी शीतल जल में अपनी प्यास बुझाना चाहता है ।

सड़क पर आकर वह ताँगे पर बैठ गई । उसका इशारा पाकर तागाँ सेठ गङ्गादास का कोठी की ओर रवाना हुआ ।

रायबहादुर सेठ गंगादास मेज के पास बैठे हुए कुछ कागजात देख रहे थे । सामने दृष्टि उठाई तो गुलशन !

“तो तुम आ गई !”—सेठजी ने व्यंगपूर्ण स्वर में कहा ।

“आना ही पड़ा मुझे सेठजी !...” आगे बढ़कर गुलशन सेठजी के मेज तक चली आई—“आपने जयराम बाबू को मुझसे छीना, क्योंकि एक तवायफ का साथ करने से बरबाद हो जाने का डर था... मगर मैं पूछती हूँ कि गाँव की किसी जलील छोकरी को लेकर ऐश व इशरत में वक्त काटना क्या ठीक है !...क्या आप भी इसे ठीक समझते हैं...”

“क्या कह रही हो तुम !—” सेठजी उत्तेजित स्वर में बोले ।

“ठीक कह रही हूँ—” गुलशन दृढ़ स्वर में बोली—“जयराम बाबू आजकल गाँव की एक छोकरी के पीछे पागल हो रहे हैं ! आप मेरे साथ चलिये, मैं दिखला सकता हूँ...”

“चलो !...” झटके के साथ उठ खड़े हुए सेठजी और हाथ में पतली-सी छड़ी लेकर चल पड़े ।

शोफर कार लिये खड़ा था । सेठजी और गुलशन उसपर जा बैठे और कार चल दी ।

मगर वहाँ पहुँचकर निराशा ही प्राप्त हुई । जयराज अकेला कोच पर बैठा हुआ समाचार-पत्र पढ़ रहा था । लवंग चली गई थी ।

सेठजी ने क्रोधपूर्ण नेत्रों से गुलशन की ओर देखा—

और गुलशन आश्चर्यचकित-सी खड़ी थी ।



अभागा पंचम निरपराध ही जेल की हवा खा रहा था । अभी तक उसके मुकदमें की तारीख नहीं पड़ी थी । वह चुपचाप अपनी वेदना का भार सहन करता हुआ जेल में सड़ रहा था ।

उसे लवंग और बुढ़िया माँ की याद आती और वह जेल की सुदृढ़ दीवारें तोड़कर भाग जाने को व्याकुल हो उठता । मगर कर ही क्या सकता था वह !

अपने हृदय के अत्यन्त सन्निकट आई हुई कैसर की याद भी उसे सदैव व्यथित किये रहती । सोते-सोते वह लवंग, बुढ़िया और कैसर के स्वप्न देखा करता था ।

उसके हृदय में एक भीषण दावानल घबक रहा था । बदला लेने की तीव्र प्रेरणा उसे हर समय बेचैन किये रहती । उसके नेत्रों के समक्ष सदैव जयराज की सूरत नाचा करती थी और वह यह चाहता था कि यह आकृति, जो एकायक उसके नेत्रों के समक्ष नृत्य कर उठती है, यदि कहीं वास्तविक होती तो वह दौड़कर उसका गला टीप देता और अपने हृदय की प्रलयंकर प्रतिशोधाग्नि शान्त कर लेता ।

जयराज के प्रति उसके हृदय में भीषण घृणा थी—अगम्य क्रोध था । उसने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी कि इस जेल की चहार-दीवारी के

बाहर निकलते ही वह पहले पहल जयराज के सीने में अपनी खून की प्यासी उँगलियाँ चुभो देगा और जी भर कर रक्तपान करेगा ।

जयराज ही ने तो उसे बहन, माता तथा प्रेयसी से दूर कर रखा था ।

जयराज !

क्या जानता था वह बेचारा कि पंचम उसकी प्रेयसी लवंग का भाई है ।

लवंग !

जिसने जयराज के कामुक-हृदय में स्वच्छ प्रेम की धारा प्रवाहित कर दी—जिसने बोतल की मदिरा छुड़ाकर, उसे अपनी यौवनहाला पिलाई ।

वास्तव में जयराज ने आजकल मदिरा छोड़ दी थी । कभी-कभी तो उसका जी शराब पीने के लिए इतना व्याकुल हो जाता कि उसे लगता, जैसे अब वह शराब के बिना जीवित न रह सकेगा—फिर भी वह अपने मन पर कठोर नियन्त्रण रखता और शराब न छूता—न पीता ।

आज प्रातःकाल से ही जयराज का मन शराब के लिए अत्यन्त व्याकुल था । वह कमरे में इधर-उधर टहल कर उस व्यसन की याद भुलाना चाहता था और इसीलिए उसने चार कप चाय भी पी ली—मगर रह-रहकर उसका हृदय शराब की एक घूँट के लिए तरस जाता था ।

एक घूँट पी लेने में हर्ष ही क्या है—सोचने लगा वह । पन्द्रह बीस दिनों से कठोर नियन्त्रण की बेड़ी में बँधा हुआ मन, अन्त में बन्धन टूटकर निकल ही भागा ।

उसने आलमारी खोली । बोतल और प्याला निकाल कर मेज पर रखा, स्वयं भी कुर्सी पर बैठ गया । कम्पित करों ने बोतल का कार्क

खोलकर हलाहल प्याले में भरा और वह प्याला धीरे से तृषित अधरों की ओर बढ़ा—

कि किसी ने पीछे से उसका हाथ पकड़ लिया। चौंक पड़ा जयराज। गुलशन का हँसता हुआ चेहरा सामने आया।

“हज़ूर को अपने हाथ से पीने में ज्यादा तकलीफ होगी !”—आँखों पर तीर चढ़ाकर बोली गुलशन—“कनीज को यह इनायत बरूशें....”

और गुलशन ने जयराज के हाथ से प्याला ले लिया। कुर्सी के आर्म पर बैठकर उसने जयराज को मदिरा-पान कराना प्रारम्भ कर दिया। जैसे युगों के तृषित अधर शीतल जल पाकर तृप्त हो उठे हों।

जयराज कुछ न बोला—पीता गया और गुलशन पिलाती गई। बहुत दिनों से छूटा हुआ हलाहल पेट में जाकर दाढ़क ज्वाला बन गया। जयराज के नेत्र रक्तवर्ण हो उठे। हाँश हवाश जाते रहे।

उसने गुलशन की ओर देखा। उड़ते हुए मस्तिष्क की आँखों ने गुलशन के चेहरे पर लवंग की छाया देखी।

“लवंग !—” मदहोश में चीखकर जयराज ने गुलशन को अपने पास खींच लिया—“और पिलाओ लवंग !...तुम इसी तरह पिलाती रहो और मैं यों ही पीता-पीता मर जाऊँ....यही तमन्ना है...”

गुलशन ने दो जाम और पिलाये। जयराज जैसे बेहोश था। गुलशन को लवंग जानकर उसने इस प्रकार जकड़ रखा था, जैसे झोढ़ेगा ही नहीं।

गुलशन के कपटभरे हृदय में भी, एक क्षण के लिये, सद्भावना की एक क्षीण रेखा खिंच उठी, उस आवारे रईस का पागलपन देखकर। गुलशन को ऐसा लगा, जैसे जयराज सदैव उसकी गोद में इसी प्रकार मदहोश पड़ा रहे और वह उसके शुष्क चेहरे को युग-युग तक देखती रहे।

भावुकता आ गई थी, गुलशन के विचारों में—मगर केवल एक क्षण के लिये और इसी भावुकतावश उसने जयराज को नाम्र स्वर में

बतलाया कि अब उसे शराब न पीनी चाहिये, क्योंकि वह काफी पी चुका है ।

“लखना !...” पुकारा जयराज ने ।

और उसी समय पहुँच गई उस दरवाजे पर लवंग—अपने प्रियतम की खोज में परन्तु वहाँ का दृश्य देखते ही उसे अत्यन्त आत्मग्लानि हुई ।

लवंग को देखकर गुलशन की भावुकता भी विलीन हो गई । उसने प्याला भरा और जयराज के होठों से लगा दिया ।

देखता रही लवंग—दो क्षण तक बेसुध होकर अपना संसार उजड़ता हुआ देखती रही । वह पत्थर की मूर्ति बन गई थी जयराज का अपने साथ विश्वासघात देखकर, मगर जयराज का इसमें अपराध न था । वह तो आँधी का वेग था, जो उसे बहा ले जा रहा था ।

“देख !...” लवंग की ओर देखकर जयराज चिल्लाया—“लाख बार कह चुका हूँ कि जब हम दोनों साथ रहें, तब मत आया कर !... भाग !...अगर फिर कभी इधर कदम रखा—तो सर तोड़ दूँगा तैरा...”

जयराज ने लवंग को, लखना जानकर ये वाक्य कहे थे परन्तु लवंग का दिल शीशे की तरह टूट गया—यह सब सुनकर ।

वे टूटे हुए दिल के टुकड़े यत्नपूर्वक शरीर में छिपाये और टपक पड़ने वाले आँसुओं का वेग नयन-कोटरों में सम्हाले, लवंग लौट पड़ी ।

दरवाजे पर लखना खड़ा था । लवंग को तुरन्त लौट आते हुए देखकर उसे आश्चर्य हुआ । लवंग पास आ गई । लखना ने देखा, लवंग के नेत्रों में मदिरा के बदले आँसू है ।

लवंग ने अपनी पतली उँगली से जयराज की दी हुई सोने की अँगूठी निकाली और लखना के हाथ पर रखकर बोली—“इसे बाबू को दे देना...”

कहते-कहते नेत्रों ने कई बूँद आँसू जमीन पर टपका दिये—और लखना चौंकर, भरे हुए हृदय से जाती हुई लवंग को देखता रहा ।



बुढ़िया ने लवंग के सर पर हाथ रख दिया। उस स्पर्श में माता की ममता ओत-प्रोत थी। माता की सहानुभूति का सहारा पाकर लवंग की आत्मग्लानि और तीव्रतर हो उठी। रोते-रोते गाल भीग गये। हिचकियाँ बँध गई।

“आखिर तुझे आज क्या हुआ है, जो इस तरह रो रही है पगली !”—बुढ़िया ने पूछा।

“.....” लवंग ने रोने के अतिरिक्त कुछ न कहा। कैसे बताती वह कि आज उसका सारा संसार उजड़ गया था। निरीह पक्षी ने, तृण के कोमल तिनके चुग-चुग कर अब तक जो बसेरा तैयार किया था वह निर्दयी के हाथों में नष्ट हो चुका था।

“पंचम के लिये तो तबियत परेशान थी ही, अब तू भी रो-रोकर मुझे जिन्दा न रहने देगी—ऐसा जान पड़ता है...” बुढ़िया खीझकर बोली।

लवंग चुपचाप उठी। पानी का घड़ा हाथ में उठा लिया और नदी की ओर चल पड़ी। आँखों के आँसुओं को अंचल द्वारा पोंछ डाला।

नदी के किनारे केसर पहले से ही उपस्थित थी। वह भी चिन्तामग्न होकर पत्थर पर बैठी हुई थी। इस समय उसके दिल पर जो बीत रही थी, यह वही जान सकती थी।

पंचम को उसने अपना कोमल-हृदय समर्पण कर दिया था, परन्तु वह निर्मोही भी उसकी ममता त्यागकर न जाने कहाँ चला गया। एक पिता का सहारा था परन्तु वह भी आहत होकर चारपाई पर पड़ा था। उसके स्वस्थ होने की कोई आशा दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी।

लवंग चुपचाप केसर की बगल में जा बैठी। केसर ने लवंग की ओर देखा। नेत्रों में आँसू थे।

“चौधरी काका कैसे हैं!—” पूछा लवंग ने ।

“वैसे ही हैं—” केसर बोली—“घाव पर सेम का हलुवा रखा जा रहा है मगर कोई फायदा नहीं होता दिखाई पड़ता । होश तो आ गया है मगर बोल नहीं सकते....क्या होगा लवंग !....”

रोने लगी थी केसर पर लवंग ने उसे सान्त्वना देकर चुप कराया । वास्तव में केसर पर इस समय महान् विपत्ति घहरा उठी थी । चौधरी को जो चोट लगी थी, वह ऐसी जान पड़ती थी कि उसकी मौत बनकर आ गई है । चोट लगने के दिन से अब तक दस दिन व्यतीत हो जाने पर भी, चौधरी एक बार भी बोला न था—बोल ही नहीं सकता था ।

“एक बात कहूँ—” लवंग बोली—“शायद तुम्हें विश्वास न हो...”

“कहो...विश्वास करूँगी....”

“यह सारा काम धन्ना का है...”

“धन्ना का !...” आश्चर्य से दुहराया केसर ने ।

“हाँ !...जिस रात की यह घटना है, उस रात वह मेरे पास छेड़खानी करने आया था और चौधरी काका ने उसे तमाचे मारे थे.... जरूर उसका यह काम है । उसी दिन से वह गाँव में दिखाई भी नहीं पड़ रहा है....”

“मुझ दुखिया को उजाड़ दिया उस बेईमान ने...” सिसकती हुई बोली केसर । सिवाय सिसकने के और वह कर ही क्या सकती थी !

कुछ देर के बाद, जब धिरे आते हुए सघन अन्धकार ने उन दोनों को अपनी भीषण छाया दिखलाई तो दोनों उठीं और पानी भरकर अपने-अपने घरों की ओर चल दीं ।

बहुत दिनों के बाद उस दिन जयराज ने शराब पी थी—जी भर कर। यों तो उसे कोई बात दृष्टिगोचर नहीं हुई परन्तु यह निश्चय था कि कुछ दिन बाद उसका दुष्परिणाम जयराज को अवश्य भोगना पड़ेगा !

जयराज ने उस दिन इतनी अधिक शराब पी ली थी कि दिन भर और रात भर तक होश न रहा। लखना उसके पास रात भर बैठा रहा।

दूसरे दिन प्रातःकाल उसका !मस्तिष्क कुछ ठिकाने हुआ। उसने स्नान करके चाय पी। जब वह चाय पी रहा था, तभी लखना ने लवंग की लौटाई हुई सोने की अँगूठी चुपचाप उसके सामने मेज पर रख दी।

“यह तुम्हारे पास कैसे आई!—” पूछा जयराज ने।

“वह खुद आकर लौटा गई है सरकार!...” लखना बिच-किचाते हुए बोला।

“कुछ सोचा जयराज ने फिर पूछा—“कब आई थी वह!...”

“कल!...जब आप गुलशन बाई के साथ थे....”

“उफ्!...” कहकर जयराज ने अपना मस्तक पकड़ लिया। सारी बातें समझ में आ गईं।

वह आई होगी—उसे गुलशन की गोद में पड़ा हुआ, उसके हाथों से शराब पीते हुए देखी होगी—कितनी व्यथा हुई होगी उसे ?

जयराज पश्चात्ताप करने लगा।

“कुछ कहा था उसने!...”

“कहा था सरकार!...” लखना बोला—“कहा था कि बाबू से कह देना कि मैं अब कभी उनके पास न आऊँगी—मुझे भूलने की कोशिश करेंगे...”

“भूलने की कोशिश !...” जयराज पश्चात्ताप से विह्वल हो रहा था—“सबको भूल सकता हूँ मगर उसे नहीं भूल सकता । वह मेरे लिये सद्भावना की प्रेरणा बनकर आई थी—मुझे तड़पा कर यों ही नहीं जाने पायेगी...”

चाय का प्याला जयराज ने रख दिया और कोच पर आँखें बन्द कर लेट रहा । इस समय उसके हृदय में तीव्र हाहाकार मचा हुआ था । पश्चात्ताप की चोट उसके हृदय के टुकड़े-टुकड़े किये डाल रही थी ।

“लखना !...” एकाएक चिल्लाकर पुकारा जयराज ने, यद्यपि लखना अब तक वहीं खड़ा था ।

“मैं यही खड़ा हूँ सरकार !...”

“ले यह चाभी !...” चाभी का गुच्छा फेंक दिया जयराज ने लखना के सामने—“वह आलमारी खोल डाल और उसमें जितनी बोतलें-प्यालियाँ है, उसको ले जाकर बीच सड़क में पटक आ....”

“अपने को सम्हालिये छोटे सरकार !...”

“तू करता है या नहीं, मैंने कहा है !”—गरजा जयराज ।

और डरते-डरते लखना ने आलमारी खोली । वह जानता था कि आवेश में आकर इस समय तो जयराज बोतलें और प्यालियाँ फेंक आने को कह रहा है मगर पागलपन उतर जाने पर कदाचित्त वह उसी से फिर शराब माँगे ।

लखना, बोतलों और प्यालों को एक टोकरी में भरकर अपनी कोठरी में रख आया ।

जयराज पुनः दुर्दमनीय विचारों में निमग्न, कोच पर लेटा रहा । आँखें बन्द थीं । हृदय में तूफान-सा उठ रहा था ।

“मैं अन्दर आ सकती हूँ मेरे राजा !...” आवाज आई, दरवाजे पर से और जयराज ने सर ऊपर उठाकर देखा ।

गुलशन खड़ी थी । आँखों पर तीर चढ़ाकर उसने जयराज की ओर फेंका ।

जयराज एकाएक कोच पर से उठ खड़ा हुआ । उसके नेत्र लाल हो आये थे । शिथिलता से पैर काँप रहे थे ।

“नागिन !...” चिन्ताया वह—“मुझे डँसकर, बरबाद कर डाला । अब क्या चाहती है तू—क्यों आई है तू यहाँ !”

कुछ अप्रतिभ हुई गुलशन मगर फिर उसने कहा—“धीरे बोलो मेरे सरकार ! तबियत ठीक नहीं है तुम्हारी—”

और उसने चाहा कि वह जयराज का हाथ पकड़कर कोच पर लिटा दे परन्तु जयराज ने उसका हाथ निष्ठुरतापूर्वक झटक दिया ।

“मैं बिल्कुल ठीक हूँ...मुझे न झुओ...चली जाओ यहाँ से....”

“मैं माफी माँगने आई हूँ मेरे सनम !”—गुलशन ने कहा—
“कल आपको शराब पिलाकर मैंने दरअसल बहुत बड़ी गलती की थी....”

गुलशन वेश्या थी—उसने वेश्या जैसा निष्ठुर हृदय भी पाया था—परन्तु इधर वह कई दिनों से देख रही थी कि वह जयराज के प्रति अनायास ही आकृष्ट होती जा रही है ।

यद्यपि गुलशन ने जयराज से प्रतिशोध लेने का संकल्प किया था मगर अब उसका वही संकल्प जयराज के प्रति आकर्षण में परिवर्तित हुआ जा रहा था ।

गुलशन वेश्या थी—और नारी भी थी और यही थी नारी-हृदय की विशेषता ।

आज रातभर गुलशन जागती रही थी और उसने यह समझ लिया था कि उसका कठोर-हृदय भी अब मोम-सा पिघलने लगा है ।

गुलशन ने यह भली-भाँति समझ लिया था कि उसे रुपया देनेवाले बैकड़ों रईस मिल सकते हैं मगर जयराज-सा उखड़े दिल वाला रईस शायद न मिल सके ।

गुलशन के हृदय में यह परिवर्तन आकस्मिक हुआ था ।

“माफी माँगने आयी हो !—” थोड़ी देर तक चुप रहकर बोला

जयराज—“आज एक वेश्या को माफी माँगते हुए सुनने का पहला अवसर है...नहीं तो, तुम लोग बदला लेती हो, माफी नहीं माँगती...”

“मुझे ज्यादा शरमिन्दा न कीजिये...”

“चली जाओ—नहीं तो मुझे मजबूरन नौकर को पुकारना पड़ेगा...लखना...”

मगर लखना के आने के पहले ही गुलशन घूम पड़ी और चली गई । जोर से पुकारने से हो अथवा अन्य किसी कारण से, जयराज के सीने में यन्त्रणा हुई और वह वहीं जमीन पर कलेजा थामकर बैठ गया ।

पुकार सुनकर लखना आया तो गुलशन चली गई थी और हतशूल से पीड़ित जयराज जमीन पर लेटकर छुटपटा रहा था ।

“सरकार !....”

“मुझे...मुझे उठाकर कोच...कोच पर लिटा दे लखना !...”
टूटे-फूटे शब्दों में कहा जयराज ने ।

और लखना ने धीरे से उठाकर जयराज को कोच पर लिटा दिया । उसका बदन मरे हुए साँप जैसा ऐंठा जा रहा था । मुँह से आर्त्तनाद निकल रहा था ।

“सरकार !...” धीमें स्वर में पुकारा लखना ने ।

“.....” जयराज ने उसकी ओर देखा ।

“थोड़ी-सी पी लो सरकार ! दर्द दूर हो जायगा...”

“चुप...चुप रह कमीना कहीं का !”—जयराज कराहते हुए बोला—“मर जाऊँगा मगर पीऊँगा नहीं....”

और लखना चुप हो गया ।

दो दिन व्यतीत हो गये—

परन्तु जयराज के सीने की यन्त्रणा कम न हुई । रायबहादुर गंगा-दास परेशान हो उठे थे । नामी-नामी डाक्टर आये थे और दवा देकर चले गये परन्तु किसी भी दवा से कुछ फायदा नहीं हो रहा था ।

इस हतशूल की जो दवा थी, वह जयराज जानता था परन्तु उसे

पी न सकता था । एक बार की गलती ने तो उसे उसकी प्रेयसी लवंग को छुड़ा दिया तो वह बार-बार वही गलती कैसे कर सकता था ?

जयराज के सीने में यन्त्रणा थी और थी मानसिक व्यथा । लवंग को याद कर उसका हृदय भीषण-यन्त्रणा से भर जाता था । कई बार लखना ने कहा भी कि लवंग को बुला लाऊँ परन्तु ग्लानि-वश जयराज ने स्वीकार न किया ।

वह कौन-सा मुँह लेकर लवंग को बुलायेगा ?



उस्ताद ताल खॉ अत्यन्त आश्चर्यचकित हुआ, गुलशन को अस्त-व्यस्त चारपाई पर पड़े हुए देखकर कि उसके नेत्रों के कोरों पर आँसू की दो बूँदें चमक रही हैं, जो अवसर पाकर सुख कपोलों पर छटक पड़ना चाहती हैं ।

उस्ताद गुलशन की चारपाई के पास आ रहा—“क्या हुआ बीबी तुम्हें ? किसलिये इस कदर मायूस नजर आ रही हो !...” पूछा उसने ।

“क्या बताऊँ उस्ताद !....कहा नहीं जाता...”

गुलशन के कपोलों पर वे आँसू की बूँदें, चमकती हुई रेखायें खींच कर, नीचे टुलक पड़ीं । उस्ताद चौंक पड़ा ।

“क्या हो गया है तुम्हें !....कुछ बताओ भी तो...”

“उसने आज फिर मेरी तौहीन की है उस्ताद !...”

“किसने !....” पूछा ताल खॉ ने ।

“उसी जयराज ने...” धीमे स्वर में उत्तर दिया गुलशन ने ।

“जयराम ने तुम्हारी तौहीनी की है !...” उस्ताद व्यंगपूर्ण स्वर में बोला—“वह तो ऐसा पहले भी कई बार कर चुका है....तब तो गुस्सा आता था और आज रोना आ रहा है तुम्हें !...सख्त ताज्जुब है...” उस्ताद रुका, पुनः बोला—“गुलशन ! तुम्हारा दिल तो काबू में है न...”

“.....” गुलशन कुछ न बोली ।

“चुप हो तुम !...” उस्ताद का स्वर कुछ तोखा हो गया था—“याद रखो गुलशन, गुस्सा उसे आता है, जो ताकतवर होता है और रोना उसे आता है, जो कमजोर और बुजदिल होता है...”

“नहीं उस्ताद !...” बोली गुलशन—“गुस्सा उसे आता है, जो निहायत कमजोर होता है और रोना उसे आता है, जो सब कुछ कर सकने की ताकत रखते हुए भी, कुछ नहीं कर सकता...”

“गुलशन !—” उस्ताद ने तीव्र स्वर में कहा—“तुम्हें आज क्या हो गया है !...अपने दिमाग को अभी से समझालना तुम्हारे हक में बेहतर होगा !”

“मुझे इस पेशे से नफरत-सी होती जा रही है उस्ताद !—” गुलशन ने साहस संवरण कर कहा ।

“नफरत !...” ताज्जुब से चीख उठा उस्ताद ताल खाँ ।

“हाँ उस्ताद !”—गुलशन गीली आवाज में बोली—“मैं देखती हूँ कि जयराम गाँव की एक छोकरी के पीछे पागल हो रहा है और मेरी बार-बार तौहीन वह इसलिये करता है कि मैं तवायफ हूँ...तुफ है, इस पेशे पर...”

“चुप रह ! नान्हीज छोकरी !...” गरजा उस्ताद—“मेरी तमाम नसीहतों को धूल में मिलाकर, मेरी उम्मीदों पर पानी फेर देना चाहती है !...तुम यह नहीं देखती कि आज तुमपर सारा शहर फिदा है । तुम्हारी आँखों के एक तीर पर रुपयों की बारिश होने लग गयी है...”

“.....” चुप रही गुलशन ।

“तुम यह नहीं जानती कि तुम्हारे इस नाजुक बदन को, लड़कपन से ही, मैंने अपने हाथों सवारा है—दिल में यह उम्मीद रखकर कि चन्द सालों में शहरी परवानों को एक ऐसी शमा पेश करूँगा कि वे उसपर तड़प-तड़प कर अपनी जानें कुर्बान करेंगे...और आज वही शमा अपने आप गुल हो जाना चाहती है...”

“ओह, एक यतीम लड़की को तुमने इसलिये पाल-पोसकर बड़ा किया कि वह जवान होकर इन्सानी कुत्तों की प्यास बुझाये और सब कुछ पास होते हुए भी दुनिया की निगाहों में जलील बने !” गुलशन ने कहा । इसके पहले उसने कभी उस्ताद ताल खाँ के सामने इतने साहस से बातचीत न की थी ।

“बेइमान लड़की ! तू मेरे अहसानों को एकदम भूल जाना चाहती है !”—उस्ताद ने आगे बढ़कर चट्ट-चट्ट गुलशन के गालों पर कई तमाचे जड़ दिये ।

“मुझे मार डालो उस्ताद मगर मैं अब यह पेशा न करूँगी...न करूँगी...”

“मैं तेरी दवा अभी किये देता हूँ...”

कहता हुआ उस्ताद चला गया, बाहर से साँकल बन्द करता हुआ । गुलशन चारपाई पर पड़ी सिसकती रही । आज उसके हृदय में अपने पेशे के प्रति अपार घृणा उत्पन्न हो गई थी । वह भी अब एक गृहस्थ स्त्री की तरह अपना जीवनयापन करने को लालायित थी ।

वह भली प्रकार समझ गई थी कि रूप-यौवन सब कुछ पास होते हुए भी वह लोगों की दृष्टि में अभिनन्दनीय नहीं हो सकती । लोग उसे एक ऐसी कुतिया समझते हैं जिसके पीछे सैकड़ों पागल कुत्ते फिरा करते हैं ।

तभी कोठरी का दरवाजा खुला और एक हट्टे-कट्टे गुण्डे के साथ उस्ताद ताल खाँ भीतर आया । गुलशन काँप उठी ! वह पीरू गुण्डा था—शहर का छुटा हुआ बदमाश !—शराब के नशे में मदमस्त ।

“पीरु !...” उस्ताद उस गुण्डे से बोला—“इस छोकरी का दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ गया है...तुम इसे चाहे जैसे ठीक कर सकते हो...”

“आप खातिरजमा रखें !”—बोला वह गुण्डा—“आज तक मैं ऐसी सैकड़ों छोकरियों का मिजाज ठिकाने लगा चुका हूँ...”

पीरु आगे बढ़ा । अपने बलिष्ठ हाथों द्वारा गुलशन को पकड़ लिया उसने । गुलशन चिड़िया-सी छुटपटा उठी मगर उस दैत्याकार गुण्डे के आगे उसका रोना-छुटपटाना सब निष्फल गया ।

पीरु ने गुलशन को चारपाई पर लिटाकर पटक दिया और अस्त-व्यस्त हुई साड़ी खींचकर दूर फेंक दी । बिबल गुलशन के हाथ-पैर एक डोरी द्वारा चारपाई से बाँध दिये गये ।

पास ही चमड़े का एक हंटर टँगा था । उसे उठाकर पीरु ने सट्ट-सट्ट शरीर के नग्न-स्थलों पर मारा । गुलशन के मुख से हृदय-विदारक चीख निकल पड़ी ।

“बोल ! सीधे से काम करेगी या नहीं ?”—पूछा उस्ताद ने ।

“.....” चुप रही गुलशन, जैसे आज वह अपने भाग्य का निर्णय ही कर लेना चाहती थी ।

“और मारो पीरु !...”

पीरु ने कई हण्टर और जमाये । कोमल नग्न अंगों पर चमड़े का हण्टर, चमड़ी ऊधेड़ता हुआ सट्ट-सट्ट पड़ने लगा । मगर गुलशन सिवा रोने-चिल्लाने के और कुछ न बोली ।

“आप थोड़ी देर के लिये बाहर जाँय उस्ताद !...” पीरु ने कहा ।

उस्ताद कमरे के बाहर आकर खड़ा हो गया । पीरु ने भीतर से किवाड़ बन्द कर लिया । अन्दर से गुलशन का चीखना-चिल्लाना और बढ गया ।

“छोड़ दे पाजी बदनात !...क्या कर रहा है...” अन्दर से गुलशन की आवाज आई ।

पाँच मिनट तक रोना-चिल्लाना जारी रहा, इसके बाद शान्ति छा गई। पसीना पोंछता हुआ पीरू बाहर निकला।

“क्या हुआ ?”—पूछा उस्ताद ने।

“बेहोश हो गई है”—पीरू बोला—“अभी बहुत नाजुक है न !...होश आते ही, होश ठिकाने आ जायेंगे..”

उस्ताद ने पीरू के हाथ पर पाँच रुपये रख दिये और वह चला गया।



उजेली रात चाँदनी की सफेद चादर ताने निस्तब्ध पड़ी थी। कंजरी के गाँव की पगडंडी सूनी-सूनी-सी थी। पास के खेतों में कभी-कभी शृङ्गाल बोलने लगते थे, जिससे उस भीषण नीरवता में व्याघात पड़ जाता था।

आधी रात बीत चुकी थी।

परन्तु लवंग और बुढ़िया दोनों अब तक जाग रही थीं। गिर पड़ते-से दीखने वाले भ्रूषण के भीतर खटोले पर बैठी थीं वे दोनों और पंचम के विषय में सोच-सोचकर आँसू बहा रही थीं; आँसू बहा-बहाकर सोच रही थीं।

“भैया कहाँ होंगे माँ !”—लवंग सिसक रही थी।

“पगली ! मुझसे इस तरह पूछ रही है, जैसे मैं जानती ही तो हूँ”—बुढ़िया की भी आवाज ऐसी मालूम दे रही थी, जैसे नेत्रों के आँसुओं ने उसे भिगो दिया हो—“रो मत बिढ़िया ! तेरा भैया कभी न कभी तो आयेगा ही..”

“ऐसा लगता है माँ...” बोली लवंग—“जैसे हमने पंचम भैया

को हमेशा के लिए खो दिया हो....क्या हम-तुम शहर चलकर उन्हें खोज नहीं सकते माँ !”

“शहर बहुत बड़ा है री !...हम दोनों माँ-बेटी कहाँ पार पा सकती हैं”—बुढ़िया ने कहा ।

“तुम नाहक ही आगा-पीछा कर रही हो माँ !...कल शहर चलो, हम अपने पंचम भैया को खोज निकालेंगी....”

“दोनों का चलना ठीक न होगा !”—बुढ़िया बोली—“जम्मू को दाना-पानी कौन देगा !...”

“रीछू को केसर के घर छोड़ आयेंगे !”—

“केसर के घर !”

“हाँ !...”

“केसर का बाप यों ही अब तक जरूमी होकर पड़ा है—इमारे ही लिये तो ! न मैं चौधरी को पंचम की खोज में भेजती, न उसकी ऐसी गत होती । बेचारा अब तक चारपाई पर पड़ा है । अच्छा होने का कोई आसरा नहीं...अब तू कह रही है कि जम्मू को भी केसर के सहारे छोड़ दें”—बुढ़िया ने कहा ।

“हर्ज ही क्या है माँ !”—

“हर्ज !...पगली पूछती है, हर्ज ही क्या है !”—बुढ़िया ने आश्चर्य का भाव दिखाया—“जैसे कुछ समझती ही नहीं....जैसे केसर को हमने बड़ा सुख दिया है, जो उस रीछू का बोझ भी दे डालें....”

“केसर जरा भी बुरा न मानेगी माँ !”

“क्यों बुरा मानेगी ! तुझसे पटती जो है न !”—बुढ़िया व्यंगात्मक स्वर में बोली—“अच्छा, तो कल तुम्हीं चलो जाना जम्मू को लेकर और बाँध आना उसे केसर के दरवाजे पर ।”

“बहुत अच्छा !”—कहा लवंग ने ।

और करवट लेकर सोने का उपक्रम करने लगी परन्तु नींद तो जैसे

उसके नेत्रों से रूठ बैठी थी । बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे निद्रा न आ सकी । बुढ़िया जल्द ही सो गई ।

निन्द्रा आँखों में न आई परन्तु हृदय पट पर विचारों की शृङ्खलायें आने-जाने लगीं । लवंग चाहती थी कि वह उन कष्टदायक बातों को न सोचे परन्तु वे बातें थीं, जो रह-रहकर उसे याद आ जाती थीं ।

आज कई दिनों से लवंग जिस दावानल में सुलग रही थी, उसे वही जानती थी, फिर भी अपनी आकृति पर प्रसन्नता का आवरण डाले रहती थी, ताकि अपने भैया के शोक में व्याकुल हो उठती बुढ़िया माँ को, उसका दुख देखकर चोट न पहुँचे ।

जयराज की अवहेलना ने लवंग का हृदय तोड़ दिया था । क्यों न टूटता उसका हृदय, जबकि स्वयं अपने नेत्रों द्वारा अपना सर्वस्व लुटते देखा था ।

परन्तु लुटेरा था कौन ?

एक वेश्या ! उसका आँधी-सा यौवन और रूप !—जिसके वेग में सूखे पत्ते-सा जयराज इधर-उधर उड़ रहा था ।

लवंग दुर्दमनीय विचारों के आवेग को न सहन कर सकने के कारण कदाचित् सिसकने लगी थी, तभी तो बुढ़िया ने करवट ली और पूछा—
“रो क्यों रही है ?”

“रो कहाँ रही हूँ माँ !—” लवंग ने कह दिया ।

परन्तु यदि वहाँ दिन का प्रकाश होता तो बुढ़िया देख सकती कि लवंग के मदभरे नयन लाल-लाल टमाटर जैसे हो रहे हैं और उसकी छाती भाथी-सी उठ-बैठ रही है ।

“अभी सिसक तो रही थी तू ! बोल, क्यों रोती थी ?—”

“अब नहीं रोऊँगी माँ !—” कह दिया लवंग ने ।

“नहीं रोयेगी !...कहती है, अब नहीं रोयेगी !—” बुढ़िया बड़बड़ाने लगी थी—“मैं पूछती हूँ कि पञ्चम के लिये तू क्यों रो-रोकर मर रही है और मर-मरकर रो रही है ? मुझे देख ! मैं उसकी माँ हूँ ।

नौ महीने तक कष्ट सह-सहकर अपने पेट में उसे पाला था मैंने—कभी आ ही जायगा । रोने से फायदा !”

लापरवाह बुढ़िया क्या जान सकती थी कि लवंग के उस सिसकने के भीतर क्या गुप्त भेद है ?

वार्तालाप रुक गया और नींद के थपेड़ों ने दोनों को मार-मारकर अचेत कर दिया ।

प्रातःकाल !—

जब कि बालसूर्य रात की अलसाई हुई नींद से उठकर, अँगड़ाइयों लेकर खिलखिला उठा तो पास का पीपल स्वर्गीय किरणों से रंजित हो गया ।

नदी के तट पर केसर और लवंग बैठी थीं, एक दूसरे के गले में बाँहें डालकर ।

“काका कैसे हैं ?” लवंग ने पूछा ।

“सर का घाव तो अच्छा हो चला है । आशा है, अच्छे हो जायेंगे जल्द ?” केसर ने कहा—“आज तो बोले भी थे...”

“बोले थे !—”

“हाँ !...मुझे बेटी कहकर पुकारा था और पानी माँगा था”—

“ईश्वर करे जल्द अच्छे हो जाँय—” लवंग बोली—“हमारे लिये ही यह सब हुआ । तुम मुझे माफ न करोगी केसर !...”

“कैसी बातें कहती हो मेरी रानी !—” कस लिया केसर ने लवंग को अपनी बाँहों में—“तुम्हारा इसमें क्या अपराध था ?”

“मेरे भैया को ही तो खोबने चौधरी काका गये थे !—”

“वे तुम्हारे भैया थे तो क्या मेरे कुछ नहीं थे लवंग !—” केसर हा गला भर आया और आँसुओं ने गालों पर भीगी हुई रेखायें खींच दी थी ।

“अच्छा ! अब तो मुझे छोड़ दो—” लवंग ने कहा—“देया रे !

तुम तो दिन पर दिन मर्द बनती जा रही हो ! इतना कसकर पकड़ा था कि मेरा...”

लवंग के इस हास्य पर केसर हँस पड़ी ।

कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं ।

“केसर !...”

“कहो !”

“भैया का पता लगाने के लिये हम और माँ शहर जायँगी आज—”
लवंग ने कहा—“और जब तक भैया का पता नहीं लगेगा, तब तक शहर में रहकर उनकी खोज करेंगी...”

“पर शहर में रहने के लिये रुपया चाहिए !—”

“हम लोग भीख माँग लेंगी केसर ! गरीबों को भीख माँगने में हर्ज ही क्या है ?”

“ठीक कहती हो”—केसर बोली—“क्या बताऊँ, अगर दादा की तबीयत ठीक होती तो मैं भी चलती...”

“हम जल्द ही आ जायँगी केसर ! तब तक मैं भैया के जम्भू को तुम्हारे पास छोड़ जाऊँगी...” लवंग ने कहा ।

“ठीक होगा”—गम्भीर स्वर में बोली केसर—“मैं एक दिन खुद तुमसे उनका रीछ माँगने वाली थी—सोचा, वे न सही, उनका रीछ ही सही । दिल बहलाने के लिये कुछ चाहिये न लवंग !...फिर अब तो तुम भी जा रही हो । जाने कब तक लौटोगी ? यहाँ रहती थी तो कम से कम मेरे सूने दिल में एक धीरज-सा बँधा रहता था ।”

“मैं जल्द लौटूँगी केसर !—”

“क्या जाने, कब तब लौट सको !”—मलिन हँसी हँसकर बोली वह—“शहर में बहुत से आकर्षण होते हैं । शायद तब केसर की याद न आवे...”

लवंग कुछ न बोली ।

थोड़ी देर बाद दोनों पानी का घड़ा लेकर उठ खड़ी हुई ।

उसी दिन !—

जम्मू को केसर के दरवाजे पर बाँधकर, लवंग और बुढ़िया शहर को चल पड़ीं—पंचम की तलाश में ।



लखना ने शीशे के गिलास में भरा हुआ पानी जयराज के होठों से लगा दिया । जयराज अब तक अस्वस्थ था यद्यपि और दिनों से आज उसकी तबीयत कुछ ठीक थी । डाक्टरों के सतत् प्रयत्न तथा रुपयों के प्रभाव से उसका हृत्शूल कुछ कम हो चला था । स्वामिभक्त लखना सदैव जयराज की चारपाई के पास उपस्थित रहता था ।

पानी पीने से जयराज ने अपने अन्दर एक प्रकार की ठंडक अनुभव की । लखना ने उसे सहारा देकर चारपाई पर लिटा दिया ।

“इधर वह आई थी लखना !”—पूछा जयराज ने ।

“लवंग की बात पूछ रहे हैं छोटे सरकार...” सहानुभूतिपूर्ण स्वर में बोला लखना और धीरे-धीरे जयराज का सर दाबने लगा ।

“हाँ !....लवंग उस दिन की गई फिर नहीं आई न !”—

“नहीं सरकार !”—लखना बोला—“अब वह नहीं आयेगी, हृदय को बहुत चोट दी है, सरकार आपने !”

“तू भी मुझे ही अपराधी समझ रहा है लखना !”—आहत स्वर में जयराज बोला—“ठीक है...ठीक है...अपराध मेरा ही है । नदी का स्वच्छ जल छोड़कर नाली का पानी पीने चला था न !....”

“शायद अब वह कभी न आयेगी सरकार !”—

“यह निश्चय है ! अब वह नहीं आयेगी !”—जयराज के नेत्रों के कोने अश्रुकों द्वारा भोंग गये ।

“एक बात कहूँ सरकार !...”

“कहो !...”

“मुझे एक बार उसके पास जाने दें...” लखना ने कहा—“मैं उससे कहा-सुनी करके, हाथ-पाँव जोड़कर, उसे यहाँ लाऊँगा।”

“वह नहीं आवेगी !”—

“आयेगी सरकार ! आपकी तबीयत खराब होने का समाचार सुनकर वह दौड़ती आयेगी। आप मुझे जाने की आज्ञा दें...”

“नहीं !....” चुप हो रहा जयराज।

लखना सर दाबता रहा।

और जयराज चुपचाप पड़ा हुआ न जाने क्या-क्या सोचता रहा। एकाएक जयराज उठकर बैठ गया और चारपाई से नीचे उतर पड़ा।

“मेरा कोट मुझे पहना दे लखना ! और तू भी चलने को तैयार हो जा। शोफर से कार तैयार करने को कह दे....”

“कहाँ जायेंगे सरकार !”—पूछा लखना ने।

“उसके पास, जिसने मेरे सीने में आग लगा रखी है....”

“समझा नहीं सरकार मैं !”—

“वह खुद नहीं आयेगी...मगर मैं तो जा सकता हूँ वहाँ तक...”

“आपको तबीयत ठीक नहीं सरकार ! आप लेटे रहें। मैं अभी जाकर उसे लिवा लाऊँगा”—

“नहीं लखना, नहीं !”—जयराज बोला—“मैं चलेगा...जल्दी कर !”

लखना ने जयराज को कोट पहना दिया और हाथ में पतली-सी छड़ी दे दी। दोनों बाहर आये।

शोफर ने तुरन्त कार तैयार की और लखना तथा जयराज को लेकर वह कार कँजरो के गाँव की ओर भाग चली।

कार की तेजी से भी तेज दौड़ रहा था जयराज का व्यथित हृदय।

सोच रहा था वह, क्या वह मुझे माफ कर देगी ? क्या वह अपने हृदय की सारी ग्लानी छोड़कर उसके पास चली आयेगी ।

नहीं !—शायद वह ऐसा न करे । औरतों का हृदय कोमल भी होता है और कठोर भी । मेरी अवहेलना तथा विश्वासघात देखकर, वह कितनी क्रुध हुई होगी, कितनी वेदना हुई होगी उसे ?

वह उसे क्षमा नहीं कर सकती !

नहीं !

नहीं !!

और जयराम का हृदय ग्लानि से भर गया । उसने दोनों हथेलियों के बीच अपना मुँह छिपा लिया । उसे लगा जैसे लवंग की आकृति उसके चारों ओर नृत्य करती हुई । व्यंगपूर्वक हँस रही हो, जैसे दुनिया भर की अवहेलना-जनित कम्पन उसके अवयव में भर उठा हो ।

“लखन!....” चिल्ला उठा जयराम ।

“जी सरकार !...” झाड़वर के पास बैठा हुआ लखना बोला ।

“मोटर रोक दे और घर की ओर चल...”

“बहुत अच्छा सरकार !”—लखना ने कहा ।

परन्तु मोटर मुड़ी नहीं । वह अचिराम गति से आगे भागती चली गई और तुरन्त ही प्रगाढ़ चिन्ता में लीन हो जाने के कारण जयराम ने इस पर ध्यान भी न दिया ।

जयराम की तन्द्रा तब टूटी, जब एक हलके झटके के साथ कार रुकी ।

जयराम ने आश्चर्य के साथ अपने चारों ओर देखा ।

कच्ची पगडंडी और पास ही से बहती हुई नदी और नदी के किनारे एक पत्थर पर, उधर की ओर पीठ कर बैठी हुई एक कंजर बाला और पास ही में रखा हुआ मिट्टी का घड़ा ।

एक नजर में ही देख गया यह सब जयराम और तब छड़ी लेकर धीरे से कार पर से उतर पड़ा । लखना ने उसे सहारा दिया ।

“लखना ! कौन है वह ?”—पूछा जयराज ने, उस लड़की की ओर संकेत करके ।

“वही है सरकार ! चलिये धीरे-धीरे....”

जयराज छड़ी के सहारे उस ओर बढ़ा, जहाँ प्रगाढ़ चिन्तन में तन्मय वह लड़की बैठी हुई थी । उसकी पीठ उस ओर थी । विचारों में वह इतनी तल्लीन थी कि कार का रुकना और इन लोगों का आना, जान न सकी थी वह ।

धीरे-धीरे जयराज और लखना जाकर उस लड़की के पीछे खड़े हो गये । उस लड़की को फिर भी खबर न हुई, वह शायद रो रही थी । हिचकियाँ लेने की आवाज जयराज के कानों में पड़ी और वह बेसुध-सा हो उठा ।

चौंक पड़ी वह लड़की, अपने कंधे पर किसी का स्पर्श अनुभव कर । उसकी विचार-शृंखला में विघ्न पहुँचा और उसने आश्चर्य के साथ सर घुमाकर पीछे की ओर देखा ।

और उस लड़की का मुँह देखते ही चिहूँक कर जयराज ने उसके कंधे पर से अपना हाथ हटा लिया । वह कोई और ही थी — लवंग नहीं परन्तु लवंग जैसी ही धोती पहने हुए थी ।

“माफ करना मुझे—” जयराज शिथिल स्वर बोला—“मैंने समझा लवंग होगी...”

“लवंग !.....” लड़की आश्चर्य भरे स्वर में बोली—“तो क्या लवंग को आप जानते हैं ?...”

“जानता हूँ....और अच्छी तरह जानता हूँ”—जयराज डगमग पैरों से घूम पड़ा, जाने लगा ।

“आप बीमार मालूम होते हैं बाबू !”—लड़की ने कहा—“आपको कौन-सा मर्ज है ?”—

“मर्ज...” घूमकर, जरा रुककर बोला जयराज—“एक अभागे इन्सान के साथ सहानुभूति दिखानेवाली कौन हो तुम !—”

“मुझे केसर कहते हैं—मैं चौधरी की बेटी हूँ...”

“केसर !...तुम लवंग को जानती हो ?”—जयराज ने पूछा ।

“जी हाँ ! वह मेरी सखी है”—केसर ने उत्तर दिया—“आज सुबह अपनी माँ के साथ शहर गई है वह...”

“क्यों ?”—जयराज ने पूछा ।

“अपने भैया की खोज में !”—

“हाँ ! एक दिन वह अपने भाई के लापता होने की बात कह रही थी । ईश्वर करे, उसका भाई जल्द मिल जाय...” जयराज बोला ।

“क्या आपके घर लवंग जाया करती थी ?”—पूछा केसर ने ।

“हाँ, जाया करती थी—” जयराज बोला—“मुझे लूटकर वह भाग आई है...”

“लूटना तो वह नहीं जानती थी बाबू !...शायद आपने ही उसे सिखा दिया हो...” केसर के होठों पर एक मधुर मुस्कान छिटक पड़ी ।

“मैं तो स्वयं ही तबाह हो रहा हूँ केसर !...” गहरी साँस लेकर पत्थर की कोर पर बैठ गया जयराज । थकान से उसके पैर जकड़ गये थे ।

“आप कमजोर बहुत हो गये हैं बाबू !...थोड़ी-सी शराब पी लें तो बदन में फुर्ती आ जायगी...कहिये तो मैं लाऊँ...”

“शराब !—” मलिन हसी हँसकर बोला जयराज—“शराब ही ने तो मुझे—शराब...शराब है क्या तुम्हारे पास !...”

“हे !...हमारे दादा के पास सैकड़ों बोतलें होंगी”—केसर ने कहा—“आप धीरे-धीरे मेरे घर तक चलें—मैं आपको दूँगी—”

“चलो !...”

आगे-आगे केसर और पीछे-पीछे जयराज और लखना ।

शराबी जयराज का हृदय शराब का नाम सुनकर मचल पड़ा था ।

वह यह जानता था कि मदिरा एक ऐसी नागिन है, जिसके काटे कोई दवा नहीं—मगर सब कुछ जानते हुए भी अनजान बना था वह ।

केसर का घर आ गया । चौधरी भीतर खाट पर पड़ा था । केसर ने चौपाल में एक चारपाई रख दी । जयराज उस पर बैठ गया ।

केसर भीतर गई । चौधरी जाग रहा था । शिथिल स्वर में उसने पूछा—“कोई आया है क्या बिटिया ?”

“हाँ दादा ! एक बाबू हैं—” केसर ने कहा—“थोड़ी शराब उन्हें चाहिये ।”

“दे दो, ले जाकर !”

मिट्टी के एक कुल्हड़ में केसर ने ठरा भर और जयराज को लाकर दे दिया । जयराज ने काँपते हुए हाथों से कुल्हड़ पकड़ लिया और मुख की ओर ले चला ।

लखना कुछ बोला नहीं था परन्तु उसके नेत्रों से भर्र-भर्र आँसू बह रहे थे ।

और एकाएक जयराज ने, भटके के साथ, शराब से भरा हुआ कुल्हड़ एक ओर फेंक दिया । कुल्हड़ कुछ दूर पर बँधे हुए एक विशाल-काय रीछ को जा लगा, जिसे अब तक जयराज के नेत्रों ने देखा न था । चोट खाकर वह भयानक जीव गुर्ग उठा ।

चौंककर जयराज ने उधर देखा और तब उस रीछ को देखकर जैसे उसे उस मदारी का खयाल हो आया, जो उसके कारण जेल की हवा खा रहा था ।

“क्यों बाबू ! कुल्हड़ क्यों फेंक दिया !—” केसर ने आश्चर्य से पूछा ।

“जाने दो केसर ! अब इस नागिन को हलक से नीचे न उतार सकूँ, यही अच्छा है...” जयराज बोला —“तुम्हें बहुत तकलीफ दी मैंने—माफ करना !”

और भोंपड़ी के भीतर !—

शिथिल चौधरी की निगाहें एक बोतल पर गड़ी थीं । आज उसे शराब पिये जैसे युग बीत गया था । वह लालायित था—केवल एक बूँद के लिये ।

केवल एक बूँद !

और केसर उधर बातों में लगी थी । अवसर अच्छा था । लडखड़ाते पैरों से चौधरी उठा । एक बोतल उठा ली ।

गट ! गट ! गट !

शरीर में अनायास गर्मी दौड़ गई । चौधरी कोठरी में इधर-उधर टहलने लगा । सर पर अब तक पट्टी बँधी थी, जिसके नीचे चार अंगुल चौड़ा घाव था । शिथिल शरीर, शराब का जोर पाकर अवश होने लगता ।

भोंपड़े के बाहर !—

“क्या यह रीछ तुम्हारा है !—” जयराम ने पूछा ।

“यह रीछ लवंग के भाई का है !”—

“लवंग के भाई का !...” जयराम इस तरह तड़प उठा, जैसे किसी ने उसके कलेजे में तेज छुरी भोंक दी हो—“लवंग के भाई का !...”

उसका मस्तिष्क तीव्र वेग से आन्दोलित हो उठा । उस दिन का दृश्य रह-रहकर उसके नेत्रों के समक्ष आने-जाने लगा ।

लवंग के भाई का रीछ !

तो क्या वह लवंग का भाई था ?

“सुन रहा है लखना ! सुन रहा है तू !—”

“सुन रहा हूँ सरकार !—” घीरे से बोला लखना ।

“वह लवंग का भाई था...वह लवंग का भाई था, जिसे जेल भेजवाया....उफ़ !...” जयराम को चक्कर-सा आ गया ।

“.....” चुपचाप खड़ा रहा लखना ।

“क्या कहा आपने बाबू !...आपने उसे जेल भेजवाया !...” केसर पूछा ।

“हाँ केसर !...मैंने घन के मद में आकर उस मदारी को जेल भेजवाया...नहीं जानता था...नहीं जानता था कि वह लवंग का भाई है....”

“ओह !” चीख पड़ी केसर और चेतनाहोन शरीर जमीन पर छड़क पड़ा ।

पानी के छींटे देने पर तब होश आया केसर को ।

“तुमने मुझे उजाड़ दिया बाबू !” रोने लगी वह ।

“रो मत केसर !...” दरवाजे पर से आवाज आई ।

लोगों ने देखा—बीच दरवाजे में चौधरी का काँपता हुआ शरीर खड़ा है । आँखें लाल हैं, चेहरे पर गम्भीरता-जनित क्रोध है ।

“दादा ! भीतर चलो....” केसर चिल्लाकर बोली ।

“भीतर चलो ! नहीं !....शहरी नाग दरवाजे पर आया है...जरा दर्शन तो कर लूँ....”

डगमगाते पैरों से चौधरी आगे बढ़कर जयराज के सामने आ रहा ।

“बाबू !...” शराब की मदहोशों में गरजा चौधरी—“तुम्हारे पास पैसा है, तुम हम गरीबों का खून चूस सकते हो...तभी तो...तभी तो...” हाँफने लगा वह—“तभी तो घन के मद में भूल कर बेचारे पंचम को...पंचम को...जेल भेज दिया...यह न सोचा कि उसे बहन है, माँ है, चाहने वाले हैं, कटुम्ब-कबीले के लोग हैं...तुफ़ है तुम्हारे घन पर...तुफ़ है तुम पर !....”

“ज्यादा न बोलो दादा !....” बोली केसर ।

“चुप रह छोकरी !...” चौधरी पर उस समय भूत सवार था—
“बाबू ! इधर देखो !...तुमने पंचम को जेल भेजकर कितने घर सत्यानाश कर डाले...मुझे देखो...मेरे सर का घाव देखो...इस छोटी-सी छोकरी के दिल के अरमानों को देखो...जी चाहता है, तुम्हारा सर फोड़ दूँ !...”

शराब के नशे में चौधरी आवेशपूर्ण हो रहा था । पैरों की शिथि-

लता ने शरीर का बोझ सम्हालने से इन्कार कर दिया। केसर ने आगे बढ़कर चौधरी को पकड़ लिया परन्तु उस कोमलांगी बाला से क्या हो सकता था।

चौधरी का शरीर कटे हुए वृक्ष की भाँति धड़ाम से जमीन पर, कंकरीली जमीन पर गिरा। सर पत्थर के एक बड़े से टुकड़े से जा टकराया। चौधरी के मुँह से भयंकर आर्त्तनाद निकला और तब मृत्यु की भीषण विभीषिका ने चौधरी की चेतना छान ली।

घटना बहुत आकस्मिक घटी थी। चौधरी को चोट प्राण घातक लगी। केसर रोने लगी। लखना ने चौधरी को उठाकर चारपाई पर लिटाया और तब जयराज की आज्ञा पाकर डाक्टर बुलाने कार लेकर दौड़ा।

डाक्टर आये मगर तब, जब कि चौधरी का निर्जीव शरीर चारपाई पर पड़ा था—केसर गला फाड़-फाड़ कर रो रही थी—कंजरो का गाँव उलट पड़ा था।

जयराज आँख का पानी पोंछता हुआ उठा और एक कंजर के हाथ पर सौ रुपये रखकर कार की ओर बढ़ा।

वे सौ रुपये थे, चौधरी के क्रिया कर्म के लिये।



शहर में आकर लवंग तथा बुढ़िया किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी इधर-उधर भटकती रहीं। पंचम को कहाँ खोजें, यह उन्हें मालूम न था। लाचार वे दोनों धैर्य के साथ इस गली से उस गली में और इस सड़क से उस सड़क पर घूमती रहीं। सोचती थीं वे कि शायद कहीं पंचम से भेंट हो ही जाय।

कई दिन व्यतीत हो गये—

पास में पैसा न था परन्तु वे भीख माँग-माँग कर पेट भर लेती थीं। और रात को सड़क की पटरी पर अथवा किसी बड़े मकान के सायबान के नीचे सोकर निद्रा का वेग सम्हाल लेती थीं। बिना पंचम को लिये गाँव न लौटने का संकल्प जो कर लिया था उन दोनों ने।

लवंग ने बहुत दुख भेले। उसके पास मादक यौवन था, स्निग्ध-कारी रूप था और मदभरे नयन थे और शहर-निवासियों के पास कामुक हृदय था, विषैली आँखें थीं, गन्दे हावभाव थे।

मगर सब कुछ सहन किया लवंग ने। और ऐसी ही एक दोपहरी को एक शहरी गुण्डा उसका हाथ पकड़ बैठा।

क्रोध से लवंग ने सर उठा कर देखा तो जयराम था—छुड़ी के सहारे खड़ा था सड़क पर। पास ही मोटर और लखना खड़े थे।

लवंग ने सर नीचा कर लिया। उसे लगा, जैसे इन कुछ ही दिनों में जयराम सूखकर लकड़ी हो गया हो, जैसे उसके सूखे नयन कोटरों से बरबस करुणा टपक रही हो।

अभागा जयराम !

“मुझे माफ कर दो लवंग !...” धीरे से कहा जयराम ने।

लवंग की सुप्त ग्लानि जागृत हो उठी—“जाओ बाबू ! लोग आ जा रहे हैं, तुम्हारी इज्जत में बढ़ा लग जायगा, मैं गरीब-दुखियारी आपको क्या माफ कर सकती हूँ...”

लवंग की आँखें फट पड़ना चाहती थीं। उसने माँ का हाथ पकड़ लिया—“चलो माँ !...”

और वह बुढ़िया का हाथ पकड़े तेजी के साथ आगे बढ़ चली। जयराम ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया। बोला—“लवंग !... सिर्फ एक बात सुनती जाओ...”

“चले जाओ बाबू ! तुम्हारे पास रुपया है, तुम्हें हजारों मिल जायँगी...मुझे दुख न दो, नहीं तो मैं किसी मोटर के नीचे आ

जाऊँगी...” कहकर लवंग ने जयराज के हाथ को तेज़ी से झटका दिया। शिथिल जयराज लड़खड़ा उठा और यदि लखना ने दौड़ कर पकड़ न लिया होता तो निश्चय गिर पड़ता वह।

लवंग ने सब कुछ देखते हुए भी न देखा। घूम पड़ी वह और चली गई। यह नहीं था कि उसे जयराज की अवस्था देख कर दुख न हुआ हो परन्तु जयराज ने भी तो उसे कम दुख नहीं दिया था।

कुछ दूर जाकर बुढ़िया ने पूछा—“कौन था वह लवंग?”

लवंग रो पड़ी—“चुप रहो माँ! नहीं जानती कौन ये वे!.... होंगे, गरीबों का दिल रुपयों से खरीदने वाले कोई अमीर!...”

और तब बुढ़िया कुछ न बोली। चलती रहीं वे दोनों।

एक मकान के सामने रुक कर बुढ़िया ने भिच्चा के लिये आवाज लगाई। थोड़ी देर बाद अन्दर से एक नौकरानी कुछ लिये हुए निकली।

लवंग चौंक पड़ी, नौकरानी के पीछे सफेद साड़ी पहने हुए एक स्त्री की आकृति को देख कर। वह गुलशन थी—उसी का मकान था वह। गुलशन के हृदय में सद्भावना का बीज जो एकाएक अंकुरित हो उठा था, उसपर उस्ताद ताल खाँ की कठोरता ने तुषारापात कर दिया था और यही कारण था कि गुलशन को बाध्य होकर उस्ताद की बात माननी पड़ी थी। और आजकल वह पूर्ववत् कार्य करने लगी थी।

फिर भी उसके हृदय में एक तीव्र लालसा वेगवती हो उठी। अपने प्रति लोगों की असीम वृणा देखकर वह चाहती थी कि वह भी कभी सद्गृहस्थ की गृहिणी बन सकती। यह असम्भव था—फिर भी गुलशन आशा लगाये थी।

जयराज के प्रति अब उसके हृदय में सहानुभूति थी—प्रेम था।

“माँ! यह भिच्चा न लो—चलो!”—घीरे से लवंग ने बुढ़िया से कहा। और वे दोनों बिना भिच्चा लिये लौटने लगीं। मजदूरिन आश्चर्यचकित रह गईं।

“क्यों ! भीख तो लेती जाओ बहन !”—गुलशन ने कहा ।

बहन !

एक वेश्या उसे बहन पुकार रही है ! कितनी आत्मीयता है उस स्वर में । लवंग का हृदय भर आया । घूम कर बोली—“मेरा सब कुछ लूटकर आज भीख देने चली हो ?....”

जाते-जाते लवंग के कानों ने गुलशन की आवाज सुनी—“मैं कितना चाहती हूँ कि जो कुछ तुमसे लूटा है, तुम्हें वापस कर दूँ बहन ! मगर मजबूर हूँ....”

गुलशन की इन बातों का मतलब लवंग समझ न सकी, न तो उसने भिन्ना ही ली । वह चली गई—चलती ही गई ।

दिन भर भूख-प्यास की मारी वे दोनों घूमती रहीं ।

और तीसरे पहर—

जब कि सूर्य की सुनहली किरणें पास के पीपल पर नृत्य कर रही थीं, उन दोनों ने पंचम को देखा—सिपाहियों से घिरा हुआ कचहरी से आ रहा था वह । हाथों में हथकड़ा थी और पाँव में बेड़ी और गर्दन में मोटा रस्सा । आज उस अभाग के फैसला था । छः महीने की कठोर सजा उसे मिली थी ।

“पंचम बेटा !...” आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखती हुई चिल्ला पड़ी बुढ़िया ।

“भैया !...” हर्ष-विह्वल स्वर में आर्त्तनाद कर दौड़ पड़ी लवंग और जाकर पंचम के बेड़ी लगे पैर से लिपट गई, जैसे अब वह कभी अलग न होगी ।

“दूर हट ! दूर हट !...” लाल पगड़ी सर पर रखे कई जन्तु चिल्ला उठे परन्तु लवंग ने पंचम का पैर न छोड़ा ।

और तब एक ने निर्दयतापूर्वक अपने बूट की ठोकर जो उसके पसली में दी तो उस कोमल बालिका का अचेत शरीर जमीन पर छुड़क पड़ा ।

अपनी लाडली बहन की यह दुर्दशा देखकर पंचम की आँखों में खून उतर पड़ा परन्तु वह स्थिर रहा । उसने अमीरों की निर्दयता देखी थी, अधिकारियों के अत्याचार सहन किये थे—वह जानता था कि कुछ नहीं हो सकता—

नहीं हो सकता कुछ ।

इन लाल पगड़ी वालों के वृद्ध की ठोकर का सामना करने के लिये घन के जूतों की ठोकर पड़नी चाहिये ।

एक बूँद आँसू न बहा, पंचम के नयन-कोटरों से । सिपाहियों के साथ चल पड़ा वह ।

अभी उसे पूरे लुः महोने जेल में काटने थे । इस अवधि के भीतर चाहे उसकी माँ मर जाय, चाहे लवंग ठोकरें खाती फिरे—कुछ नहीं हो सकता ।

बुढ़िया अब तक खड़ी थी—ऐसे, जैसे पत्थर की मूर्ति । पंचम जब आँखों से ओझल हो गया तो रक्त-मांस हीन उस वृद्ध शरीर में द्रव्य रह गई ।

बुढ़िया सड़क पर बेहोश पड़ी हुई लवंग के पास आई । तीव्र आघात से पीड़ित होकर बेचारी पड़ी थी अचेत-सी ।

मुँह पर छीटे देने के लिये पानी की आवश्यकता थी । पाइप वहाँ से कुछ दूर गली में था । बुढ़िया उठी और बढ़ी ।

पाइप पर पहुँच कर बुढ़िया ने अपनी फटी-पुरानी धोती का आँचल पानी से भिगोया और वहाँ आई, जहाँ सड़क पर पड़ी थी लवंग !

मगर वहाँ पहुँचकर सन्न रह गई ।

सड़क सूनी थी । बेहोश लवंग, जैसे पर लगाकर कहीं उड़ गई थी ।

रात्रि के प्राङ्गण में चाँदनी आँगड़ाइयाँ ले रही थी। जयराज के कमरे में बत्तन हँस रहा था और एक सुन्दर चारपाई पर लेटा था वह। सामने ही उसके पिता रायबहादुर सेठ गंगादास बैठे थे, एक कोच पर।

“अब तुम्हारी तबियत कैसी है जयराज !”—पूछा सेठजी ने।

“अब तो धीरे-धीरे ठीक हो रही है पिता जी !”—जयराज ने उत्तर दिया।

“देखो !...” सेठ जी गम्भीर स्वर में बोले—“मैं पहले भी तुमसे कई बार कह चुका हूँ और आज भी कह रहा हूँ कि तुम यहाँ मत रहो। अपनी कोठी पर चल कर रहो। यहाँ रहने से तुम्हारी तबियत सुधर नहीं सकती। मैं यहाँ पर तुम्हारे साथ रह सकता नहीं, क्योंकि कोठो का काम पड़ा रह जायगा...”

“आप चिन्ता न करें पिताजी !...” जयराज ने कहा—“मैं ऐसे ही ठीक हो जाऊँगा और आगे से अपने स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान रखूँगा....”

“चैसी तुम्हारी इच्छा !”—कुछ सोचकर बोले सेठ जी—“अच्छा तो मैं चलता हूँ। जरा भी तबियत खराब होने पर लखना को भेजकर बुलवा लेना मुझे...”

“अच्छा !...”

सेठजी उठ खड़े हुए और चले गये। लखना ने टोस्ट और एक कप चाय लाकर जयराज को दिया। जयराज पीने लगा।

“देख ! कल सुबह टोस्ट मत बनाना”—जयराज ने कहा—“केवल स्लाइस और बटर से काम चल जायगा...”

चाय पीकर जयराज उठा और हवेली के पीछे लगे हुए बाग की रविशों पर टहलने लगा। चाँदनी की शीतलता से उसका शिथिल शरीर कुछ स्वस्थ हुआ। वह लवंग के विषय में सोचने लगा।

आज जब कि वह कार पर डाक्टर के यहाँ से दवा लेकर आ रहा था तो उसने सड़क की पटरी पर से जाती हुई लवंग की एक बुढ़िया

के साथ देखा था। लवंग को देखकर उसके हृदय की क्या दशा हुई थी, यह वही जान सकता है।

परन्तु जब वह कार से उतर कर उसके पास गया तो उसे क्या मिला ?—केवल लवंग की फटकार !

और जयराज के व्यथित हृदय पर जैसे किसी ने कोड़ा मार दिया हो—जैसे लहलुहान घाव पर किसी ने नमक-मिर्च छिड़क दिया हो, जैसे ज्वराक्रान्त तप्त शरीर पर किसी ने बर्फ की एक चट्टान रख दी हो।

“सरकार !...”

जयराज की विचार-धारा में बाधा पहुँची। सर उठाकर देखा उसने। लखना खड़ा था—हाथ में एक सफेद कागज लिये हुए।

“क्या है ?”—पूछा जयराज ने।

“एक आदमी यह पुरजा लाया है सरकार—!”

“किसका पुरजा है !”

“गुलशन बाई का !”

“फैंक उस पुरजे को”—गरजा जयराज—“और जो आदमी इसे लाया है, उसे धक्के मार कर निकाल दे...”

“.....” सर नीचा किये हुए खड़ा रहा लखना।

“जाता क्यों नहीं !...” गरजा जयराज।

और तब धीरे-धीरे जानें लगा वह।

जयराज टहलने लगा। विचारधारा दौड़ चली—गुलशन का पुरजा ! क्या लिखा होगा उसने ? शायद कोई जरूरी बात लिखी हो...”

“लखना !...” पुकारा जयराज ने।

लखना दरवाजे तक तक पहुँच चुका था—लौट आया।

“ला ! देखूँ तो उस पुरजे में लिखा क्या है ?—” जयराज ने कहा।

लखना ने चुपचाप वह कागज जयराज की हथेली पर रख दिया

और वहीं खड़ा रहा । जयराज पढ़ने लगा वह पत्र । चौदनी तेज थी और पत्र के अक्षर काफी बड़े थे, अतः पढ़ने में कठिनाई न हुई । यों लिखा था—

मेरे राजा ।

जानती हूँ, खत लिखना गुस्ताखी है क्योंकि तुम मुझसे बहुत नाराज हो ! मगर क्या करूँ दिल नहीं मानता, औरत का दिल है जो ! मुझसे तुम नफरत करते हो—मगर मेरे राजा ! तवायफें भी औरत होती हैं । नहीं समझ सकोगे शायद—समझाना भी नहीं चाहती तुम्हें । जो लुप्त तुम्हें पाकर भी नहीं पा सकी थी, वह तुम्हें खो कर पा रही हूँ । माफ करना—एक जरूरी काम से तुम्हें याद किया है । खत पाते ही फौरन आने की मिहरबानी करना । फीस के लिये मत डरना—शायद अब तुमसे कुछ ले भी न सकूँ । मगर आना जरूर । तुम्हें अपने दिल के दर्द की कसम, दर्दभरी तड़प की कसम, लवंग के पाक मुहब्बत की कसम—आना जरूर तुम ! आकर तुम्हें पछुताना न पड़ेगा ।

कनीज,

—गुलशन ।

पत्र पढ़कर जयराज कुछ सोचने लगा । जाना चाहिये या नहीं—कदाचित्त यही वह सोच रहा था । अन्त में उसने जाना ही ठीक समझा ।

कार पर चढ़कर जब वह गुलशन के मकान पर पहुँचा तो गुलशन और जयराज दोनों एक दूसरे को देखकर चौंक पड़े ।

गुलशन को आश्चर्य हुआ जयराज का सूखा चेहरा और लड़खड़ाते हुए पैरों पर खड़ा शिथिल शरीर देखकर ।

और जयराज को आश्चर्य हुआ गुलशन के बदन पर लिपटी हुई एक सादी साड़ी और शृङ्गारहीन रूप देखकर ।

गुलशन ने झुककर आदाब बजाया । जयराज कुर्सी पर जा बैठा ।

“बहुत कमजोर हो गये हैं आप !—” गुलशन ने पूछा—“वजह क्या है !”

“इधर तबीयत खराब थी—” जयराज बोला—“यह तुमने कैसी सुरत बना रखी है !...”

गुलशन दूसरी कुर्सी पर बैठती हुई बोली—“उस्ताद कई दिनों से बाहर गये हुए हैं। सोचा, उनकी गैरहाजिरी में थोड़ा आराम कर लूँ।”

जयराज को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, यह देखकर कि उस चंचल बेश्या की सारी चपलता, सारी अदायें, सारी शोखियाँ विलीन हो चुकी हैं। आँखों के कमान पर तीर चढ़ाकर अब नहीं फेंके जाते थे—ऐसा लगता था, जैसे अब उनसे शीतल जल की वर्षा होना चाहती हो।

“आपको बीमारी क्या थी ?—” पूछा गुलशन ने।

“एक-ब-एक कलेजे में दर्द उठ जाता है—शराब ने कलेजा जला दाला है न !...”

“शराब, नागिन है—” गुलशन ने कहा—“उम्मीद है, अब आप न पीते होंगे—”

“कत्तई नहीं...”

“शुक्रिया !...”

“तुमने मुझे बुलाया क्यों था !—” जयराज ने पूछा

“अपने बुरे जर्ताब की माफी मागने के लिये—” कह दिया गुलशन ने।

“बस ! केवल माफी के लिये !—” हँसा जयराज—“अब तो बहुत भोली हो गई हो तुम...परन्तु...याद में माफी न दे सकूँ तो !”

“देनी पड़ेगी आपको मेरे सरकार !—” गुलशन उठ कर खड़ी हो गई—“आइये, मेरे साथ !”

जयराज, गुलशन के पीछे-पीछे बगलवाले कमरे में घुसा। एक मसहरी थी, जिसमें एक बीमार स्त्री लेटी हुई थी। एक नर्स उसकी परिचर्या कर रही थी।

गुलशन को देखकर वह नर्स पास चली आई। बोली—“अब तो मरीज की तबीयत काफी सुधर गई है। अभी को नींद आई है...”

“तुम बाहर जाओ—अब तुम्हारे परेशान होने की नहीं—मरीज की दवा मैं अपने साथ लाई हूँ—” कहकर गुलशन ने मुस्कराते हुए, जयराज की ओर देखा ।

नर्स बाहर चली गई । जयराज अब तक कुछ समझ न सका था । गुलशन उसे लेकर मसहरी के पास आई । जयराज चौंक पड़ा—मसहरी में लवंग को सोते हुए देखकर, जैसे विश्वास ही नहीं कर सका वह ।

“आज मैं एक काम से सेठ बट्टी प्रसाद के यहाँ गई थी”—गुलशन ने परिस्थिति साफ करते हुए कहा—“उन्हीं को कार से लौट रही थी तो सिविल लाइन्स के पास, सुनसान सड़क पर इन्हें पड़े हुए देखा....”

“और बुढ़िया !...”

“कोई नहीं था आस-पास ! सिर्फ यह बेहोश पड़ी थी—लाचार मैं इन्हें यहाँ उठा लाई...चार घंटे हुए इन्हें होश आया है, तब से बराबर—मॉ-मॉ रट रही हैं । अभी को नोद लगी है । अब आप जाकर इन्हें समझायें और मुझे माफी...”

कहते-कहते न जाने क्यों गुलशन का गला भर आया । जयराज ने प्रेमपूर्वक गुलशन का हाथ पकड़ कर अपने सीने पर दबा लिया और कहा—“गुलशन ! तुम क्या हो, यह अब तक मैं न जान सका....”

गुलशन कुछ न बोल कर कमरे से बाहर हो गई । जयराज मसहरी के निकट आकर खड़ा हो गया । धीरे से मसहरी उठा दी और चारपाई पर बैठ गया । उस समय सोती हुई लवंग के मुख पर करुणा एवं यौवन का अजीब सम्मिश्रण था । जयराज मुग्ध हो रहा ।

उसी समय लवंग के सुप्त शरीर में कुछ कम्पन हुआ और शुष्क एवं शिथिल होठों ने माँगा—“पानी !....”

जयराज धीरे से उठा । सुराही से पानी ढाल कर लवंग के सिरहाने आ रहा ।

लवंग कुछ कुछ जाग गई थी परन्तु शिथिलतावश नेत्र बन्द किये हुए थी ।

जयराम ने धीरे से सहारा देकर उसका सर उठाया और अपने गोद में लेकर पानी का ग्लास लवंग के होठों से लगा दिया । लवंग ने समझा नर्स है, अतः पानी पी लिया ।

परन्तु नर्स का स्पर्श तो इतना मादक और सुखद नहीं प्रतीत होता था ! नर्स के स्पर्श से उसके हाहाकार भरे हृदय में गुदगुदी तो नहीं उठती थी !

फिर ?

लवंग ने आँखें खोलना चाहकर भी नहीं खोला । लगा उस, जैसे उसके बालों पर किसी के हाथ फिर रहे हों, जैसे उसके घड को किसी ने गोद में समेट लिया हो, जैसे मधुर आनन्द से विभोर होकर उसकी छुटियाँ तेजी से उठ-बैठ रही हों, जैसे उसके शिथिल अवयव में यौवन की मधुरता भर उठी हो, जैसे...

जैसे न जाने क्या-क्या लगने लगा उसे ।

और उसी समय दो ऊष्ण अधर उसके रक्तिम होठों पर आ बैठे ।

चौक पड़ी लवंग । आँखें खोलकर देखा उसने—जैसे जमीन काँप उठी उसके नेत्रों के समक्ष, वह तड़प कर जयराम की गोद से अलग हो गई ।

“आप !...”

“लवंग !...मुझे माफ कर दो लवंग !....”

“आपने मुझे बरबाद कर डाला बाबू ! अब क्यों आये हो यहाँ !...”

“लवंग ! मेरी रानी !...मेरा अपराध न था—”

“आपका अपराध नहीं था बाबू ! अपराध तो मेरा था—तभी तो अपनी माँ को खोकर आज यहाँ पड़ी हूँ—यह आप के ही कारण । गुलशन और आपने मिलकर मुझे नष्ट कर डाला...”

“मैं तुम्हारी माँ को खोज कर ला दूँगा लवंग !—”

“जाइये आप यहाँ से...” चिल्ला पड़ी लवंग और आवेश से उसकी आँखें जयराम के मुख पर जा पड़ी—उसकी बात मुँह की मुँह में ही रह गई । दृष्टि नीचे हो गयी ।

उस समय जयराम के दोनों गाल आँसुओं से तर हो रहे थे ।

लवंग का सर चकरा गया, एक पुरुष क नेत्रों में अविरल अश्रुधारा का स्रोत देखकर । तो क्या जयराम निरपराध है ! क्या उसका कुछ भी दोष नहीं !

हो सकता है—ऐसा हो सकता है ।

जयराम उठने लगा ।

“जा रहा हूँ—मुझे भूलने की कोशिश करना लवंग !...शायद अब तुमसे कभी न मिल सकूँ...”

लवंग का हृदय फूट पड़ा । उसने जयराम का हाथ पकड़ना चाहा मगर वह उसकी पहुँच से बाहर हो चुका था ।

“न जाओ बाबू !—न जाओ...” चिल्ला पड़ी वह ।

जयराम लौट पड़ा । लवंग बदहवास-सी हो रही थी । उसने उसे पुनः गोद में ले लिया । लवंग शिथिल स्वर में बोली—“माफ़ कर दो बाबू मुझे...”

जयराम कुछ बोला नहीं । उसने उस कोमल शरीर को अपनी भुजाओं के बन्धन में बाँध लिया—ऐसा कि कभी वह बन्धन छूट ही न सके ।

और तब जैसे युगों के तड़पते हुए दो हृदय तथा युगों के प्यासे दो अक्षर मिलकर अपनी व्यथा शान्त करने लगे ।

जयराम ने लवंग की लौटाई हुई आँगूठी, पुनः उसकी अनामिका में पहना दी । लवंग के मुख पर सन्तोषजनित एक आकर्षक मुस्कान खिल उठी ।

दरवाजे की आड़ से गुलशन सब कुछ देख रही थी । आँखों में

उमड़ आये आँसुओं को पोंछकर वह अपने कमरे में चली गई। लवंग का जो कुछ उसने लूटा था—आज आकर्षक ढंग से उसे वापस कर दिया था।

उसी रात—

लवंग को लेकर जयराज अपने बँगले पर आ रहा। उसी दिन मानो जयराज और लवंग-सा-सुखी कोई था नहीं !

लवंग अपनी माता के लिये अत्यन्त दुखी थी परन्तु जयराज के सतत प्रयत्न करने पर भा बुढ़िया न मिली, न मिली।

दिन व्यतीत होते गये। लवंग का प्रेम पाकर जयराज की शराब छूट गई—स्वास्थ्य सुधरता गया परन्तु कौन जानता था कि भीषण रोग की चिनगारी अभी तक भीतर ही भीतर सुलग रही है।

जयराज का मादक प्रेम पाकर लवंग आत्म-विस्मृत-सी हो उठी। सब कुछ भूल गई वह। जवानों के दिन थे—मादकता की उठान थी, जिनमें लवंग, पंचम को—अपने भैया पंचम को तथा अपनी बुढ़िया माँ को—सबको भूल गई।

अच्छे से अच्छा खाना, अच्छे से अच्छा पहनना और जयराज के गले में हाथ डाल कर सैर-सपाटे—सब कुछ ऐसा विस्मरण उत्पन्न करने वाला था कि लवंग बह चली उस प्रबल वेगवती धारा में।



आज कई दिनों से जयराज के हृदय में उथल-पुथल हो रही थी। लवंग को वह इतना चाहता था कि उससे कोई बात गोपनीय नहीं रख सकता था। और इसीलिये वह एक हृदयविदारक गुप्त बात लवंग को

सुनाना चाहता था परन्तु भय था कि कहीं वह बात सुनकर वह पुनः विरक्त न हो जाय और उससे पुनः घृणा न करने लगे ।

लवंग का भाई पञ्चम; जयराज के ही कारण जेल की यातना भुगत रहा था—परन्तु लवंग को यह सब क्या मालूम ?

उस दिन यही सब सोचता हुआ जयराज कोच पर बैठा था कि लवंग चाय की ट्रे लेकर आई । आजकल लवंग ने घर का सारा कार्य अपने कंधों पर ले रखा था और लखना को हर समय अपने सरकार के आगे आने से छुट्टी मिल गई थी ।

लवंग ने चाय की ट्रे मेज पर रख दी और एक प्याला चाय बनाकर जयराज को दी । जयराज ने प्याला ले लिया और बोला—
“तुम भी आओ लवंग !”

लवंग, पास ही सोफा पर बैठती हुई बोली—“आज आप कुछ सुस्त से क्यों हैं ?”

“नहीं तो !...” जयराज ने कहा—“आज कई दिनों से तुमसे एक बात कहना चाहता था लवंग मगर...”

“कहिये न ! क्या कहना चाहते हैं ?”

“एक कहानी सुनोगी लवंग...”

“सुनाइये !...” और वह सजग होकर बैठ गई, क्योंकि कहाँनियों सुनने में, विशेष आकर्षक होती हैं ।

“एक मदारी आता है, एक बाबू के पास और बाबू उसका तमाशा देखकर और उसकी दीनता पर तरस खाकर उसे कुछ रुपये दे देता है । दूसरे दिन वह मदारी आकर बाबू से नौकरी माँगता है । बाबू किसी चिन्ता में रहता है, अतः दूसरे दिन आने को कहता है । उसी दिन उस मदारी का दोस्त, जो उस दिन उन बाबू के यहाँ मजदूरी कर रहा था, आकर बताता है कि वह मदारी, बाबू को बहन की गाली दे रहा था । बाबू को बहुत क्रोध आता है । दूसरे दिन वह मदारी एक हथियार लेकर आता है और बाबू को मारने दौड़ता है । लाचार

होकर बाबू उसे पुलिस में सौंप देता है, बगैर यह जाने हुए कि वह मदारी उनकी प्रेयसी का भाई है। तो इसमें उन बाबू का क्या अपराध है लवंग ?—”

लवंग अबतक कुछ समझ न सकी थी। बोली—“उन बाबू का क्या अपराध हो सकता है...मेरी समझ से सारा अपराध उस तीसरे आदमी का है...”

“यही मेरा भी विचार है कि सारा काम उसी बेईमान घन्ना का है—” जयराज बोला।

“घन्ना !...”—चौक पड़ी लवंग—“क्या नाम लिया आपने, घन्ना !...”

“हाँ लवंग !—” जयराज बोला—“उस मजदूर का नाम घन्ना था। वह केवल एक दिन के लिये मेरे यहाँ काम करने आया था...”

“आपके यहाँ ?”—लवंग का आश्चर्य बढ़ता जा रहा था—“क्या वह बाबू आप हो थे ?...”

“हाँ लवंग, मैं ही था...”

“और वह मदारी ?”—

“तुम्हारा भाई !”—जयराज ने कहा।

आर्त्तनाद कर लवंग जयराज की गोद में गिर पड़ी, रोने लगी। जयराज ने उसे अपनी गोद में आश्रय दिया। लवंग जयराज से नाराज नहीं थी क्योंकि वह जान गई थी कि सारा अपराध घन्ना का है।

फिर भी अपने पंचम भैया को याद कर उसका हृदय फूट फूट कर रो उठा। उसी समय उसे अपनी माँ की भी याद हो आई।

जयराज समझ रहा था कि लवंग का दिल इस तरह नहीं बहलेगा। अतः उसने कार तैयार करने की आज्ञा दी।

कार पर चढ़कर जयराज और लवंग नदी के किनारे आ गये। उस दिन वहाँ पर कोई मेला था। अपार भीड़ थी। वहाँ के वातावरण में लवंग का जो कुछ हलका हुआ।

उसी समय जयराज के कानों में डुगडुगी बजने की आवाज सुन पड़ी। देखा, एक लड़की थोड़ी दूर पर खड़ी हुई लोगों को भाऊ का तमाशा दिखा रही है।

“केसर !....” अचानक निकल पड़ा जयराज के मुँह से।

सचमुच केसर ही थी वह। चौधरी के मर जाने से अनाथ हो गई थी और लुच्चे-लफ्फों कंजरी ने उसे परशान भी कर रखा था, फिर भी वह गाँव में किसी तरह दिन बिता रही थी। दिन को पंचम का रीछ लेकर शहर चली आती थी और कुछ पैसे वसूल कर लेती थी। वह दुर्दान्त रीछ पंचम की ही तरह, केसर से भी हिल-मिल गया था।

केसर ने सामने देखा तो लवंग और ‘वे’ बाबू !

लवंग लपक कर केसर के गले से लग गई। जम्मू लवंग का पैर सूँघने लगा। लवंग की आँखें बरस रही थीं परन्तु केसर के नेत्र जैसे हृदय की ज्वाला से शुष्क हो उठे थे—अश्रुकण शेष नहीं रह गये थे उनमें !

केसर ने अपने को लवंग से अलग कर लिया, क्योंकि लवंग की वेष भूषा उस समय परियों जैसी थी—और केसर के शरीर पर जैसे निर्धनता का नृत्य हो रहा था।

“अब तो हज़ूर ने अपने हृस्न में चार चाँद लगा लिये हैं”—केसर ने लवंग से कहा। लवंग लज्जा गई। केसर को यह समझते देर न लगी कि लवंग के बाबू यही हैं।

“चौधरी काका कैसे हैं ?”—पूछा लवंग ने।

“बाबू ने नहीं बताया तुमसे ?”—केसर आँखों में आँसू भरकर बोली—“दादा तो छोड़ गये...” रो पड़ी केसर—“अब तो सिर्फ जम्मू का ही सहारा है...”

“उधर तुम्हारे दादा चल बसे—इधर मेरी माँ का पता नहीं, कहाँ चली गई...”

“किस्मत का फेर है...” सर ठोका केसर ने।

“इस किस्मत को तुम बदल सकती हो केसर !”—लवंग ने कहा—
“चलकर हमारे साथ रहो...”

“किस्मत बदलने से नहीं बदलती लवंग बीबी !”—केसर शुष्क
हँसी-हँस कर बोली—“हमें, हमारा गाँव ही भला है—तुमने तो माँ
को खो कर बाबू जैसा हमदर्द पाया और मैंने दादा को खोकर क्या
पाया ! यह जानवर ही तो !...यह तो अपनी-अपनी किस्मत है...”

और तब रीछ की डोर पकड़ कर केसर इस प्रकार चल पड़ी कि
किसी को रोकते न बना ।



जेल का दरवाजा जैसे एक भयावनी गुफा-सा भयंकर मुँह बाये
प्रतीत होता था । सुविशाल फाटक लगे थे । बाहर लम्बी बन्दूक लिए
हुए दो संतरी पहरा दिया करते थे ।

आज चार महीने में एक रुग्ण बुढ़िया, जेल के फाटक के सामने
बैठी गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाया करती थी—“छोड़ दो उसे...वह
मेरा लाल है....उसका कोई कसूर नहीं...वह कुछ न किये होगा...वह
कुछ नहीं कर सकता....छोड़ दो—छोड़ दो उसे....”

चिल्लाते-चिल्लाते जब वह थक जाती तो—“हाय बेटा पंचम !”
कहकर रोने लगती । घण्टों रोती ।

लोग हँसते, कहते—पागल है !

लड़के उसे चिढ़ाते मगर वह दिन-रात, जेल का दरवाजा छोड़कर
और कहीं न जाती....चीखती और यदि किसी ने दया करके कुछ दे
दिया तो खा लेती ।

कभी-कभी वह किसी संतरी के पास दौड़ आती और आँख में आँसू

भर, उनके पैरों पर गिरकर कहती—“सरकार ! उसे दौड़ दो...मेरा फूल-सा बच्चा कैसे रहता होगा ! उसने कभी इतना दुख नहीं सहा, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ सरकार !...”

सरकार कहे जाने वाले, दस रुपये महीने के नौकर, हृदय-हीन उस संतरी के बूट-लसित पैर उठते और सिसकती, कराहती हुई बुढ़िया के अस्थिपंजर पर जा बैठते। करुण आर्त्तनाद के साथ बुढ़िया का जर्जर शरीर चेतनाहीन होकर दूर जा पड़ता।

जब चेतना लौटती तो पुनः चिल्लाने लगती।

वह पागलपन नहीं था—वह थी माँ की ममता।

जब जेलर साहब अन्दर से निकलते या बाहर से अन्दर जाते तो वह दौड़कर उनके सामने जमीन पर लेट जाती और...

और वह हृदयहीन जेलर हँसता हुआ अन्दर चला जाता—पागल थी न वह !

बेचारी बुढ़िया, बूटों की ठोकर, खाने-पीने की कमी और यन्त्रणा के कारण दिन प्रतिदिन मृत्यु के सन्निकट होती जा रही थी।

वह थी पंचम की माँ !

और पंचम !

जेल की चहारदावारी में बन्द, वार्डरों की धमकियाँ सुनता, पक्षों की ठोकरें खाता और चक्की पोसता।

रात्रि को जब वह फट्टा बिछाकर और कम्बल ओढ़कर ओटे पर सोता तो उसके नेत्रों में आँसू भर आते। लवंग, माँ और केंसर की याद करके रोने लगता वह; परन्तु दूसरे ही क्षण उसका हृदय क्रोध से भर जाता और उसे ऐसा प्रतीत होता कि जयराज का गला उसके पंजों के भीतर आ गया है और वह जोरों से दाँत पीस कर अपने पंजे कसता...

सुबह होते ही हाजिरी के लिये दौड़ पड़ता वह। नाश्ते के लिये कभी चने और कभी दलिया मिलती।

कभी-कभी बुढ़िया का प्रबल आर्त्तनाद भीतर तक प्रतिध्वनित हो उठता और तब चौंक कर पञ्चम चक्की पीसना रोक देता तथा मस्तक का पीसना पोंछता हुआ सोचने लगता ।

यह तो उसकी माँ की आवाज है !—वह क्या करने आई है यहाँ !

उसी समय पक्के के मोटे डण्डे की आवाज उसकी पीठ पर होती और पीड़ा से कराह कर वह पुनः चक्की पीसने लगता ।

जीवन क्या था—जानवरों का जीवन था !

मानवता न थी वहाँ, पशुवत् व्यवहार था ।

और पंचम धैर्यपूर्वक दिन काट रहा था । चार महीने बीत चुके थे—अभी दो बाकी थे ।



लवंग और जयराज मोटर पर से उतरे और इवेली में जाने के लिये बढ़े, उसी समय पास ही खड़ा हुआ एक दीन-हीन, दूषित धावोंवाला भिखमंगा चीखकर उन दोनों के सामने जमीन पर आ गिरा ।

जयराज और लवंग चौंक पड़े, उसकी दयनीय दशा देखकर । बदन सूखकर काँटा हो चला था और उस पर बड़े-बड़े दूषित धाव थे, जिनपर मक्खियाँ भिन-भिना रही थीं । बड़ा ही घृणास्पद लग रहा था वह ।

“मुझे क्षमा कर दो बाबू !...” कड़े कष्ट से बोला भिखमंगा, जमीन पर लेटा हुआ ।

“कौन हो तुम !—” जयराज ने पूछा ।

लवंग उसकी सूत ध्यानपूर्वक देख रही थी, बोली—“घन्ना है यह, अपनी करनी का फल भुगत रहा है...”

घन्ना ही था वह !

जिसने जयराम और पंचम के बीच में वैमनस्य की एक दीवाल खड़ी कर दी थी, जिसके कारण निरपराध पंचम जेल की चक्की पीस रहा था और जो चौधरी का हत्यारा था—वही, घन्ना !

एक रात कालिमा के आँचल में छिपकर उस दुष्ट ने लवंग की अस्मत् लूटनी चाही थी और स्वामिभक्त जम्मू ने उसे काट खाया था ।

जम्मू के भयानक दाँतों तथा तीक्ष्ण नाखूनों का विष इस समय घन्ना के समग्र शरीर में फैल चुका था ! जहाँ-जहाँ उस भयानक रीछ के दाँत और नाखून लगे थे, वहाँ-वहाँ का माँस सड़-सड़ कर गल रहा था ।

“माफ करो सरकार मुझे !...” गिड़गिड़ाते हुए बोला वह ।

और क्रोधित जयराम उसके धावपूर्ण शरीर पर जूते की एक ठोकर लगाकर, लवंग का हाथ पकड़े हुए हवेली में चला गया ।

परन्तु अपने कमरे में जाकर एकाएक वह चौंकर खड़ा हो गया । उसके काँपते हुए हाथ से लवंग का हाथ छूट पड़ा । पैरों तले से जैसे जमीन खिसक पड़ी ।

उसके पिता सेठ गङ्गादास बैठे थे शोफे पर, उसकी ओर देखते हुए ।

“तबियत जरा-सी सुधरी नहीं कि तुमने घूमना शुरू कर दिया ?” रुखी आवाज में बोले सेठ जी—“यह लड़की कौन है ?...”

“...यह पिता जी !...यह...”

जयराम की जवान पर जैसे ताला लग गया था ।

“ठीक से बोलो ! कौन है यह ?”—सेठ जी का स्वर पहले से भी अधिक रुद्ध हो गया था ।

जयराम ने देखा कि बिना साहस किये काम न चलेगा । बोला—
“यह मेरी भावी पत्नी है पिता जी !”

“चुप रह !...” गरज पड़े सेठ जी—“अपने बाप से यह सब कहते हुए शर्म नहीं आती !...मैं सब सुन चुका हूँ इस लड़की के विषय में । मैं नहीं देख सकता कि मेरा लड़का एक भिखमंगिन से शादी करे...”

यह सेठजी के भीतर का ममत्व नहीं बोल रहा था, वरन् बोल रहा था उसके अन्तस्तल में बैठा हुआ धन का अहंकार । वे अपने पुत्र को खुले आम शराब पीते हुये देख सकते थे, उसे बजारू बेश्या के साथ सोते देख सकते थे परन्तु यह नहीं देख सकते थे कि वह एक गरीब लड़की के साथ सात्विक-जीवन व्यतीत करे ।

“मैं न लवंग को अपनी धर्मपत्नी चुन लिया है पिताजी !...” साहसपूर्ण स्वर में बोला जयराम ।

“धर्मपत्नी चुन लिया है !”—कठोर स्वर में बोले सेठजी—“अपनी जातीय-प्रतिष्ठा पर लात मारकर एक नीच-जाति की लड़की से शादी करेगा तू ! दुनिया क्या कहेगी !...”

“दुनिया चाहे जो कुछ कहे पिताजी ! मुझे परवाह नहीं....”

जयराम ने अपने जीवन में पहली बार आज अपने पिता के समक्ष ऐसी साहसपूर्ण बातें कही थीं ।

“बेवकूफ लड़के !”—सेठजी उठकर खड़े हो गये—“यह न समझ कि मेरे धन का कोई हिस्सा तुझे मिल सकेगा...”

“आप धन के मद में आकर उचित-अनुचित का ज्ञान भूलते जा रहे हैं....अच्छा हो कि स्वार्थपरता तथा विश्वासघात द्वारा उपाजित यह धन मुझसे दूर ही रहे...मैं अभी आपके घर से निकला जा रहा हूँ....”

और जयराम सचमुच लवंग का हाथ पकड़कर बाहर जाने लगा । सेठजी का हृदय एक साथ ही क्रोध एवं करुणा से भर उठा । क्रोध था पुत्र के अविचारपूर्ण कार्यों पर और करुणा थी पिता एवं पुत्र के नाते पर ।

“सुनो !...” सेठ जी ने पुकारा ।

जयराम को ऐसा लगा, जैसे उसके पिता का स्वर कुछ कोमल हो उठा हो । वह लवंग के साथ लौट आया ।

“तुम नहीं जा सकोगे....” आगे बढ़ आये सेठ जी फिर लवंग से बोले—“चलो मेरे साथ...”

लवंग का हाथ पकड़कर सेठजी एक प्रकार से घसीटते हुए बाहर चले गये । जयराम कुछ न बोल सका ।

बाहर सेठजी की कार खड़ी थी । लवंग को उन्होंने उसपर बिठाया और तब कार चल पड़ी ।



रायबहादुर सेठ गंगादास की कोठी में आकर लवंग आश्चर्य-चकित-सी रह गई । वहाँ की साज-सजावट उसके लिये नवीन नहीं, अद्भुत थी । इसके अतिरिक्त लवंग अब तक यह न समझ सकी थी कि सेठजी उसे वहाँ क्यों लाये हैं ! उनका इरादा क्या है ! उस गम्भीर सेठ की थाह पाना लवंग जैसी सरल बालिका के लिये असम्भव था ।

वह यों ही आश्चर्यचकित एवं भयभीत खड़ी थी कि सेठजी आये । बोले—“सोफे पर बैठ जाओ बेटी !...”

बेटी !—

इस सम्बोधन ने जैसे लवंग के हृदय की सुप्त करुणा को जगा दिया, जैसे वह समझ गई कि ऊपर से हृदयहीन-सा दीखनेवाला यह सेठ भी मानव ही है और उसके हृदय में भी करुणा एवं ममता की भावनाएँ विद्यमान हैं ।

वह चुपचाप सोफे पर बैठ गई ।

“अफसोस न करो...” सेठजी बोले—“शादी से पहले पति-पत्नी का मिलना ठीक नहीं, इसीलिये तुम्हें यहाँ ले आया । इसे अपना ही घर समझो । बल्द ही तुम दोनों की शादी वैदिक रीति से करा दी जायगी...”

“बाबूजी !...” दाढ़कर लोट गई सेठ जी के चरणों पर लवंग और सेठजी ने उसे उठाकर, प्यार से उसका सर थपथपाया । लवंग के लिये उसे मुख का वेग असहनीय था । सारी दुनिया उसके सामने आनन्दमय होकर नृत्य कर उठी थी ।

सेठजी उठकर अपने आफिस में चले आये और मेज के पास बैठ कर कुछ कामजात देखने लगे ! तन्मयता में उन्हें यह न मालूम हो सका कि कोई उनके पास आकर खड़ा हो गया है ।

थोड़ी देर बाद जब उन्होंने सर ऊपर उठाया तो देखा—गुलशन !

सेठजी चौंक पड़े, गुलशन को वहाँ उपस्थित देखकर नहीं, वरन् उसकी वेपभूषा देखकर । बदन पर काली किनारी की एक सफेद घोती, कलाइयों में दो-दो काली चूड़ियाँ और पैरों में सैण्डल—गुलशन के इस महान् परिवर्तन को देखकर सेठजी को कम आश्चर्य नहीं हुआ ।

गुलशन ए० कुर्सी खींचकर सेठजी के पास आ बैठा ।

“तबीयत तो ठीक है तुम्हारी !”—सेठजी ने पूछा ।

“जी हाँ, बिल्कुल दुरुस्त है—” गुलशन बोली—“बेवक्त तकलीफ दी, इसके लिये माफी चाहती हूँ । आज मैं एक जरूरी काम से आपके पास आई हूँ....”

“तुमने अजीब सूरत बना रखी है, बात क्या है !...”

“बात !...” मलिन हँसी-हँसकर बोली गुलशन—“क्या बताऊँ सेठजी ! इधर उस्ताद ताल खाँ से और मुझसे झगड़ा हो गया था...वह इसलिये कि मैं अपनी इस जिन्दगी से ऊब चुकी हूँ और शरीफाना तौर पर गुजर करना चाहती हूँ....”

“आश्चर्य है, तुममें ऐसा परिवर्तन हो कैसे गया !”—सेठजी ने पूछा ।

“आदमी को समझलतै देर नहीं लगती सेठजी ! मैं आज उस्ताद ताल खाँ के घर पर लात मारकर आपकी शरण में भाग आई हूँ । अब कभी उस घर में, इस जिन्दगी में लौटने का इरादा नहीं है । भरोसा सिर्फ आपका है...”

“मेरा !”—आश्चर्य से बोले सेठ गंगादास—“मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ !...”

“आप मेरे लिये बहुत कुछ कर सकते हैं गरीबपरवर !....जिस भँवरे ने नई खिली हुई एक कली का पहले-पहल रस चूसा तो क्या अब उसे उसके लिये कुछ भी दर्द न होगा !”

“साफ-साफ कहो !—चाहती क्या हो तुम !”—बेरुखी से पूछा सेठजी ने ।

“जिस शरूस ने दो हजार रुपयों के बल पर, मेरी भोली जवानी की पहली रात को, मेरा हाथ पकड़ा था, क्या वह जिन्दगी भर तक मेरा हाथ पकड़कर मेरी नाव किनारे नहीं लगा सकता !”—

“चुप रहो...तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है ।”

“सच कहती हूँ सेठ जी ! मेरे दिल में दिन-रात एक जलन भर रही है । मेरा कलेजा मसोस-मसोस कर रह जाता है । मैं चाहती हूँ, अपनी इस नापाक-तिजारत को लात मारकर किसी गृहस्थ से शादी कर लूँ, आप...”

“मैं !....” जोर से बोले सेठ जी—“क्या कहा !—मैं तुमसे शादी करूँगा ! तुम जैसी वेश्या से कौन शादी करेगा !...”

“वेश्या !...वेश्या कहते हो मुझे सेठजी ! और तुम्हीं सभा-सोसायटियों के मंच पर खड़े होकर चिल्लाते हो कि रंडियाँ समाज के लिये कलंक हैं, इन्हें सुधारो—इन्हें अच्छे रास्ते पर लाओ—और आज जब एक रंडी खुद सुघरने के लिये आपके पास आई है तो आप उसे

दुत्कार रहे हैं। उसे दुत्कार रहे हैं, जिसके साथ रात के अन्धकार में उसके स्त्रीत्व पर धूल पैंकी थी, झूठी चापलूसी कर जिसे 'प्यारी' कहकर पुकारा था..."

"चुप रहो !"—चिन्ता उठे सेठजी—"यहाँ नौकर हैं..." और लोग हैं..."

"मैं जानती हूँ सेठजी ! इसीलिये धीरे-धीरे बोल रही हूँ। चिन्ता तो आप रहे हैं..." गुलशन कहती गई—"आप मुझे जलील समझते हैं। मगर जरा समझिये तो हमें जलील बनानेवाले हैं कौन ! आप ही जैसे सफेद कपड़े वाले बाबू लोग ही तो, जो दिन को दूध से नहाये दीखते हैं और रात की अन्धेरी में अपना काला दिल लिये चले आते हैं हम लोगों के पास..."

"तुम चली जाओ यहाँ से गुलशन !..."

"अब कहाँ जा सकती हूँ सेठजी ! एक अनाथ को मत ठुकराइये... एक रात को आप ही जैसे किसी शिकारी ने किसी भोली लड़की को फुसलाया था और वह लड़की भी जवानों के जोश में आकर सब कुछ सुटा बैठी थी, उस शिकारी के हाथ। और तब, जब उस जोश का अंजाम पाप का रूप धरकर पेट में आया तो...तो वह बेचारी पाप की लड़की सड़क पर फेंक दी गई....फिर लड़की का क्या कसूर सेठजी !...सारा कसूर आपका है—आप जैसे बाबू लोगों का है..."

"तुमसे शादी करके समाज में मैं नीच बनना नहीं चाहता...." सेठजी का क्रोधित स्वर हताश हो चला था।

"समाज !...." व्यंगपूर्वक हँसी गुलशन—"आप भी तो समाज के राजा हैं न ! ऐसे ही छिपे-छुपे होते होंगे सब लोग...जब छिपे-छिपे कितनी ही भोली लड़कियों की अस्मत् लूटने में आप लोग नहीं हिचकते तो बाहिरा तौर पर किसी एक को रखने में इतनी घबराहट क्यों ! क्या छिपे-छिपे पाप करना अच्छा है और बाहिरा तौर पर भलाई करना पाप !..."

घूरने लगी गुलशन सेठजी को और सेठजी चुप होकर नीचे देखने लगे। गुलशन की इस बात का उसके पास उत्तर ही क्या था ?

“आप चुप हैं !”—आवेग से शायद गुलशन का गला भर आया था—“चुप हैं आप !...बोलिये ! आज वह लड़की, जिसे पहली रात को आपने जवानी का पाठ पढ़ाया था, आपके पास अपनी सारी जवाना और सारी जिन्दगी लेकर आई है, उसे मत ठुकराइये सेठ जी !...”

एक बार सेठजी ने गुलशन के करुण-चेहरे की ओर देखा। बोले—
“गुलशन ! तुम मेरी बेटी जैसी हो, तुमसे शादी करूँगा तो लॉग क्या कहेंगे !...”

“उस रात, जब उस्ताद के हाथ पर दो हजार की थैली रखकर आप चुपके से मेरे कमरे में घुस आये थे और चीखते-चिल्लाते रहने पर भी आपने जो बर्ताव मेरे साथ किया था, वैसा क्या कोई बाप अपनी बेटी के साथ करेगा ?”

“छिः ! कैसी बातें करती हो ?”

“उस दिन तो आपकी आँखों में मेरा उम्र बेटी की-सी तो नहीं थी—तो फिर आज....क्यों आप ऐसी बातें कर रहे हैं ?”

रायबहादुर सेठ गंगादास कुछ सोचने लगे। आज उनके जीवन में जैसे एक नया पृष्ठ खुलनेवाला था। गुलशन की बातों ने उनपर काफी प्रभाव डाला था। सेठजी समाज से टरनेवाले जीव न थे। वे परिवर्तन के पृष्ठोपक थे, फिर भी संस्कार बाधक हो गये थे !

“मैं सोचकर कल उत्तर दूँगा”—कहा सेठजी ने।

गुलशन अपनी कुर्सी से उठकर सेठजी की कुर्सी की बाँह पर आ बैठी—“इसमें सोचने-विचारने का काम नहीं है। मैं बड़ी उम्मीद लेकर आपके पास आई हूँ। मेरी जिन्दगी सुधार दीजिये। दिल की ख्वाहिश पूरी कर दीजिये, आपके पास रुपया है और दुनियावाले रुपयों के गुलाम हैं—आपको वे कुछ न कहेंगे...”

सेठजी पुनः सोचने लगे । आज उन्हें जैसे एक मादक-अनुभव हो रहा था । इस वृद्धावस्था में भी, उनके शरीर में रक्त लहराने लगा था ।

“गुलशन ! मैं बूढ़ा हो चला—किसी जवान के साथ शादी कर लो तुम !”—

“जवान के साथ !...मुझे जवान की ख्वाहिश नहीं है सेठजी ! मैं कितने ही जवानों के गले का हार धन चुकी हूँ । अब जिस्मानी-लज्जत उठाने की चाह नहीं रही—अब तो चाह यही है, अरमान यही है कि किसी एक की होकर जिन्दगी गुजार दूँ...”

“अपने को सुधार सकोगी तुम ?—”

“इन्सान गलती करके भी, अगर बाद को सुधर जाय—तो गनीमत है—” गुलशन बोली—“वे मेरी पुरानी गलतियाँ हैं !”

और तब जैसे रायबहादुर सेठ गङ्गादास फिर से जवान हो उठे जैसे उनका समग्र शरीर ऊष्ण रक्त से आन्दोलित हो उठा, जैसे युगों की प्यास इस वृद्धावस्था में उमड़ पड़ी, जैसे दो हजार देकर उन्होंने उस लड़की की पहली रात ही नहीं खरीदी थी, वरन् जिन्दगी भी खरीद ली थी ।

और सेठजी कुर्सी पर से उठ खड़े हुए । आज उन्होंने दुनियावालों के समक्ष एक नवीन उदाहरण रखने का निश्चय कर लिया था । वे समाज के कर्णधारों को दिखला देना चाहते थे कि सुधारवादी हो तो ऐसा !

उन्हें अफसोस था तो केवल यही कि गुलशन जैसी सौन्दर्य-प्रतिमा उन्हें अपने जवानी के दिनों में न मिल सकी और इस वृद्धावस्था में गुलशन से शादी करके वे कुछ भी सुख उसे न दे सकेंगे ।

परन्तु गुलशन सुख की भूखी नहीं थी—वह गृहिणी बनाना चाहती थी—ताकि लोग उसे घृणा की दृष्टि से न देख सकें ।

“तुम मेरे साथ रह सकती हो गुलशन !”—सेठ जी ने कहा ।

और गुलशन का मुख आरक्त हो उठा, जैसे किसी गृहिणी के मुख पर लज्जाजनित लालिमा छा गई हो ।



गुलशन के मन की बात हो गई । सेठजी के आश्वासन ने उसे बता दिया की शीघ्र ही उसके दामन पर से वेश्या नाम का कलक धुल जायमा । इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती था !

उमने झुककर सेठ जी का पैर पकड़ लिया और हर्ष विह्वल-स्वर में बोली—“मेरे देवता...”

“तुम अन्दर लवंग के साथ बैठो...मैं अभी शादी का प्रबन्ध कर दूँगा...” सेठ जी ने कहा ।

उसी दिन सन्ध्या को गुलशन वैदिक रीति से शुद्ध को गई और उसका विवाह सेठजी के साथ हो गया ।—नगर के चुने-चुने सुधारवादी विचार वाले सज्जन उपस्थित थे ।

जयराम को कुछ भी खबर नहीं दी गई थी ।

सारा कार्य विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ था ।

सेठजी की कोठी पर लौटकर गुलशन ने एक कुशल गृहिणी की भाँति पति के चरण छुये और सेठजी ने उसे आशीर्वाद दिया ।

और तब फूली न समाती हुई गुलशन कोठी के अन्दर चली गई और सेठजी थके हुए भाव से सोफे पर आ बैठे ।

आज जो कुछ किया था उन्होंने, वह सुधार की दृष्टि से अनुपम था, सराहनीय था, साहसिक था—फिर भी उन्हें अफसोस था कि उन्होंने

अपना एक पैर मृत्यु-पथ पर बढ़ा दिया है और जवानी में सर पर चमकनेवाले केश अधपके हो उठे हैं ।

“आदाब अर्ज है हज़ूर !”—

सेठजी ने सर उठाकर देखा तो उस्ताद ताल खाँ खड़ा था दरवाजे पर ।

“कैसे आये ताल खाँ !—” पूछा सेठजी ने ।

“कोई खास काम नहीं हज़ूर !” हँसकर बोला ताल खाँ—“यों ही आपकी विदमत में चला आया...गुलशन आज सुबह से भाग आई है । सुना कि वह आपके यहाँ है...”

“वह अब तुम्हारे यहाँ नहीं जायगी ताल खाँ !—” गम्भीर स्वर में सेठजी बोले ।

“क्यों हज़ूर !...आखिर क्यों !—” आश्चर्य से बोला ताल खाँ—“क्या अब वह बेइमान, हज़ूर के दरेदौलत पर बाँदी का काम करेगी ?”

“जबान सम्हाल के बोलो ताल खाँ !...” सेठजी क्रुद्ध स्वर में बोले—“वह मेरी स्त्री है ।”

“अख़लाह !—” व्यंगपूर्ण स्वर में बोला वह—“अब हज़ूर को इस बुढ़ापे में भी दिन को तारे नजर आने लगे हैं ! अब्बाजान कहलाने के बजाय खाविन्द बनने का शौक हो आया है हज़ूर को !...मगर हज़ूर ! वह मेरी रोजी है । उसे यों नहीं छोड़ सकता...खून-पसीना एक कर दूँगा....”

शायद सेठजी की अँगुली कॉलिङ्गवेल पर जा पड़ी थी और एक दृष्टा-कट्टा दरवान दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया था तथा सेठजी के इशारे का इन्तज़ार कर रहा था । ताल खाँ को इसकी कुछ भी खबर न थी ।

“वह तुम्हारी बेटी नहीं है ताल खाँ ! उस पर तुम्हारा क्या अधिकार हो सकता है !—” सेठजी बोले ।

“मेरी बेटी नहीं है ! जिसे लड़कपन से ही दिल के अरमान बढ़ा-बढ़ाकर पाला, वह बेटी नहीं तो और क्या है ? आप शरीफ लोग अपनी बेटियों को अच्छी नसीहत देते हैं और हम टोजखी कुत्ते, उन्हें यहाँ सब सिखलाते हैं...ऐसा न करें तो अँधेरी रातों में आप शरीफों के कदम मुबारक, हाथों में रुपयों की थैलियाँ लेकर हमारे यहाँ तशरीफ क्यों लायें !...”

“ताल खाँ ! भूले जा रहे हो कि तुम कौन हो और किससे बातें कर रहे हो...” मेठजी गरज उठे ।

“मेरा दिमाग बिल्कुल दुरुस्त हैं हजूर !—” ताल खाँ कहने लगा—
“मैं जानता हूँ कि मैं रूप के बाजार का एक जलील तबलची हूँ और आप हैं, वक्त पड़ने पर मेरी खुशामद करनेवाले रायबहादुर सेठ !... हजूर ! मेरी बेटी वापस कर दें, मैं चुपचाप चला जाऊँगा...”

“बार-बार तुम उसे बेटी पुकार रहे हो...”

“मेरी बेटी ही है वह हजूर...अब तक वह मेरे पास रही है । उसी से मेरा पेट चलता रहा है...आज आप उसे अपनी बीबी बता रहे हैं... कहाँ थे आप, जब वह बच्ची बनकर अँधेरी रात में बीच सड़क पर पड़ी हुई चिल्ला रही थी ! आप शरीफों की टोली उस वक्त कहाँ थी, जब कि दो बेईमानों ने अपनी जवानी का जोश ठण्डा कर, पैदा हुई बच्ची को दुाना की आँखों से बचाकर सड़क पर ला फेंका था....आप ही जैसे शरीफों का वह काम था....हम जलील हैं मगर बेगुनाह बच्चों को इस तरह नहीं फेंकते । हमारी बहू-बेटियाँ सैकड़ों से अपनी जवानी का सौदा करती हैं, और पेट में कोई बच्चा आते ही, उसे एहतियात के साथ पैदा करके उसकी परवरिश करती हैं...और आपकी बहू-बेटियाँ, अवारागर्द लडकों के साथ बहक कर अपनी जवानी बेचती हैं और तब...जब उनकी गलती का अंजाम पेट में हमल बनकर आता है, तो उस बेगुनाह बच्चे को पैदा होते ही, मिट्टी के ठीकरे की तरह फेंक दिया जाता है...यही है आप की शराफत !”

उस्ताद और भी बहुत कुछ बके जाता कि सेठ ने उसके पीछे खड़े हुए दृष्टे-कृष्टे दरवान को कुछ इशारा किया। और उस दरवान की चौड़ी हथेली उस्ताद ताल खाँ के मुँह पर इतने जोर से बैठी की उसका सर चकरा गया।

“धक्के देकर निकाल दो बाहर सुअर को !...” तड़प कर बोले सेठ जी।

और तब दरवान के घौल पर घौल पड़ने लगे ताल खाँ पर। उसे अब ख्याल आया कि वह या उसका सारा बल, धन के बल के आगे टुच्छ है।

और निकाल दिया गया उस्ताद, धक्के देकर।

सेठजी चुपचाप सोफे पर बैठकर कुछ सोचने लगे। वे जानते थे कि कल प्रातःकाल जनता में, समाज में इस विवाह की चर्चा हो जायगी और तब कुछ लोग उनकी प्रशंसा करेंगे और कुछ निन्दा।



रात को ही जयराम, उस्ताद ताल खाँ से सुन चुका था कि उसके पिता रायबहादुर सेठ गंगादास ने गुनशन से शादी की है। एक तो वह पहले से ही अपने पिता पर क्रुद्ध था क्योंकि उन्होंने लवंग के सामने ही उसे बुरा-भना कहा था और लवंग को अपने कार पर लेकर चले गये थे। दूसरे इस शादी की खबर ने उसे पागल-सा बना दिया।

आखिर उसके पिता को इस बुढ़ापे में क्या सूझी ! न्याह ! सो भी एक बेश्या के साथ।

रात भर उसे भरपूर नींद न आई और प्रातःकाल जब वह ६ बजे सोकर उठा तो मेज पर रखे हुए ताजे समाचार पत्रों पर उसको दृष्टि

पढी। सब में, मोटे-मोटे हेडिङ्ग देकर सेठजी के साहसिक कार्य की प्रशंसा की गई थी और किसी-किसी में नवदम्पति का फोटो भी छपा था। सारा शिक्षित-समाज सेठजी से प्रसन्न था और उन्हें युग-प्रवर्तक को उपाधि पत्रों ने दी थी।

जयराज की आँखों में खून उतर आया। उफ् ! जिस पिता ने उसकी शादी एक गरीब लड़की से होने से इनकार कर दिया था, क्या वह एक पतित वेश्या के साथ स्वयं अपना विवाह कर सकता है ?

लखना चाय लेकर खड़ा था परन्तु जयराज ने उधर देखा भी नहीं और कोट उतार कर बदन पर डालता हुआ बोला—“लखना ! शोफर को बोलो...”

लखना तेजी से बाहर चला गया और जयराज भी बाहर आया। कार तैयार थी। वह बैठ गया। मोटर दौड़ चली।

सेठ गंगादास ब्रश मुँह में डाले दाँत माँज रहे थे कि जयराज को इतने सबेरे आया देखकर उन्हें यह समझते देर न लगी कि वह किसलिए आया है।

“यह मैं क्या सुन रहा हूँ पिताजी !”—

जयराज ने आते ही प्रश्न किया।

“क्या सुना है तुमने ?....” गम्भीर स्वर में पूछा सेठजी ने।

“यही कि बेटे को एक गरीब की लड़की से शादी करने को मना करके, बाप ने एक कुलटा वेश्या के साथ शादी की...”

“क्या कह रहा है जयराज तू !...वह तेरी माँ है...”

“माँ !...” हताश वाणी में दुहराया जयराज ने—“बाप को वेश्या से शादी करते हुए शर्म न आई मगर बेटे को उसे माँ पुकारते हुए शर्म आयेगी। मैं उसे अपनी माँ नहीं समझता....”

“और शायद कुछ दिनों बाद मुझे अपना पिता भी न समझोगे—क्यों ?...”

सेठजी ने घूरकर देखा जयराज को।

“आप मेरे पिता हैं—मगर आपने मुँह में कालिख लगाने वाली बात की है—बुढ़ापे में शादी आप कर सकते हैं—एक वेश्या के साथ—मगर मैं युवक होते हुए भी एक गरीब लड़की के साथ शादी नहीं कर सकता ! यही आपका न्याय है और इसी न्याय के पृष्ठपोषक हैं आप—मेरे पिता !...”

“अखबार वाले इस बात के लिये मेरी प्रशंसा के पुल बाँध रहे हैं—उसे तुम बुरा समझते हो !”—सेठजी बोले—“बड़ी तुच्छ बुद्धि है तुम्हारी !...गुलशन से मैंने शादी की है क्योंकि वह इसके लिये तैयार थी—एक वेश्या को गृहिणी का पद देकर क्या मैंने गलती की है...!”

“अखबार वाले आप की प्रशंसा कर सकते हैं क्योंकि वे पिटठू हैं”—जयराम बोला—“मगर मैं आपकी प्रशंसा नहीं कर सकता”—

“क्यों !...”

“क्योंकि आपने मेरी दुनिया उजाड़ कर अपनी दुनिया बसाई है—आपने मेरी अभिलाषाओं पर कुठाराघात करके, स्वयं अपनी भक्क रखी है”—

“चुप रह जयराम !...मादूम होता है, आज तू योंही बिस्तरे से उठकर इधर चला आया है, अन्दर जाकर मुँह-हाथ धो और जरा अपनी नई अम्मा के पैर छूकर तबियत ढलकी कर ले—जा !”

जयराम चुपचाप खड़ा रहा ।

और तब सेठजी कुछ जोर से बोले—“जाते क्यों नहीं—खड़े क्यों हो ?”

जयराम धीरे-धीरे अन्दर के दरवाजे की ओर बढ़ा । अन्दर जनान-खाने में आकर वह चौंक पड़ा—लवंग और गुलशन को पास बैठा देखकर ।

जयराम को स्वप्न में भी विश्वास न था कि वह लवंग को वहाँ देखेगा । उसका विचार था कि उसके पिता उसे उसके गाँव छोड़ आये होंगे ।

वह आगे बढ़ा । गुलशन ने उसे देखा । उठकर खड़ी हो गई वह ।

उसे देखकर जयराज का सर चकरा गया ।

यह जरा-सी छोकरी अब उसकी माँ बन गई है ? जो एक दिन उसके कलेजे से लगकर वासना शान्त करती थी, वह आज उसकी माँ बन गई है !—

जयराज विचलित हो उठा । वह पास ही रखी हुई कुर्सी पर घम्म से बैठ गया ।

गुलशन पास आ गई और जयराज के सर पर धीरे-धीरे अपना कोमल हाथ फेरने लगी ।



जेल के भीतर बेचारे पंचम के हृदय में आज एक अजीब ही उथल-पुथल मची हुई थी । आज उसके जेल-जीवन के छः मास व्यतीत हो चुके थे और उसका अनुमान था कि आज वह अपने इस यातनापूर्ण कारा-वास से मुक्त हो जायगा ।

समय बड़ी कठिनता से व्यतीत हो रहा था और पंचम का हृदय रह-रहकर व्याकुल हो उठता था ।

दोपहर को एक पक्षा ने पंचम का नाम लेकर पुकारा । पंचम का हृदय आनन्दातिरेक से नृत्य कर उठा । वह अपना टाट, फट्ठा तथा कम्बल लेकर हाजिर हुआ जेलर साहब के सामने ।

उसी समय जेल की सुदृढ़ दीवारों के बाहर एक कण्ठ ध्वनि प्रतिध्वनित हो उठी । जेल के बाहर सड़क पर संतरी का पैर पकड़े हुए मरणासन्न बुढ़िया चिन्ता रही थी—“मेरा लाल !....मेरा पंचम !...”

आवाज क्षीण थी फिर भी अपनी माँ का स्वर पंचम पहचान गया, उसी समय संतरी की गरज उसके कानों में पड़ी ।

“मरती भी नहीं बेह्मान ! आज पाँच महीनों से परेशान कर रही है ।”

और इसके बाद संतरी के बूट मारने की आवाज और बुढ़िया के मुख का भीषण आर्त्तनाद सुन पड़ा ।

पंचम ज्यों-त्यों करके जेल के बाहर निकला और इधर-उधर नजर दौड़ाई उसने । पहली दृष्टि उसकी अपनी माँ पर पड़ी, जो चेतनाहीन होकर संतरी के पैरों के पास पड़ी थी ।

जीवन के लक्षण न थे शायद !

पंचम आगे बढ़ा । उसे क्रोध न आया, कष्ट न व्यापी—शून्य दृष्टि से उसने संतरी की ओर देखा और तब अपनी माँ का शरीर हिला-डुलाकर देखा ।

सब समाप्त था—ठोकरें खाते-खाते बुढ़िया इतनी दूर जा पड़ी थी, जहाँ से लौटना असम्भव था ।

भुककर उसने उसकी लाश उठा ली और कंधे पर लादकर नदी की ओर बढ़ चला । इस समय उसके मस्तिष्क में भ्रमभावत मच रहा था । सारा ब्रह्माण्ड उसके नेत्रों के समक्ष नाच रहा था । शून्य दृष्टि से वह सामने की ओर देखता हुआ चला जा रहा था—जैसे उसे किसी की परवाह न थी, जैसे माँ की मृत्यु उसके लिये एक साधारण एवं तुच्छ-सी घटना थी ।

इस समय पंचम को किसी बात की सुध न थी । केवल एक विचार उसके मस्तिष्क में आन्दोलित हो रहा था—

बदला !

जयराम से बदला ! जिसने उसकी दुनिया उजाड़ी, जिसने उसका अपमान किया ।

नदी का किनारा आ गया । कगार बहुत ऊँचा था । उसने लाश

को हाथों पर तौलकर घप्प से नीचे फेंक दिया—“लो ! इसे अपने उदर में भर लो—” और वह ठठाकर पागल-सा हँस पड़ा ।

पास ही एक मजबूत लकड़ी पड़ी हुई थी, उसने उसे उठा ली और स्वतः बड़बड़ाया—“उसका सर तोड़ दूँगा..”

और उसके डगमगाते पैर अव्यवस्थित ढंग से जयराम की हवेली की ओर उठ चले ।

हवेली पर बड़ी भीड़ थी । सड़क पर सैकड़ों कारें खड़ी थीं । साज-सजावट का अन्त न था । शहनाई बज रही थी ।

जयराम और लवंग का ब्याह था आज । ब्याह हो चुका था, अब प्रीतिभोज हो रहा था ।

जयराम दूरदृष्टि में द्वार पर खड़ा हुआ आगत-सजनों का स्वागत कर रहा था । वह क्या जानता था विकराल स्वरूप में, लकड़ी हाथ में लिये, खूनी सूरतवाला एक भीषण मनुष्य उसका काल बनकर आ रहा है !

पञ्चम की दशा उस समय विचित्र-सी हो रही थी । आँखें गुफा जैसी फैली हुई थीं, जिनमें सागर जैसी गम्भीरता और आकाश जैसी शून्यता थी । दाढ़ी और मूँछें चेहरे पर उग आई थीं और उसकी मुखाकृति बड़ी भयावह लग रही थी ।

उसके नेत्रों ने अपना लक्ष्य पा लिया । हाथों ने वजनी लकड़ी तौलकर पकड़ ली और चुपके-चुपके बढ़ चला दबे पाँव, वह जयराम के पीछे ।

जयराम के पीछे जाकर खड़ा हो गया वह । लकड़ी मृत्यु का सन्देश बनकर हवा में उठी—और...

और उसी समय एक चीख पञ्चम के कानों में आई—“पञ्चम भैया !”

स्वर परिचित था । पञ्चम के हाथ रुक गये—देखा तो लवंग थी, भयग्रस्त, दुलहिन-सी सजी हुई ।

जयराम ने देखा पंचम को और पंचम ने देखा जयराम को ।

“भैया !....” लवंग आगे बढ़ी ।

“दूर दूँ !...” गरजकर बोला वह, परिस्थिति उसकी समझ में आ गयी थी—“बेईमान कहीं की !....इस जहरी नाग के साथ अपना दिल बाँध लिया, यह न सोचा कि भैया कहाँ होगा ? माँ कहाँ होगी ?...”

“पंचम...” जयराम ने बोलने की कोशिश की ।

“चुप रहो !...” कड़ककर बोला पंचम—“जी चाहता है तुम्हारा खून पी लूँ और तब हँसता हुआ फाँसी पर चढ़ जाऊँ । यहो मैं करता भी, अगर यह नागिन लवंग यहाँ न होती !”—दाँत पीसा पंचम ने—“अभी माँ का खून करके आ रहा हूँ, जी चाहता है कि इस छोकरी का भी खून कर डालूँ...”

“तुम...तुम...तुम...”

जयराम बोलना चाहता था परन्तु उसका दम घुटता-सा जान पड़ा, जैसे कोई अदृश्य शक्ति उसका कलेजा अपनी मुट्ठी में पकड़कर मरोड़ रही हो ।

और दूसरे ही क्षण वह अपना कलेजा थामकर आगे को झुक पड़ा । लवंग ने उसके गिरते हुए चेतनाहीन शरीर को सम्हाला ।

सब दौड़ पड़े—सेठ गंगादास भी आये ।

मृत्यु का अग्रदूत—दत्तशूल था वह !

पंचम यह दशा देखकर चित्रलिखित-सा खड़ा रहा । उसी समय पुलिस इन्स्पेक्टर ने वहाँ कुछ सिपाहियों के साथ प्रवेश किया । पंचम के हाथों में हथकड़ी भर दी गई ।

“सेठजी !—” पुलिस इन्स्पेक्टर बोले—“इस बदमास पागल ने अभी-अभी एक जीती-जागती बुढ़िया को उठाकर नदी में फेंक दिया है...”

और तब पुलिस घसीटती हुए ले चली पंचम को ।

जाते हुए पंचम ने जमीन पर थूक दिया और बोला लवंग की ओर देखकर—“जिन्दगी भर तुम्हारी सूरत न देख सकूँ, यही अन्धा...”

और अकड़ता हुआ वह चला गया। जयराम के ऊपर उसे अब भी क्रोध था।



लोग कहते हैं कि धन ही संसार में सब कुछ है परन्तु रायबहादुर सेठ गंगादास को आज यह मालूम हो रहा था कि पास में अपार धन रहते हुए भी मनुष्य भाग्य के हाथों का खिलौना मात्र है।

उनके पास अतुलित धन था और वे उसे पानी की तरह बहाने को प्रस्तुत भी थे परन्तु फिर भी वे जयराम की पीड़ा दूर करने में असमर्थ थे।

जयराम को चारपाई पर पड़े हुए आज १५ दिन हो चुके थे और दिन-प्रति-दिन उसकी अवस्था चिन्ताजनक, उसकी पीड़ा उग्रतर होती जाती थी। सेठजी, गुलशन, लवंग तथा लखना आँखों में रात व्यतीत कर रहे थे।

अकर्मण्य डाक्टर आते थे और रुपयों से जेब भर कर चले जाते थे।

परन्तु कुछ कर नहीं सकते थे वे।

जयराम को जीवित रखने के लिये, इन पन्द्रह दिनों के अन्दर, लखना ने पाँच बार और लवंग ने तीन बार, चार-चार औंस रक्त प्रदान किया था परन्तु रोग का वास्तविक कारण दूर करने के बजाय, केवल रक्त-प्रदान से काम नहीं चल सकता था।

यही सब सोचते हुए सेठ गंगादास कोच पर उदासीन बैठे थे। उस कमरे में और कोई न था। गुलशन, लवंग तथा लखना जयराम के पास थे।

सेठजी के एक नये नौकर ने प्रवेश किया और कहा—“सरकार ! आपके ससुर माहब आये हैं...”

“मेरे ससुर !...” आश्चर्य से बोले सेठजी—“कहता क्या है रे तू !”

परन्तु उसी समय उनकी दृष्टि ताल खाँ पर पड़ी, जो दरवाजे पर खड़ा था ! उसे देखते ही उनकी भृकुटी तन गई ।

“क्या चाहते हो ताल खाँ !—” उन्होंने उससे पूछा ।

ताल खाँ कमरे के अन्दर आ रहा । चेहरा कुछ उदास था । बोला—“सोचा चल कर अपने दामाद से भेंट कर लूँ और जरा बेटी गुलशन को भी देख लूँ...आप बहुत नाखुश हो रहे हैं सेठजी !....”

“यहाँ आने की तुम्हें क्या आवश्यकता थी !—” सेठजी क्रोधित हो रहे थे ।

“बेटी की मुहब्बत किसे नहीं सताती ?—” ताल खाँ की आवाज में व्यंग नहीं था, एक तरह की गम्भीरता-जनित उदासी थी—“माना कि वह मेरी बेटी नहीं है मगर बेटी की तरह पाला-पोसा तो था...उसके तमाम गहने और कपड़े मेरे ही यहाँ रह गये थे—इनका भी उसके पास आना निहायत जरूरी था....”

ताल खाँ के हाथ में गठरी थी, जिसे उसने खोलकर सेठजी को दिखाया । सेठजी आश्चर्य से चौंक पड़े । पचासों हजार के गहने थे—सुनहले ! रत्न-जडित !

“उसके कपड़ों की पेटी बाहर रखी है”—उस्ताद बोला ।

“तुम पागल तो नहीं हो ताल खाँ !”—

“पागल हो समझ लीजिये इज्ज़ !”—फीकी हँसी हँसकर ताल खाँ बोला—“इन्सान जब बुरा रास्ता छोड़कर भलाई की ओर रागिब होता है तो सभी उसे पागल समझते हैं....आप भी अगर मुझे पागल कहें तो कोई ताज्जुब नहीं....”

ताल खाँ के इस बर्ताव से सेठजी आश्चर्यचकित थे। उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि आज ताल खाँ को हो क्या गया !

“आपको ताज्जुब हो रहा होगा हज़ूर !”—ताल खाँ पुनः बोला—
 “कि हमेशा से दागाबाजी, फरेब और खूनी वारदात में अपनी जिन्दगी गुजारनेवाला एक मशहूर गुण्डा आज इस तरह पागल-सा क्यों हो रहा है !...मगर सेठजी ! इन्सान एक दिन में बिगड़ सकता है और एक दिन में बन भी सकता है....आज मैं बन गया हूँ और इसीलिये गुलशन के सारे जेवर और सारे कपड़े लेकर यहाँ आया हूँ। वह मकान भी मैंने दस हजार में बेच दिया है और वे रुपये ये हैं....”

उस्ताद ताल खाँ ने सेठजी के सामने मेज पर नोटों का एक बंडल रख दिया।

“गुलशन को मैंने बरबादी के रास्ते पर चलने को मजबूर किया था”—कहता गया ताल खाँ—“मगर उस छोकरी ने अपनी किस्मत बना ली और इज्जतदार बन गई...मैं सचमुच उमे चाहता था। सो मैं यह कब सह सकता था कि मेरी बेटी को यह कहने का मौका रहे कि उसका बाप दलाल है...आज कई दिनों से रात-रात भर जाग-कर इस बारे में सोचता रहा हूँ और आविरकार इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यह सारी कमाई गुलशन की है और उसे ही सौंप दूँ। मेरा इसमें कुछ नहीं। मैं पहले भी फकीर था और अब भी फकीरी कर लूँगा...”

“बहुत बदल गये हो ताल खाँ तुम !”—

“बदलने की क्या बात कहते हैं हज़ूर !...रंजोगम से मैं मुरदा हुआ जा रहा हूँ....वेहद अफसोस इस बात का है कि एक मासूम, यतीम बच्ची को मैं अच्छी तालीम न दे सका और उसे काँटों भरे रास्ते पर बसीट लाया। इन्सान के पास जालिम पेट होता है हज़ूर ! और पेट के लिये ही सब कुछ होता है...मगर अब मैंने कसम खाई है कि बुरे फेल से आया हुआ एक भी पैसा न रखा करूँगा। चाहे भूख से तड़प-तड़प

कर जान दे दूँ...आप देख रहे हैं...मेरे पास इतने गहने रुपये हैं मगर आज मैं तीन दिन से भूखा हूँ—न कुछ खाया है, न पीया है..”

“.....” सेठजी ने उस्ताद की ओर देखा। उस्ताद की आँखों में गहरे पड़ गये थे। मुँह सूख गया था। शरीर शिथिल हो रहा था।

और तब सेठजी ने एक कुर्सी घसीटकर उस्ताद के आगे कर दी। बोले—“इस पर बैठो उस्ताद !...”

कुछ न बोलकर उस्ताद कुर्सी पर बैठ गया।

कई मिनट तक सन्नाटा रहा।

फिर सेठजी ने पूछा—“आपके लिये कुछ खाना मँगाऊँ ?”

“इतनी इज्जत आफजाई न करें सरकार !”—उस्ताद गद्गद् वाणी में बोला—“किसी ने मेरे बाप को भी ‘आप’ नहीं कहा था... फिर मैं एक नाचोज मुसलमान आपके घर खाने की हिम्मत कैसे कर सकता हूँ...”

“मुसलमान !...तुम अपने को इतना नीच क्यों समझते हो ताल खाँ !...”

“इजूर ! आप हिन्दू हैं...” हिचकिचाते हुए बोला ताल खाँ।

“ठीक है—मतलबी दुनिया ने अपनी खुदगर्जी के लिये इन जातीय बखेडों की सृष्टि की है। नहीं तो हम सब हिन्दुस्तानी हैं। हिन्दुस्तान में पले हैं...”

“अगर आप जैसे पाक-दिल, सभी इन्सान हो जाँय इजूर ! तो खुदा कसम ! कभी दंगे फँसाद होएँ ही नहीं...”

“दंगे फसाद क्यों होते हैं, जानते हो ?”—प्रश्नसूचक दृष्टि से सेठजी ने ताल खाँ की ओर देखा—“अगर भाई-भाई में मेल रहे तो क्या मजाल कि कोई हम पर आँख उठा सके !...मगर साम्राज्यवाद यह नहीं चाहता कि हम भाई-भाई मिलकर उसकी जड़ खोदें और इसीलिये छल-छंदों द्वारा हममें मतभेद कराया जाता है और हम एक दूसरे के खून के प्यासे हो उठते हैं—कोरी धर्मान्धता है यह ताल खाँ...”

“ठीक फर्माते हैं आप”—उस्ताद ने कहा—“सुना था—जयराज बेटा की तबीयत ज्यादा खराब है—देखने को जी चाहता है...”

सेठजी उठ खड़े हुए। दोनों जयराज के कमरे में आये। जयराज सो रहा था। एक नजर देखकर फिर वे उसी कमरे में लौट आये।

एक ही सोफे पर दोनों बैठे।

“अब क्या करने का विचार है तुम्हारा ?”—पूछा सेठजी ने।

“कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूँ ?”—विवशता भरे स्वर में बोला ताल खाँ—“सोच रहा हूँ, अब तक इस दुनिया में ग्राहक जुटाने की दहलावा करता था और अब ग्राहक हटाने की दहलावा करूँ...सच कहता हूँ हजूर ! अगर मैं अपने चन्द गुण्डों को साथ लेकर शाम को सड़क पर खड़ा हो जाऊँ तो क्या मजाल कि कोई मर्द का बच्चा किसी कोठे पर कदम भी रख सके...”

“ऐसा कर सको तो बहुत अच्छा हो....मैं तुम्हें हर तरफ की मदद देने को तैयार हूँ...ऐसा करने से, कम से कम अन्धे युवक, वेश्याओं के फेर में पड़कर नष्ट होने से बच जायेंगे...” सेठजी ने कहा। उनके नेत्रों के समक्ष जयराज की बरबादी का दृश्य नृत्य कर उठा। यदि जयराज बुरे मार्ग पर पग न बढ़ाता, तो क्यों होता यह सब !

“मैं करूँगा हजूर !...”

और तब गंगादास और उस्ताद ताल खाँ न, जातीय भिन्नता को दूर कर एक ही मेज पर खाना खाया। गुलशन खाना परस रही थी।

उस दिन शाम को—

वेश्याओं के सभी कोठे सूने-से लग रहे थे। उस्ताद ताल खाँ अपने कुछ साथियों के साथ सड़क पर इधर-उधर टहल रहा था और कोठों पर जानेवालों को रोक रहा था—कभी प्रार्थना करके और कभी डरा-धमका कर !

उस दिन अँधेरी रात्रि, जैसे मौत बनकर आई। सारा संसार कालिमान्छुन होकर नीरव सो रहा था। जयराज भी वेदना से करवट बदलते सो गया था। गुलशन उसके सिरहाने बैठी थी। सेठ गंगादास सामने कोच पर बैठे हुए शून्य दृष्टि से जयराज के शुष्क मुखमण्डल की ओर देख रहे थे।

घर में एक प्रकार की भयानक उदासी छाई हुई थी और अँधेरी रात्रि में वह उदासी और भी भयानक लग रही थी। सब निराश से हो चले थे—जयराज इस समय जीवन और मरण के बीच झूल रहा था।

लवंग का तो जैसे स्वप्न ही उजड़ चला था। वह उस कमरे से उठकर अपने कमरे में चली आई थी और खुली हुई खिड़की के पास खड़ी होकर बाहर के घनीभूत अन्धकार में प्रकाश की कोई किरण खोज रही थी।

उसके अन्तस्तल में रोर मचा हुआ था। व्याकुल हो रहा था उसका हृदय, मगर ऊपर से वह शान्त दृष्टिगोचर हो रही थी।

आँखों के कोरों पर उमड़े हुए आँसू आकर रुक जाते थे। वह वेदना असह्य थी, उस कोमल-हृदया युवती के लिये।

और यह जो, उसकी खिड़की के सामने, एक कमरा है—उसमें इस समय भी रेडियो बज रहा है, जैसे वहाँ के निवासी उसके दुख का परिहास कर रहे हों, जैसे वे दिखा देना चाहते हों कि ससार में केवल लवंग ही दुखी है और कोई नहीं !

और कोई नहीं !

लवंग ने अपने कानों में उँगलियाँ डाल लीं। लगा उसे जैसे रेडियो के स्वर के साथ-साथ उसका हृदय भी टुकड़े होकर गिरने लगेगा।

वह नहीं सुनना चाहती रेडियो का गाना—

मगर रेडियो था कि बजता ही चला जा रहा था—

अजब अंधेरी रात !

साथी, अजब अंधेरी रात ।

लवंग ने और जोर से अपना कान दबा लिया मगर रेडियो की
आवाज उसके कानों के भीतर गुनगुना उठी—

पग-पग पर छाया अंधियारा,

बढ़ी जा रही जीवन-धारा ।

तेरे नयनों में आली,

है आज घिरी बरसात—साथी, अजब...

लवंग को लगा जैसे उसके नेत्रों में सचमुच बरसात घिर आई हो ।
वेदना के प्रतिरूप अश्रुकण गिरकर जमीन चूम लेना चाहते थे । रेडियो
की आवाज, परिहास करती हुई सुनाई पड़ रही थी—

बिछुड़ रहे वो मन के बासी—

छाई तेरे मुख पै उदासी ।

सूख गये हैं बिरह में उनके—

मृदुल मनोहर गात—साथी, अजब...

रह-रह उनकी याद सताये—

नैनन नीर झरी बरसाये ।

आज तेरे दुख को लखकर—

तारे भी बिलखात—साथी, अजब अंधेरी रात...

प्यासा पपीहा पी-पी बोले,

तू भी उनकी याद में रो ले,

‘कान्त’ ते क मोती—

कह देते सब बात—साथी, अजब अंधेरी रात...

और तब लवंग ने देखा कि वास्तव में उनके नेत्रों में मोती उमड़
आये थे ! रेडियो की आवाज बन्द हो गई । लवंग चौंक पड़ी । वह न

चाहतै हुए भी, रेडियो का गाना सुनना चाहती थी। चाहती थी कि वह यों ही रात भर बजता रहे और वह खिड़की के पास खड़ी-खड़ी सारी रात व्यतीत कर दे !

“लवंग !...”

जयराम की आवाज थी—क्षीण, शिथिल ।

लवंग दौड़ पड़ी उस कमरे की ओर और जाकर जयराम की चारपाई के पास खड़ी हो गई ।

जयराम जाग गया था और अब शून्य-दृष्टि से इधर-उधर लेटा हुआ देख रहा था ।

“लवंग !”—क्षीण स्वर में उसने पुनः पुकारा ।

“कहिये !...” रोती हुई आवाज में बोली वह ।

“कहाँ हो तुम लवंग ?...”

“आपके सामने तो खड़ी हूँ...” लवंग को आश्चर्य हुआ कि क्या आँख खोले रहने पर भी जयराम उसे देख नहीं रहा है !

“नहीं !...मुझे कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा है...अँधेरा-अँधेरा-सा लग रहा है चारों ओर....पिताजी !...”

और बेचारे सेठ गंगादास रो पड़े ।

जयराम की नेत्र-शक्ति, शिथिल पड़ते-पड़ते, एकदम से लुप्त हो गई थी । अब वह कुछ भी देख नहीं सकता था ।

रात्रि व्यतीत हुई । गुलशन, लवंग तथा सेठजी रात भर जागते रहे थे । उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे युग-युगान्तर के अन्धकार के बाद उन्होंने प्रकाश की रेखा देखी हो ।

परन्तु जयराम की अवस्था चिन्ताजनक हो गई थी । आँखों से वह देख नहीं सकता था, कानों से सुन नहीं सकता था, हाथ पैर अथवा अन्य कोई अंग हिला नहीं सकता था । आवाज उसकी इतनी क्षीण हो गई थी कि नजदीक से भी सुन सकना कठिन था ।

मृत्यु की भयानक छाया धीरे-धीरे आ रही थी—बहुत धीरे-धीरे ।

और उस समय लवंग के हृदय की क्या दशा थी, यह कोई क्या जान सकता था ! इस समय उसके हृदय पर जो कुछ बीत रही थी, यह तो वही जानती थी ।

इधर जयराज की अवस्था चिन्ताजनक थी, न जाने कब प्राणपक्षी अपना बसेरा छोड़ दे—और उधर पंचम के ऊपर चलते हुए मुकदमे का आज फैसला था । पंचम को बुढ़िया का खूनी ठहराया गया था ।

लवंग परेशान थी । वह सोच नहीं पा रही थी कि जयराज के पास रहे या कचहरी जाकर अपने भाई की किस्मत का फैसला सुने ।

भाई का फैसला !

वह भाई, जो उसके लिये अपना प्राण तक दे सकता है । वह भाई, जिसने सदैव लवंग के सुख में अपना सुख देखा, उसकी आँखों में आँसू देखकर वह स्वयं भी रोया ।

उसी का फैसला है आज और परिस्थिति ऐसी आ पड़ी है कि वह जा भी नहीं सकती और जेल जाने के पहले भाई की सूरत भी नहीं देख सकती ।

मगर जायेगी वह—जरूर जायेगी ।

यह जो जयराज चारपाई पर मरणासन्न पड़ा है, इससे उसका प्रेम केवल चार-छः महीने का है परन्तु वह, जो आज लौह-बेड़ियों से जकड़ा हुआ जेल-जीवन व्यतीत कर रहा है और जिसके मुकदमे का आज फैसला है—वह ! वह पंचम तो उसका जन्म-जन्मान्तर का साथी है । जब से वह इस संसार में आई है, तब से वह उसके साथ है, उसे हँसाया है, रुलाया है—

तो वह उसे नहीं भूल सकता । यौवन के मादक प्रेम के वशीभूत होकर वह स्वच्छ आतृ-प्रेम का तिरस्कार नहीं कर सकती ।

जायेगी वह !

और जब वह, लाल पगड़ियों से घिरा, बेड़ी-लसित पैरों से धीरे-

धीरे चलता कचहरी में आयेगा तो वह दौड़ कर उसके पैर पर जा पड़ेगी और अपने आँसुओं द्वारा उसके पैर का मैल धो देगी—

तब उसका मैया पंचम, उसे उठाकर हृदय से लगा लेगा और भूल जायगा सब कुछ । भूल जायगा कि लवंग ने उसकी बरबादी का खयाल न करके अपनी शादी रचाई थी ।

जरूर जायेगी वह !

उस समय भ्रातृ-प्रेम के आवेश में आकर लवंग जयराम का ध्यान भूल गई । उसने चटपट एक अचूनी-सी साड़ी और ब्लाउज पहना और पैरों में चप्पल डालकर बाहर निकल आई और शोफर को कार तैयार करने की आज्ञा दी ।

तीसरे पहर—

जयराम की तबीयत बहुत ज्यादा खराब हो गई । बदन एँठने-सा लगा । पैर धीरे-धीरे ठण्डे होने लगे । शहर के सभी प्रमुख डाक्टर बुलाये गये ।

गम्भीरतापूर्वक सबने जयराम की परीक्षा ली और तब जैसे निराशा-सी मुख पर छा गई सब डाक्टरों के मुख पर ।

सर हिलाकर कहा उन्होंने—कोई आशा नहीं, अब आखिरी वक्त है । आप इन्हें जो कुछ खिलाना-पिलाना चाहें, वह दे सकते हैं... आखिरी वक्त इनकी जो तमन्ना हो, उसे पूरी होने दें...”

गुलशन फूट-फूटकर रो पड़ी—सेठजी कोच पर पड़ाड खाकर गिर पड़े और डाक्टर चले गये ।

जयराम होश में था । आँखें खुनी थीं परन्तु वह अपने पिता आदि की दुर्दशाजनक अवस्था न देख सकता था । कान भी खुले थे परन्तु उनका कर्ण-क्रन्दन सुन न सकता था ।

कुछ देर बीता—

और तब जयराम के गले से एक तीक्ष्ण आवाज निकली, जैसे किसी गुफा से आवाज आ रही हो, साँय-साँय—“ल...वं....ग....”

गुलशन ने जयराज के मस्तक पर हाथ रख दिया । स्पर्श से शायद जयराज ने उसे पहचान लिया । बोला—“तु...म...हो...न...ई...मों...! लवंग...क...हों...है ?”

लवंग अब तक लौटी न थी ।

“अब....तो....चल...रहा हूँ लवंग...” जयराज के गले से आवाज निकल रही थी—“आखिरी बार...दो बूँद....पीने...की इच्छा हो....रही...है...”

गुलशन उठी । आलमारी में बोटल रखी थी । प्याले में आधा आउंस ढालकर लाई । जयराज को अपनी गोद में उठा लिया और प्याला उसके मुँह से लगा दिया ।

अपने होठों पर प्याले का सम्पर्क पाकर तथा मदिरा की गन्ध से शायद जयराज समझ गया कि उसकी प्यास बुझाने की प्याला प्रस्तुत है ।

उसने होंठ खोले परन्तु तुरन्त ही बन्द कर लिये । कहा—“रहने दो...अब तक न पिया....तो अब...अब भी नहीं....पीयूँगा...जा....ने...दो...”

और उसी समय उसका स्वर भी बन्द हो गया । आँखें ढँप गईं । गुलशन ने उसका सर अपनी गोद से उतार कर तकिये पर रख दिया ।

सेठ गंगादास दौड़े आये । नाड़ी देखी, बहुत ही क्षीण गति से चल रही थी । सर, कलेजा तथा पेट गर्म था । पैर-जाँघ तक ठण्डे हो रहे थे ।

निर्वाण का समय निकट था ।

रायबहादुर सेठ गंगादास खड़े हुए अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपनी दुनिया उजड़ते हुए देख रहे थे । रुपया तिजोरियों में भरा पड़ा था परन्तु उन रुपयों से जयराज की मृत्यु नहीं खरीदी जा सकती थी !

आज सेठ गंगादास की आँखों ने रुपयों की तुच्छता देखी !

आज उनके रोते हुए हृदय ने यह मान लिया कि जयराम के विनाशकर्ता स्वयं वे हैं ।

जी हाँ, सेठ गंगादास !

आजकल के धनी माता-पिता, अपने धन के गर्व में फूल कर अपने पुत्रों को आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्रता तथा खर्च से अधिक रुपये दे देते हैं । आँखों पर पर्दा पड़ जाने के कारण वे यह सोचते हैं कि वे अपने पुत्र को सुख दे रहे हैं—परन्तु वही सुख उस अभागे पुत्र के लिये विनाश का कारण बन जाता है ।

रुपया ! धन !

अनर्थों की जड़ है यह । सो भी यदि किसी अनुभवहीन युवक के हाथ पड़ जाय—तो अनर्थ का क्या पूछना !

वेश्या और शराब !

और तब मृत्यु !

जयराम के विनाश का इतिहास है यह !

और वही जयराम अपने पिता की दी हुई स्वतन्त्रता तथा धन का अनुचित उपयोग करने के पश्चात् आज मृत्युशैया पर पड़ा था ।

और उसका वही धनी पिता, एक अनाथ बच्चे की तरह, एक दुखिया गरीब की तरह, एक निरीह भिखारी की तरह बिलख रहा था, रो रहा था, सर धुन रहा था और कराह रहा था, पश्चात्ताप अपनी मूर्खता पर । उफ़ ! मूर्ख पिता ने अपने धन का किस मूर्खतापूर्ण ढङ्ग से उपयोग किया था ।

जयराम की नाड़ी क्षीण होती जा रही थी...



कार पर बैठी हुई लवंग चली जा रही थी, कचहरी की ओर । रास्ते में मिल गया उस्ताद ताल खॉ । इशारा करके कार रुकवाई । परेशान-सा दिखाई पड़ रहा था बेचारा । लवंग के पास आकर पूछा—
“जयराम की तबियत कैसी है बेटी ?”

लवंग के नेत्रों में आँसू आ गये—क्या कहे ! क्या न कहे !

“बोलो ! चुप क्यों हो ?”

“कोई आशा नहीं रही—” बड़ी कठिनता से लवंग ने ये शब्द कहे ।

“कोई बात नहीं बेटी !—मैं एक ऐसे आदमी को जानता हूँ, जो बचपन से मेरा दोस्त है और नदी पार के गाँव में रहकर वैदगिरी करता है...खुदा ने उसके हाथों में कमाल और उसकी दवा में जादू भर रखा है । अब डाक्टरों के पीछे पैसा बरबाद करना बेवकूफी है...”

लवंग जानती थी कि अब जयराम की हालत इतनी खराब हो गई है कि कोई भी जादू, कोई भी दवा उसे अच्छा नहीं कर सकती फिर भी वह बोली—“आप जल्द से जल्द उन्हें बुला लायें...मैं कचहरी जा रही हूँ, आप कार पर चले जाँय, मैं कोई इक्का कर लूँगी...”

“कचहरी क्यों जा रही हो तुम ?—”

“पंचम भैया के मुकदमें का फैसला है आज...”

और तब सारा किस्सा चल-चित्र की भाँति उस्ताद ताल खॉ के नेत्रों के समक्ष घूम गया । क्योंकि भोजन करते समय सेठ गंगादास उसे सारी बातें विस्तारपूर्वक बता चुके थे । उस्ताद, लवंग, पञ्चम तथा बुढ़िया के विषय में सब कुछ जानता था ।

“अच्छा तो तुम उस इक्के पर कचहरी जाओ...मैं चला उस बैद के घर—” उस्ताद कार पर बैठ गया । लवंग उतर पड़ी ।

और तब उस्ताद ताल खॉ को लेकर कार आँधी-सी दौड़ चली ।

नदी पार करते ही मैदान मिला और उसी मैदान के छोर पर बसा हुआ था एक छोटा-सा गाँव ।

कार रुकवाकर ताल खाँ उतर पड़ा और एक घर के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ । दरवाजे पर चालीस बरस का एक आदमी और पचास-साठ वर्ष की एक बुढ़िया खड़ी थी ।

ताल खाँ को देखते ही वह आदमी तपाक से मिला और बोला—
“बहुत दिनों पर आये मित्र ताल खाँ ! कहो, क्या सेवा करूँ !...”

“देखो बलदेव !—” ताल खाँ जल्दी से बोला—“अपनी सेवा ताल पर रखो और जल्द-से-जल्द अपनी दवाइयों का बक्स लेकर मेरे साथ चलो । अगर आज तुम्हारी बैदगिरी कुछ काम आ सकी तो सम्भूँगा कि मेरे सच्चे दोस्त हो ! मुझे अच्छी तरह याद है कि जब गुलशन बची थी तो बीमार पड़कर मरने-मरने हो गई थी । साँस तक बन्द हो चुकी थी—तब तुमने पहुँच कर उसे जिलाया था...”

“अरे भाई ! मुझमें जिलाने की शक्ति कहाँ ! यह तो भारत की जड़ी-बूटियों का प्रभाव है, इसमें मेरा कोई श्रेय नहीं—परन्तु आजकल के सभ्य नामधारी रईस अँगरेजी दवाओं को ही दवा समझते हैं, हमारे आयुर्वेद को भूलते हैं जा रहे हैं । शायद कोई दिन ऐसा आवे कि हम अपने आयुर्वेदीय औषधियों के विषय में एकदम अनभिज्ञ हो जाँय...

हम गुलाम तो हैं ही, उस पर से अँग्रेजी पढ़ाई, अँग्रेजी सभ्यता, अँग्रेजी डाक्टर और अँग्रेजी दवायें...कहा क्या जाय !...” बलदेव बोला ।

“यह बुढ़िया कौन है !—”

“यह...यह बुढ़िया !—” बलदेव ने कहा—“आफत की मारी है बेचारी । एक दिन मैं नदी में इस पार स्नान कर रहा था तो देखा कि उस पार, शहर के ऊँचे कगार पर खड़ा हुआ एक पागल हँस रहा है, देर तक हँस लेने के पश्चात् उसने गठरी-सी एक वस्तु पानी में फेंक दी । मुझे मनुष्य का भ्रम हुआ । मैं तैरता हुआ वहाँ तक गया और

तब इस बुढ़िया को देखा । कंधे पर लादकर घर लाया । देखा—नाड़ी का कहीं पता न था, फिर भी काँख गरम थी ! इसके जीवन से निराश हो गया था मैं, फिर भी कोशिश से बाज नहीं आया...और इसी कारण यह आज जीती-जागती दिखाई पड़ रही है...”

“...” उस्ताद ताल खाँ को यह कहानी कुछ परिचित-सी लगी ।

“इस बेचारी का एक लडका जेल में बन्द है और एक लडकी शहर में खो गई है । उन्हीं दोनों की खोज में हम और वह इस समय शहर जा रहे थे...”

“इसके लडके का नाम क्या है ?”—उस्ताद ने पूछा ।

“पञ्चम !...” बुढ़िया स्वयं बोली ।

“और लडकी का ?”—

“लवंगिया !...”

उस्ताद चौंक पड़ा । बुढ़िया अभी जीती-जागती इस दुनिया में मौजूद है और बेचारा पञ्चम मुफ्त ही उसका खूनी ठहराया गया है ।

ताल खाँ ने बुढ़िया को सारी बातें जल्दी-जल्दी बता दीं । लवंग की शादी और जयराज की बरबादी भी बता दी ।

और तब बैदराज बलदेव हाथ में दवाईयों का एक छोटा-सा बक्सा लेकर कार पर आ बैठा । ताल खाँ और बुढ़िया भी बठे ।

“कचहरी !...” ताल खाँ ने शोफर को गन्तव्य स्थान का पता बताया ।

कचहरी में ठसाठस भीड़ थी । न्यायाधीश कुर्सी पर बैठे थे पंचम कटघरे में खड़ा था । लवंग दरवाजे से टिकी खड़ी थी । पूर्ण निश्चिन्ता थी ।

हाथ में कागज का परचा लेकर उठ खड़े हुए न्यायाधीश । पंचम ने शून्य दृष्टि से उस परचे की ओर देखा, जिसमें उसकी किस्मत का फैसला दर्ज था । लवंग काँप उठी ।

“एक जीती-जागती बुढ़िया को जबरदस्ती नदी में फेंक देने के जुर्म

में पञ्चम कंजर को”—न्यायाधीश का स्वर कुछ रुका—“फाँसी की सजा दी जाती है...”

पञ्चम निश्चल खड़ा रहा। वह निरीह प्राणी क्या बोल सकता था ? इस ढोंगी कानून के शिकंजों में जकड़े हुए कितने ही निरपराध प्राणी अपना अस्तित्व गँवा बैठते हैं। ऐसे कानून पर तुफ है, लानत है, धिक्कार है।

और वे, जो अपने सर न्याय का सेहरा बाँधे, न्यायाधीश बनकर न्याय की कुर्सी पर बैठते हैं, अपने ही भाइयों का गला घोटते हैं। अपने उच्च-पद की दुर्भावना से वे अन्धे बनकर न्याय करते हैं। कलम उनके हाथ में रहती है और यही कलम तलवार बनकर हमारा गला काटती है !

पश्चिमीय-सभ्यता में रँगे हुए, अँग्रेजी विद्या पढ़कर भारत का प्राचीन गौरव भूल जाने वाले, कार पर चढ़कर गरीब जनता को अपनी उच्चता प्रदर्शित करने वाले आज हमारे न्यायाधीश हैं !)

लवंग दीवाल से सटकर, दरवाजे का पल्ला पकड़े खड़ी रो रही थी, उसी समय ताल खों के साथ बुढ़िया ने प्रवेश किया।

पञ्चम चौंक पड़ा।

लवंग आश्चर्यचकित रह गई।

और न्यायाधीश ने पूछा—“क्या चाहती है बुढ़िया ?...”

बुढ़िया ने रो-रोकर सारा किस्सा कह सुनाया। न्यायाधीश मस्तक पर उँगली रखकर कुछ सोचने लगे।

“मुजरिम को छोड़ दिया जाय”—कई मिनट बाद वे बोले।

और तब पंचम हथकड़ी-वेड़ी से मुक्त होकर बाहर आया। वह दौड़कर अपनी माँ से लिपट गया। माँ ने आँखों में आँसू बरसा कर पंचम का मुँह धो दिया।

पंचम ने बैदराज बलदेव के पैर छुए और बलदेव ने उसे आशीर्वाद दिया।

पास ही लवंग खड़ी थी। दौड़कर पंचम के पैरों से लिपट गई वह। परन्तु पंचम ने उसका हाथ पकड़कर कठोरतापूर्वक ऊपर उठा दिया।

लवंग के नेत्रों से आँसू बरस पड़े परन्तु पंचम कुछ न बोला। धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरने लगे सब लोग।

नीचे एक चित्रित दृश्य दिखाई दिया। एक भयंकर भालू की रस्सी पकड़े और हाथ में डुगडुगी लिये खड़ी थी एक गरीब लड़की और उसके पैरों पर लोट रहा था एक पागल।

उस पागल के सारे शरीर पर वोभत्स घाव हो गये थे। वह उस लड़की का पैर पकड़कर चिल्ला रहा था—“बहन केसर ! मुझे माफ कर दो। मैंने तुम्हारे और पंचम भैया के साथ बहुत दगाबाजों की है। पंचम को जेल भेजने का कारण मैं ही हूँ और तुम्हारे बाप को मौत की घाट उतारने वाला...”

वह था धन्ना !

वह थी केसर !

वह था जम्मू—पंचम का रीछ।

“केसर भौजी...” दौड़कर लिपट गई लवंग उस लड़की से। सब पास आ गये थे।

केसर की दृष्टि पंचम पर पड़ी और पंचम की दृष्टि केसर पर।

युग-युग से बिछुड़े हुये प्रेमी चाहते यह थे कि एक दूसरे को अपनी बाँहों में भर लें—मागर दिन का प्रकाश बाधक था, लोगों की आँखें बाधक थीं।

वे दोनों आत्म-विस्मृत होकर एक दूसरे को अपलक नयनों से देखते रहे। दोनों के नयन कोटरों में प्रेमाश्रु उमड़ आये थे। जम्मू पंचम के पाँव चाट रहा था।

तभी पंचम के पास दौड़ आया वह पागल और उसका पैर पकड़कर

बोला—“पंचम भैया ! मुझे मारो, गाली दो, ठुकराओ मैं अपराधी हूँ...”

अब पंचम समझ गया था कि लवंग का कोई दोष नहीं, जयराम का कोई दोष नहीं । सारा दोष इस नीच धन्ना का है ।

सब कुछ जानते हुए भी उसने घृणित धारों से भरे हुए धन्ना को उठाकर हृदय से लगा लिया । बोला—“तू तो मेरा छोटा भाई है रे ! यह तू अपनी क्या हालत बना रखी है...”

एक दिन इसी धन्ना ने जब जयराम का पैर पकड़कर माफी माँगनी चाही थी तो उसने उभे जूते की ठोकर दी थी ।

वह थी शहर की सभ्यता !

और आज उसने पंचम का पैर पकड़ा तो उसने हृदय से लगा लिया ।

यह था गाँव का भोलापन और निष्कपट स्नेह ।

धन्ना चिल्ला उठा—“नहीं....नहीं...मुझे मत छुओ पंचम भैया !...तुम देवता हो—मैं राक्षस हूँ...”

पागल धन्ना चीखता-चिल्लाता हुआ सामने की ओर भाग गया ।

तब पंचम ने लवंग की ओर देखा ।

एक क्षण तक दोनों ठिठके और तब ‘भैया !’ कहती हुई लवंग पंचम के कंधे से आ लगी ।

पंचम ने प्रेमपूर्वक उसके सर पर हाथ फेरा ।



कहावत है—“जब तक साँसा, तब तक आशा”—और इसीलिये सेठ गंगादास को जब यह याद आया कि आज सुबह के किसी समाचार-

पत्र में इन्होंने पढ़ा है कि शहर में वियना का एक बहुत बड़ा डाक्टर आया है, जो दुरुह रोगों का इलाज ज़ण भर में कर देता है—तो, वे तुरन्त कार पर दौड़ पड़े उसके पास ।

लम्बे डीलडौल का एक अँग्रेज था वह । बड़ी भीड़ लगी थी परन्तु जब सेठ गंगादास ने स्पेशल फीस दी तो वे तुरन्त ही उसके पास उपस्थित किये गये ।

एक हजार फीस लेकर तब उसने जयराज को देखना स्वीकार किया !

जयराज की अभी तक वही अवस्था थी—डाक्टर ने अचैतन्य जयराज के वक्ष की परीक्षा स्टेशमकोप द्वारा की और तब एकाएक उसकी मुद्रा एकदम गम्भीर हो गयी ।

उसी समय सेठ गंगादास ने, एकसरे द्वारा लिया गया, जयराज के फेफड़े का फोटो उसे दिखाया । बड़ी देर तक ध्यानपूर्वक वह उसे देखता रहा, फिर सर हिलाकर बोला—“होप्लेस ! फेफड़े एक दम त्वराव हो गये हैं...आम सारी !...”

निराशा से सेठजी का हृदय फट पड़ा । बोले रोकर—“कुछ तो कीजिये डाक्टर साहब ! मैं दस-बीस लाख तक खर्च कर सकता हूँ...”

“रुपया खर्चने से भी शायद...शायद...” कुछ रुककर बोला डाक्टर—“मगर ठहरिये...एक सूरत है—मगर काम बहुत खतरे का है...”

“वह क्या ?...”

“मुझे आपरेशन करके इनके दोनों फेफड़े निकाल देने पड़ेंगे और उनकी जगह पर एक स्वस्थ मनुष्य के फेफड़े काट कर लगा दिये जायेंगे...इससे हो सकता है कि इनकी जान बच जाय और हो सकता है कि आपरेशन करते समय ही इनकी जान निकल जाय । मैं कोई गारंटी नहीं दे सकता...” डाक्टर कहता गया—“मगर सवाल तो

यह है कि कोई स्वस्थ मनुष्य, अपनी जान गँवाकर, अपने फेफड़े इन्हें क्यों देना चाहेगा !... है कोई आदमी, आपके पास !...”

“.....” सर नीचा कर लिया सेठजी ने ।

“मैं तैयार हूँ सेठजी !...” आवाज आई—“मैं दूँगा अपना फेफड़ा...”

चौककर सेठजी ने पीछे की ओर देखा—लवंग, ताल खाँ, पंचम, केसर, बुढ़िया आदि खड़े थे और ताल खाँ की बगल में खड़ा था वैद्यराज बलदेव ।

उपलिखित वाक्य कहने वाला था पंचम जो औरों से दो पग आगे बढ़ आया था ।

सेठजी ने हताश दृष्टि से देखा हट्टे-कट्टे युवक की ओर ।

डाक्टर की तीव्र दृष्टि पंचम की छाती पर थी, जैसे वह नजरों से ही चीरकर उसका फेफड़ा निकाल लेगा ।

पंचम, जयराज की जान बचाने के लिये, अपनी जान तक खोकर, अपना फेफड़ा देने को तैयार था ।

जिसने आज तक लवंग के लिये सैकड़ों त्याग किये थे—वह आज लवंग के सुहाग की रक्षा के लिये अपनी जान हथेली पर लिये खड़ा था ।

“ठीक है !...” डाक्टर बोला—“पचास हजार आपरेशन की फीस और दस हजार दवा का दाम...”

“मैं दूँगा....जल्दी कीजिये डाक्टर साहब....” सेठजी बोले ।

“ठहरिये !...” सर पर बड़ा-सा पगड बाँधे, चेहरे पर घास जैसे उगे बाल लिये, बदन पर फटी हुई मिर्जई डाटे और घुटने तक मैली धोती पहने—वैद्यराज बलदेव की आवाज थी यह !

बलदेव आगे बढ़ आया । पीछे-पीछे ताल खाँ भी आ रहा । सेठ गंगादास ने एक उपेक्षा की दृष्टि बलदेव पर डाली और पूछा—“क्या चाहते हो तुम ?”

“मैं यह पूछना चाहता हूँ कि ये डाक्टर साहब एक आदमी की

ज्ञान लेकर, दूसरे आदमी की ज्ञान बचाना चाहते हैं, सो भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि वे सफलीभूत होंगे या नहीं ? इसके अतिरिक्त ये एक ऐसी रकम माँग रहे हैं, जो केवल आपही दे सकते हैं....ऐसे इलाज से फायदा ?”

“कौन हो तुम ?...”

“ये बैदराज बलदेव हैं सेठजी...” ताल खाँ बोला—“मेरे गहरे दोस्त हैं, आप इन्हें भी अपनी दवा आजमाने का मौका दें...”

“यह तुम किस जंगली जानवर को पकड़ लाये ताल खाँ !. वह क्या इलाज करगा—” क्रुद्ध वाणी में बोले सेठजी ।

“जंगली जानवर ही सही —पश्चिमा हवा ने भारत पर ऐसा रंग जमाया है कि आप अपने देश की प्राचीन वेशभूषा भूलकर एक मनुष्य को जंगली जानवर कह रहे हैं ...इसमें आपका दोष नहीं सेठजी ! यह उन गोरे मालिकों का प्रभुत्व है, जो हमपर शासन करते हैं और यह हमारी नीचता है, जो हम उनकी नकल करते हैं....एक अंग्रेज कभी घोती-कुर्ता नहीं पहनता, कभी आयुर्वेदिक दवायें सेवन नहीं कराता, फिर हम ही क्यों अपना आत्मसम्मान भूलकर इतना हैय बनें...” बलदेव बोला ।

आवेश में बलदेव कहे जा रहा था और सेठजी उसकी ओर तोली नजर से देख रहे थे । परन्तु बलदेव पर उसका प्रभाव नहीं पड़ा । बोला वह—“छेकड़ों वर्षों से गुलामी की बेड़ियों में जकड़े हम अपनी प्राचीन विद्याओं की उपयोगिता को भूल बैठे हैं । अब तक आपने डाक्टरों के पीछे हजार, दस हजार रुपये बहाये—मगर क्या कभी आपने किसी वैद्य या हकीम को भी कुछ करने का अवसर दिया ?...नहीं !...क्योंकि आपको ज्ञात नहीं कि हमारे देश की पवित्र भूमि से उत्पन्न एक-एक जड़ी-बूटी में नवजीवन संचार करने की शक्ति है....”

और तब बिना किसी दूसरे ओर देखे, बलदेव ने आगे बढ़कर जयराम की नाड़ी पकड़ ली । देर तक पकड़े रहा ।

“ये अच्छे हो सकते हैं !” बलदेव बोला—“मैं अच्छा कर दूँगा ।”

“तुम...तुम इन्हें अच्छा कर सकते हो—” आश्चर्य भरे स्वर में बोले सेठजी । उन्हें बलदेव की बातों पर तनिक भी विश्वास न हुआ—“घास-पत्तियों पर मेरा विश्वास नहीं....अगर तुम इन्हें अच्छा न कर सके तो !...अगर इनकी जान चली गई तो !”

“मैं शर्त बदने को तैयार हूँ—” बलदेव बोला—“कोई भी शर्त !...अगर इनकी जान गई तो मैं अपनी जान देने को तैयार हूँ । कहिये लिख दूँ...यह याद रखिये कि फायदा अभी दो घंटे में आपको शत हो जायगा...”

और तब बिना किसी के उत्तर की प्रतीक्षा किये हुए, उसने अपना दवाइयों का बक्स खोला और एक शीशी तथा एक छोटा-सा खरल निकाला । खरल में थोड़ी-सी दवा घोटकर उसने जयराम के मुँह में रख दी ।

जयराम में न तो होश था और न तो दम । सब लोग एकटक खड़े होकर देखने लगे कि आखिर बलदेव को दवा का क्या असर होता है ! वियना का वह डाक्टर भी उत्सुकतावश देख रहा था ।

आधे घण्टे बीते । बलदेव ने नाड़ी देखी—पहले से बहुत क्षीण हो गयी थी नाड़ी । बलदेव कुछ घबड़ाया, लोगों ने उसके चेहरे पर घबराहट के साफ निशान देखे ।

एक घण्टा व्यतीत होने पर बलदेव ने नाड़ी पुनः देखी । इस बार जैसे नाड़ी का कहीं पता न था । जयराम सुख-शान्ति से सो रहा था ।

बलदेव बहुत ज्यादा घबड़ा गया और तब उसका जो न जाने कैसा होने लगा । वह उठकर खिड़की के पास आ खड़ा हुआ ।

डाक्टर बलदेव की परेशानी से यह समझ गया था कि अवस्था क्षण प्रति-क्षण खराब होती जा रही है । उसने स्टेथस्कोप लगाकर जय-

राज को एक क्षण देखा और तब सर हिलाकर कुर्सी पर बैठ गया—
“शरीर में जान नहीं है...”

क्रोध से सेठ गंगादास का बुरा हाल था; साथ ही रो भी पड़े। वे दौड़कर बलदेव के पास आये—“बेईमान ! क्या किया तूने !...ले ली मेरे बेटे की जान...”

“घबड़ाइये मत सेठ !...” बलदेव गम्भीर वाणी में बोला।

और उसी समय जयराम के गले से कराहने की आवाज आने लगी। निराशा में आशा का संचार देखकर सेठजी हर्षविह्वल हो गये।

चार घण्टे बाद जयराम की अवस्था पहले से बहुत अच्छी हो गयी। टंटे हाथ-पैरों में ऊष्णता लहरा उठी। बदन में हरकत भी होने लगी।

डाक्टर ने परीक्षा कर कहा—“अब ठीक हो जायेंगे यह !...”

और तब उसने प्रशंसा की दृष्टि से बलदेव की ओर देखा, हाथ मिलाया उससे और चला गया।

आज भारत की एक प्राचीन विद्या ने, योरप की आधुनिक विद्या पर विजय पाई थी।

प्रभात-सूर्य के उदय के साथ-साथ जयराम की विलुप्त वाक्-शक्ति पुनः लौट आई और पहला स्वर जो उसके शिथिल मुख से निकला वह था—“लवंग !” वह पास दौड़ आई और उसके मस्तक पर प्रेमपूर्वक हाथ फेरने लगी।

उस दिन शाम को जयराम के कान सजग हो उठे और वह सुनने भी लगा। तीसरे दिन उसके नयन कोटरों में प्रकाश दौड़ गया और अब वह देख सकता था, सुन सकता था क्षीण आवाज में बोल सकता था।

एक सप्ताह बाद जयराम इस योग्य हो गया कि चारपाई पर अपने आप उठकर बैठ सके।

बैदराम बलदेव दो सप्ताह तक बराबर सेठजी के यहाँ रहा, रात

